देव वाणी

लेखक— सत्येन्द्रनाथ वैद्यराज

देव वाणी

लेखक

सत्येन्द्रनाथ वैद्यराज

• **प्रकाशक :**
देव वाणी प्रकाशन
आगरा

• **पुस्तक प्राप्ति का स्थान :**
डा. (कर्नल) ज्ञान चन्द्र
41, अवधपुरी कॉलोनी
आगरा 282010 उ. प्र.

डा. उमेश चन्द्र वर्मा
340, जयपुर हाउस कॉलोनी
आगरा 282010 उ. प्र.
फोन न. (0562) 2213145
(0562) 3293774, (0562) 3292636

• **कम्प्यूटर :**
आनन्द कम्प्यूटर

• **मुद्रक :**
श्रुति प्रिन्टर्स, गोकुलपुरा, आगरा

प्रस्तावना एवं जीवन परिचय

इस पुस्तक के लेखक हमारे पूज्य पिता स्व. सत्येन्द्र नाथ वैद्यराज का जन्म कुम्हेर (भतरपुर–राजस्थान) के एक सम्पन्न एवं सम्भ्रान्त आर्य परिवार में सन् 1902 को हुआ। छः वर्ष की अल्पायु में ही आपको गुरुकुल वृन्दावन में संस्कारित होने के लिए भेज दिया गया। जहाँ वे स्नातक पर्यन्त रहे। वहाँ रह कर आपने संस्कृत और आयुर्वेद का अध्ययन किया और आयुर्वेद शिरोमणि तथा आयुर्वेदाचार्य की उपाधियाँ अर्जित कीं। आयुर्वेदाचार्य में सर्वोत्तम घोषित होने पर आपको महाराणा उदयपुर तथा महाराजा जयपुर ने पीत वस्त्र एवं स्वर्ण पदकों से अलंकृत करते हुए राज़कीय सम्मान दिया। आपका विवाह बरेली के सम्भ्रान्त आर्य परिवार की विदुषी स्व. सुमित्रा देवी से हुआ। आपके तीन पुत्र एवं दो पुत्रियाँ हुईं जिनको अपने संस्कारित बनाया। स्वतन्त्र विचारों के होते हुए आपने राजामंडी आगरा को अपनी कार्यस्थली चुना जहाँ आप आयु पर्यन्त रहे। आर्य समाज ने भी उनको महाशय के सम्बोधन से सम्मानित किया।

अपने अन्तिम वर्षों में आपने एक डायरी में यह सब कुछ संचित किया था। सम्भवतः वे इसे प्रकाशित कराना चाहते थे। परन्तु किन्हीं कारणोंवश ऐसा नहीं हो पाया। आपका देहावसान सन् 1982 में आगरा में ही हो गया।

उनकी स्मृति स्वरूप अब यह प्रकाशित की जा रही है। इसकी मूल प्रति–डायरी क्षतिग्रस्त हो गई थी। उसकी दूसरी प्रति बनवाने में अनेक त्रुटियाँ हो गईं जिनको सुधारने का प्रयत्न किया गया है परन्तु फिर भी जो त्रुटियाँ रह गई हैं उनके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

इस पुस्तक को सम्पूर्ण अथवा आंशिक रूप में कोई भी सज्जन अथवा संस्था दोबारा प्रकाशित कराना चाहें तो हमें व्यक्तिगत रूप से कोई आपत्ति नहीं होगी, अपितु हम उनके आभारी होंगे। यही निवेदन है कि वे इसकी सूचना भर हमें दे दें तो बड़ी कृपा होगी।

हम आशा करते हैं यह पुस्तक पाठकों को पसन्द आएगी और लाभान्वित होंगे।

—डा. (कर्नल) ज्ञान चन्द्र

—डॉ. उमेश चन्द्र वर्मा

॥ ओउम् ॥

आर्य समाज के नियम

(1) सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

(2) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करने योग्य है।

(3) वेद सब सत्यविद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(4) सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

(5) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करना चाहिए।

(6) संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(7) सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिए।

(8) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

(9) प्रत्येक को अपनी उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए। सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

(10) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

देव वाणी
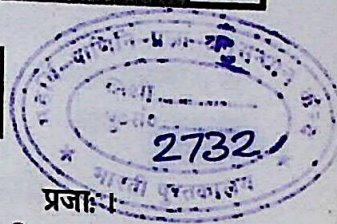
धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद्धारण संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥

महाभारत शान्ति. अध्याय १००, श्लोक ११

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
एतत् सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥

मनुस्मृति १० ।६३

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे हि शुचिः स शुचिः न मृद्वारि शुचिः शुचिः ॥

मनु. ५ ।१०

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

मनुः २ ।१२

मृत शरीर मुत्सृज्य काष्ठ लोष्ठ समं क्षितौ।
विमुखा बान्धवाः यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥

मनुः ४ ।२४१

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥

मनुः ४ ।२४२

यतोऽभ्युदयनिश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः।

वैशेषिक

॥वेदामृतम्॥

अग्नि के गुणों का उपदेश।

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः।
तं हविष्यन्तः ईलते॥ अथर्व २० ।१०२ ।२
अग अगि गत्यर्थः।
अग्ने त्वमित्यस्याङ्गिरस ऋषि। अग्निर्देवता।
"अग्ने त्वं सुजागृहि वयं सुमन्दिषीमहि।
रक्षणो अप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि॥" यजुर्वेद ४ ।१४
(अग्ने) हे जाठराग्ने! (मन्दिषीमहि) शयीमहि।
(अप्रयुच्छन्) प्रमादमकुर्वन्। (प्रबुधे) जागरिते।

भावार्थः—मनुष्यैः योऽग्निः शयन जागरण जीवन मरण हेतुरस्ति स युक्तया संप्रयोक्तव्यः ।अग्निःअञ्चु गति पूजनयोः। अचि गतौ धातु से बना, अग्निः कस्मादग्रणी भवति। गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति। पूजनं नाम सत्कारः।

अग्निमूलं बलं पुंसां रेतोमूलं च जीवितम्।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन बन्हि शुक्रं च रक्षयेत्। आयुर्वेदः
शान्तेऽग्नौ म्रियते युक्ते चिरंजीवत्यनामयः।
रोगी स्यात्-विकृतेमूल मग्निस्तस्मान्निरुच्यते॥
चरक चि. स्था. अ. १५

जाठरो भगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्य पाचकः। सुश्रुत
सम दोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते। आयुर्वेद
विधिविहितमन्नपानं प्राणिनां प्राण संज्ञकानां प्राणमाचक्षते
कुशलाः प्रत्यक्ष फल दर्शनात्तदिन्धनादध्यन्तरग्निः स्थितिः।
चरक सूत्र २१९

आर्युवर्णो बलं स्वास्थ्य मुत्साहो पचयौ प्रभा।
ओज स्तेजोऽग्नयः प्राणाश्चोक्ता देहाग्नि हेतुकाः॥
चरक संहिता चि. स्था. अ. १५-१६

रसाद्रक्तं ततो मासं मासान्मेदस्ततोऽस्थि च।
अस्थ्नोमज्जा ततः शुक्रं शुक्राद् गर्भः प्रजायते॥
चरक संहिता चि. स्था. अ. १५-१६

अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषे येनेदमन्नं
पच्यते तस्यैष घोषो भवतिः। वृहदारण्यक ५।९
अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहाः अथर्व. २।१६।४
देवैःइन्द्रियों के साथ
संवृत्याङ्गुलिभिः कर्णौ ज्वाला शब्दं य आतुरः।
न शृंणोति गतासुं तं बुद्धिमान् परिवर्जयेत्॥
चरकः इन्द्रिय स्थान अ. ४
वैश्वानरोऽदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु-दुरितादवद्यात्। यजुः ४।१५
अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्"॥
गीता अ. १५ श्लोक १४

चतुर्विधमन्नं = भक्ष्यं भोज्यं लेह्यं चोष्यमिति।1. भक्ष्यं चर्व्यं = पूड़ी, साग, रोटी, पूआ आदि। 2. भोज्यं = दाल, चावल, खीर, हलुवा, दलिया आदि। 3. लेह्यं = चटनी, शहद युक्त औषधि। 4. चोष्यं = ईख, गन्ना, आम्र आदि।(खाया, पिया, चाटा और चूसा चार प्रकार का आहार) क्रिया स्वप्नाव्यायामालस्य प्रसक्तं पुरुषं जानीयात् प्रमेही विध्यनीति।मन्दस्तीक्ष्णोऽय विषमः समश्चेति चतुर्विधः कफपित्तानिला- धिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः। विषमो वातजान् रोगान् तीक्ष्णो मितनिमित्तजम्। करोत्यग्नि तथा मन्दो विकारान् माप्तसम्भवान्, समाग्निः श्रेष्ठ उच्यते। निदान

कुक्षेरन्नस्यद्वावंशौ पानेनैकं प्रपूरयेत्।
आश्रयं पवनादीनां चतुर्थमवशेषयेत्॥ वाग्भट्ट
मात्राशी सर्वकालं स्यात् मात्राह्यग्ने प्रवर्तिका।
मात्रा द्रव्याण्यपेक्षन्ते गुरूण्यपि लघून्यपि॥ वाग्भट्ट
गुरुणामर्द्ध सौहित्यं लघूनां नाति तृप्तता।
मात्रा प्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावत् विजीर्यति॥ वाग्भट्ट
युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ गीता ६।१७
नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥ गीता ६।१६
आहार मात्रा पुनरग्नि बलापेक्षिणी भवति। चरक
निद्रायत्त सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम्।
वृषता क्लीवता ज्ञान मज्ञानं जीवितं न च॥ चरक

हिताशीस्यान्मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः ।
पश्यन् रोगान् बहून् कष्टान् बुद्धिमान् विषमाशनात्॥ चरक
हितभुक् मितभुक् ऋतभुक्। अप्राप्तकाले भुञ्जानः
तांस्तान् व्याधीनवाप्नोति मरणं नियच्छति।

शरीरमिति कस्मात्। अग्नयो ह्यत्र श्रियन्ते ज्ञानाग्निर्दर्शनाग्निः कोष्ठाग्निरिति। तत्र कोष्ठाग्निर्नामाशितपीत लेह्यचोष्यं पचति दर्शनाग्नि रूपाणां दर्शनं करोति ज्ञानाग्नि शुभाशुभं च कर्म बिन्दति।

अन्नाद् बलं च तेजश्च प्राणिनां वर्द्धते सदां। त्रयः उपस्तम्भाः आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति।

एभिस्त्रिभिर्युक्तियुक्तैरुपस्तम्भ मुपस्तम्भैः शरीरं बलवर्णो- पचयोपचितमनुवर्त्तते यावदायुः संस्कारात्। चरक संहिता सूत्र स्थान अध्याय।११

"मधुराम्ल लवण कटुतिक्त कषायाः षड्रसः।"
प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बल वर्णौ जसाञ्च।
सषट्सु रसेष्वायत्तः, रसाः पुनर्द्रव्याश्रयाः, द्रव्याणिपुनरौषधयः॥
सुश्रुत सूत्रस्थान अ. १

आह्रियत इत्याहारोऽन्नम्। अद् भक्षणे-धातु से अन्न शब्द बना, अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः। अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते।

आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारणः।
स्मृत्यायुः शक्ति वर्णौजः सत्व शोभा विवर्द्धनः। चरक
इत्याहार गुणा, आयुर्वेद पृष्ठ २०५

आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवः स्मृतिः।

क्यों खावें ? कब खावें ? क्या खावें ? कैसे खावें ?

उष्णं स्निग्धं मात्रावज्जीर्णे वीर्याविरुद्धं इष्टे देशे सर्वोपकरणं नातिद्रुतं नातिविलम्बितं अजल्पन्नंहसंस्तन्मना भुञ्जीत आत्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक्।
चरक संहिता विमानस्थान अ. १

तच्चनित्यं प्रयुञ्जीत स्वस्थ्यं मेनानुवर्त्तते अजातानां विकाराणां च प्रपत्तिकरं।

ओं अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः, प्र प्रदातार
तारिषऊर्ज्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे। मनुः ११।८३

शुष्मिणः बलकारक, अनभीवस्य रोग रहित, प्रतारिष तृप्तकरी "कम खाना और खूब चबाना यही है तन्दुरुस्ती का खजाना।"

नित्यं हिताहार विहार सेवी, समीक्ष्यकारी, विषयेष्वसक्तः। दाता, समः सत्यपरः, क्षमावान्, आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः। चरक संहिता, वाग्भट्टस्य

आहारार्थं कर्म कुर्मादनिन्द्यं आहारश्च प्राण संधारणार्थम्।
प्राणाधार्याः तत्व जिज्ञासनार्थं तत्वं ज्ञेयं येन भूयो न दुःखम्।
विद्या शिल्पं मृतिः सेवा गोरक्ष्यं त्रिपणिः कृषिः।
धृतिर्भैक्ष्य कुसीदं च दश जीवन हेतवः॥ मनुः अ. ६
"सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः।
सुचिन्त्य चोक्तं, सुविचार्य यत्कृत सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् नीतिः"
"अग्निः प्राणान् संदधाति अथर्वः ३।३१।६
"ग्लानि गौरव विष्टम्भ मारुत मूढ़ता।
विड्बन्धोऽति प्रवृत्तिर्वा सामान्याजीर्ण लक्षणम्। माधव निदाने
"उद्गार शुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः।
लघुता क्षुत् पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम्। निदाने
"ईर्ष्याभयक्रोध परिप्लुतेन लुब्धेन शुकदैन्यनिपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमान मन्नं न सम्यक् पचते नरस्य॥ निदाने
"मात्रया चाव्यवहृतं पथ्यं चान्नं न जीर्यति।
चिन्ता शोक भय क्रोध दुःखशय्या प्रजागरैः॥ निदाने
"अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं अनम्बुपानाच्च स एव दोषः।
तस्मान्नरोवन्हि विवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि॥" निदाने

भौतिक अग्नि का उपयोग

सम् उपसर्ग पूर्वक इन्धी दीप्तौ धातु से समिधा समिधेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः।
अग्निर्देवता, गायत्री की धन्दः।

"समिधाग्नि दुवस्यत धृतैर्बोधयतातिथिम्,
आस्मिन् हव्या जुहोत न॥" यजुः ३।९ ऋक् ८।४४।१

अन्वयः—समिधा अग्निं धृतैः बोधयत तमतिथिमिव दुवस्यत् अस्मिन् हव्या आ जुहोत न। (समिधा) सम्यगिध्यते प्रदीप्यते मया तया। जिन इन्धनों से भली प्रकार प्रकाश हो सकता है। उन आम, अरणी, बेल शमी बट, गूलर, ढाक, पीपल देवदारु आदि की लकड़ियों द्वारा अथवा अन्नं आदि आहारों द्वारा।(अग्निम्) यज्ञाग्निम्, देहाग्नि = वैश्बानरं वा, जाठराग्नि वा (धृतैः) शोधितैः सुगन्धि आदि युक्तैः घृतादि पदार्थैः (वोधयत) उद्दीपयत, प्रदीप्त करो। (तं अतिथिमिव) अविद्यमाना तिथिर्यस्य तमिव (नास्ति तिथिर्यस्य सः) (दुवस्यत) सेवध्वम् (सी की अन्न जल आसन प्रिय वचनों से सेवित (अस्मिन्) यज्ञाग्नौ, देहाग्नौ वा।(हव्या) दातुमत्तुमादातुमर्हाणि वस्तूनि। सुगन्धित—केशर, कस्तूरी, चन्दन, अगर, तगर, मोथा,

छरीला ।मिष्ट—खांड़, गुड़, बूरा, शक्कर, दाख, छुहारा । रोग विनाशक—सोम लता, तालीसपत्र गूगल, कूठकपूर, कपूरकचरी, अगर, तगर गुडची आदि । पुष्टिकारक—घी, दूध, हलुवा, मेवा आदि चार प्रकार के शाकल्य को इदानादानयोः आदाने श्रेपणे । (आ जुहोत न) आ समन्तात् जुहोतन प्रक्षिपत्, डालो, यथा गृहस्था आसन्मन्न जल वस्त्र प्रिय वचनादिभिः उत्तम गुणमतिथिं सेवन्ते तथैव विद्वद्भिः यज्ञाग्नि वायु जलवृष्टि शुद्धिणाय सेवितव्यः ।

"नायं लोकोऽस्त्य यज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ।" गीता ४ ।३१

"यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ।। गीता ३ ।९

"सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच वृहस्पतिः ।
अनेन प्रस्वविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक् ।। गीता ३ ।१०

"देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।। गीता ३ ।११

"इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्तेयज्ञ भाविताः ।
तैर्दत्तान प्रदायैभ्यो यो भुक्ते स्तेन एव सः ।। गीता ३ ।१२

इष्टान् अभिलषितान्, भोगान् भोग्य पदार्थान्
स्त्री, पुत्र, पशु, हिरण्य, धन धान्यदीन् पदार्थान् ।

"यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्म कारणात् ।।"
गीता अ. ३

"अघं स केवलं भुंक्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ।। मनुः ३ ।११

"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म, कुतः ? तस्य परार्थत्वात् ।
यज्ञः परोपकारायैव भवति ।
जनानां समूहोः जनता, तत सुखायैव यज्ञो भवति ।
स्वामी दयानन्द ऋ. भा. मू.

"यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।।" गीता १८ ।५

(अग्निः) अञ्चु गति पूजनयोः धातु से बना, अग्निः कस्मात् ? अग्रणी भवति, अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते, अङ्ग नयति स नमस्कारः अचि गतौ धातु से ।

मेधा बुद्धि के लिए प्रार्थना

मेधा काम ऋषिः । परमात्मा देवता

"यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ यजुर्वेद ३२।१४

अन्वयः—हे परमात्मन् अग्ने। देवगणाः पितरश्च यां मेधां उपासते तया मेधया अद्य मां मेधाविनं कुरु स्वाहा। हे (अग्ने) अग्रणी प्रभु। प्रकाश स्वरूप परमात्मन् (देवगणाः) देवानां विदुषां समूहाः। विद्वानों के समूह, ज्ञानी लोग (पितरः) पालामितारो विज्ञानिनश्च। ज्ञानी लोग (यां मेधां) शुद्धां धियम्। जिस उत्तम बुद्धि की। (उपासते) प्राप्य सेवन्ते। उपासना करते हैं। सेवन करते हैं। (तया मेधया) उस उत्तम बुद्धि से। धारणावत्या धिया। (अद्य मां) आज मुझे। (मेधाविनं) प्रशस्ता मेधा विद्यते यस्य स मेधावी तं मेधाविनं बुद्धिमान्। उत्तम बुद्धि से संयुक्त।(कुरु) कीजिये। (स्वाहा) सत्यया वाचा। यह मेरी वाणी सत्य हो। मैं स्वार्थ त्याग करता हूँ। सु आहेति वा। स्वावागाहेति वा स्वं प्रादेति वा, स्वाहुतं हावजुहोताति वा।

धीर्धारणावती मेधा—इत्यमरः।

स्वाहा देवहविर्दाने—इत्यमरः।

स्वाहा—सु आहेति वा, स्वा वागाहेति वा, स्वं प्राहेति वा।

स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा, निरुक्ते ८।२१

सु + पूर्वक हू दानादानयोः, आदाने चेत्येके। इस धातु से स्वाहा शब्द व्युत्पन्न हुआ।

पान्ति पालयन्ति सद् विद्या शिक्षाभ्यां येते पितरः ज्ञानिनः देवोदानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा।

मतिश्चमे सुमतिश्चमे यज्ञेन कल्पन्ताम्। यजुः १८।११

मतिः मननया समतिः, शोभना प्रज्ञा (यज्ञेन)

मेधां मे वरुणो ददातु, मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा॥ यजुः ३२।१५

(वरुणः) वृञ् वरणे धातु से वरणीय श्रेष्ठ ईश्वरः। मेधां शुद्धां धियम्। (प्रजापतिः) प्रजायाः पालकः। प्रजातायाः सृष्टेः पालकः। (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान्। इदि परमैश्वर्ये धातु से।(वायुः) बलिष्ठो बलप्रदः।अत्यन्त वेगवान्।धाता) सर्वस्य धारकः। कर्म फल प्रदाता वा।

धृ धारण पोषणयोः।
धातु से दध् धारणे।

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिंमेधामयासिषँ स्वाहा॥ यजुः ३२।१३

(सदसस्पतिम्) विश्वस्य पालकम्। विश्व के स्वामी। (अद्भुतम्) आश्चर्य गुण कर्म स्वभावम्। (इन्द्रस्य प्रियम्) इन्द्रियाणां स्वामिनो जीवस्य प्रीतिविषयम्।

जीव के प्रिय मित्र।(सनिं) जिससे सत्य असत्य का विभाग किया जाय उस (अयासिषम्) याचना करता हूँ। याञ्चयामि (स्वाहा) सत्यया वाचा। सत्, क्रियया वा।

"यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः।
तया मामद्य मेधया मेधाविनं कृणु॥" अथर्व. ६।१०८

(मेधाविनः भूतकृतः ऋषयः) मेधावी प्राचीन ऋषियों ने।

"मेधामहं प्रथमां बह्मण्वतीं बह्मजूतामृषिष्टुताम्।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे॥"अथर्व ६।१०८

इन्द्रियों की पवित्रता

"वाचं ते शुन्धामि, प्राणं ते शुन्धामि,
चक्षुस्ते शुन्धामि, श्रोत्र ते शुन्धामि,
नाभिं ते शुन्धामि, मेढ्रं ते शुन्धामि,
पायुं ते शुन्धामि, चरित्रांस्ते शुन्धामि॥" यजुः ६।१४

वाङ्मआस्येऽस्तु।

वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृताधार्यते।

(वाचं) वत्तयनया तां वाणीम्। हे शिष्य विविध शिक्षा भिस्तेऽहं वाचं शुन्धामि। निर्मली करोमि। (वागिन्द्रिय) (प्राणं) प्राणिति येन तं जीवन हेतुम्। नसोर्मे प्राणोऽस्तु।(चक्षुः) चष्टेऽनेन तन्नेत्रम्, चक्षुरिन्द्रियम्, अक्ष्णोर्मेचक्षुरस्तु।(श्रोत्रम्) शृणोति येन तत्। श्रोत्रेन्द्रियम्, कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु।(नाभिं) नह्यते बध्यते ययाताम्। नाभि, टूंडी (मेढ्रं) मेहत्यनेन तदुपस्थेन्द्रियम्, मूत्रेन्द्रिय।(पायुं) पात्यनेन तं गुह्येन्द्रियम्। मलद्वार।(चरित्रान्) व्यवहारान्। आचार विचारों को।(शुन्धामि) शुद्ध पवित्र अर्थात् धर्मानुकूल करता हूँ।शुन्ध शौच कर्मणि धातु से सुन्धामि।

"वाचं यच्छ मनो यच्छ यच्छ प्राणेन्द्रियाणि च।
आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वनः॥" यच्छवशीकुरु।

"अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥" गीता १७।१५

"मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भाव संशुद्धि रित्येतत्तपो मानस उच्यते॥" गीता १७।१६

"इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेष क्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्त्वाय कल्पते॥" मनुः।

देवद्विज गुरु प्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्। ब्रह्मचर्य शम, दम, तितिक्षा, विवेक, वैराग्य और श्रद्धा, ये षट् सम्पत्ति हैं मोक्ष प्राप्ति के लिए।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमायाति एति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।

If wealth is lost nothing is lost.
If health is lost someting is lost.
If charector is lost everyting is lost.

आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च। तस्मादस्मिन् सदा—

"आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥" मनुः ४।१५६

"दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥" मनुः ४।१५७

"धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रिय वशानुगः।
श्री प्राण धनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते॥"महाभारत।

"अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः।
इन्द्रियाणाम नैश्वर्या दैश्वर्याद् भ्रश्यते हि सः॥"
महाभारत। उ. पर्व

"केयूराः न विभूषयन्ति पुरुषं हाराः न चन्द्रोज्ज्वलाः।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृतामूर्द्धजा॥"
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते।
क्षीयन्तेऽखिल भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥ भर्तृहरिः।

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणि र्न तु कंकणेन।
विभाति कायः खलु सज्जनानां परोपकारेण न तु चन्दनेन॥ भतृहरि

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यम प्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः॥" मनुः।

शुन्ध शौच कर्मणि-धातु से शुन्धामि शब्द बना।

मनः शौचं कर्म शौचं कुल शौचं च भारत।
शरीर शौचं वाक् शौचं तथैव सविधं स्मृतम्॥

इन्द्रियों की चञ्चलता

विभेकर्णापतयतो विचक्षुर्वीइदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्।
विमे मनश्चरति दूर आधीः किंस्विद् वक्ष्यामि किमुनूमनिष्ये॥
ऋक् ६।९।६

(मे कर्णौ) मेरे दोनों कान इधर-उधर, दूर-दूर।(विपतयत:) विषयों में गिरते हैं।(चक्षु: वि) मेरे नेत्र भी विषयों में जाते हैं।(हृदये आहितं) हृदय में स्थापित जो यह ज्ञान रूप।(यद् इदं ज्योति:) ज्योति है वह भी (विपतयति) विरुद्ध विषयों में जाती है। (दूरे आधी:) दूर-दूर विषयों में, भोगों में यह (मे मन: विचरति) मेरा मन विचरण करता है। ऐसी अवस्था में हे प्रभो ! मैं आपसे।(किंस्वित् वक्ष्यामि) क्या कहूँ ? क्या विनती करूँ ? और (किंउनु मनिष्ये) क्या मनन करूँ ?

स्वित् प्रश्ने वितर्के च, नु प्रच्छायां विकल्पे च, इत्यमर:।

यन्मनसाध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति।
तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते। शतपथ

"इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
संन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति।" मनु: २।९३

"इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्न मातिष्ठेत् विद्वान् यन्तेव बाजिनाम्।" मनु: २।८८

"आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः संपदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्।।" महाभारत

"इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेष क्षयेण च।
अहिंसया च भूतानां अमृतत्वाय कल्पते।।" मनु:

"इन्द्रियाभ्या मजय्याभ्यां द्वाभ्यामेव हतं जगत्।
अहो उपस्य जिह्वाभ्यां ब्रह्मादि मशकावधिः।।" मनु:

"के शत्रवः सन्ति निजेन्द्रियाणि।
तान्येवमित्राणि जितानि यानि।।" शंकराचार्य:

मन: = मनन शीलं, ज्ञानसाधनम्।

"यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।।" गीता २।६०

"तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीतमत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।" गीता २।६१

"यतो यतो निश्चरति मनश्चंचल मस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।" गीता ६।२६

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
"अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृहयते।।" गीता ६।३५

"अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।।" योग सूत्र १।१२

अभ्यसनमभ्यास: (चेतस: स्थापनं भूयो भूयोऽभ्यास: स उच्यते)

कुरङ्ग मातङ्ग पतङ्ग भृङ्ग मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेक पञ्च।।

"अलि पतंगमृगमीन गज जरत एक ही आँच।
तुलसी वे कैसे जियें जिन संग लागी पाँच।।"
"ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।"
"क्रोधात्भवति संमोहः संमोहात् स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।" गीता २।६३
"सद्भावे साधुभावे च सदित्येत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते।।" गीता

सत् + आचारः = सदाचार

"परिमाग्नेदुश्चरिताद् वाधस्वा मा सुचरितेभज।
उदायुषास्वायुषोदस्थाममृताँ श अनु ।। यजुः ४।२८

(हे अग्ने) हे अग्रणी परमात्मन्। तेजस्वी जगदीश्वर ज्ञानमय प्रभो। (मा) मुझको। अपने भक्तजन को। (दुश्चरितात्) दुःचरितात्। दुष्टाचरणात्। दुष्ट व्यवहार से। (परिबाधस्व) परितः सर्वतः। बाधस्व निवर्त्तय।सब तरह से पृथक् कीजिये तथा (मा) मुझको अपना भक्त जन जानकर (सुचरिते) उत्तम धर्माचरण युक्त व्यवहार में (भज) स्थापय। स्थापित कीजिये, लगाइये मैं (उत् आयुषा) अपने जीवन में ऊँचा उठकर (सु आयुषा) उत्तम धर्ममय जीवन द्वारा, उत्कृष्ट जीवन द्वारा (अमृतान्) ज्ञानी विद्वानों महात्माओं को (अनु अस्थाम्) अनुकूल व्यवहार में स्थित होऊँ।

सदाचार = सदवृत्त, दुराचार = दुर्वृत्त, वृत्त = गोल घेरा।

"वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमायाति एति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणोवृत्ततस्तु हतो हतः।"
"उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।"
कठोपनिषद् ३।१४

हे मनुष्यो ! उठो, सावधान होओ, श्रेष्ठ महापुरुषों, ज्ञानी जनों के पास जाकर उनसे उत्तम ज्ञान प्राप्त करो।

"बिगरी जनम अनेक की सुधरै अब ही आजु।
होहिं राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु।।"
"काम क्रोध अरु लोभमद मिथ्या छल अभिमान।
इनसे मन को रोकिवो, साँचो व्रत पहिचान।।"
"चतुर्विधा भजन्ते मां जना सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।" गीता

आङ् उपसर्ग पूर्वक चरगति भक्षणयोः धातु से, आङ् मर्यादा वचने

"आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥"
"ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
काय क्लेशांश्च तन्मूलान् वेद तत्वार्थ मेव च ॥"
आचारः प्रभवो धर्मः सन्तश्चाचार लक्षणाः।
साधूनाञ्च यथावृत्तं सदाचारः स उच्यते ॥
"अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्न दोषाच्च मृत्युर्वि प्राञ्जिघांसति ॥" मनुः ५।४
वेद बाह्य ब्रताचाराः श्रौतस्यार्त बहिष्कृताः।
पाखण्डिन इति ख्याता न संभाष्या द्विजातिभिः ॥४॥
पाखण्डिनो विकर्मस्यान् वैडालवृत्तिकान् शठान्।
हैतुकान् बक वृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥४॥
न मा दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यन्ते नराधमाः गीता ७।१५
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥" मनुः ४।१५७
आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीता सह षड्भिरङ्गैः।
छन्दोस्येनं मृत्यु काले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥

इन्द्रियों को बुरे विषयों में जाने से कैसे रोकें ? इस विषय में बतलाते हैं—
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च, अहिंसया च भूतानां। मनुः
"यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥"
आचाराल्लभतेह्यायुः आचारादीप्सिताः प्रजाः। मनुः
उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ गीता ६।५
केशत्रवः सन्ति ? निजेन्द्रियाणि।
तान्येव मित्राणि जितानि यानि।

नटी नट कथा—

रात घड़ी भर रह गई थाके पञ्जर हाथ।
कहै नटिनी सुन नायक मृदुला ताल बजाय ॥
बहुत गई थोड़ी रही यह भी बीती जाय।
ताल भंग मत हूजियो कुलै दाग लगि जाय ॥

सत्य व्रत का अनुष्ठान

**"अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमह मनृतात् सत्यमुपैमि ।।"** यजु: १ ।५

(अग्ने) हे अग्र नायक परमात्मन्। अग्रणी प्रभो! (व्रतपते) व्रतानां सत्यभाषणादीनां पतिः पालकः। तत्संबुद्धौ हे सत्यपते परमेश्वर। (व्रतं) सत्यभाषणं सत्यंकरणं सत्यमानं च सत्य धर्मं। (चरिष्यामिं) आचरिष्यामि। अनुष्ठास्यामि। (तत्) व्रतमनुष्ठातुं। तत् सत्याचरणं धर्मं कर्त्तुमहम् (शकेयम्) समर्थो भवेयम्। अनुष्ठान करने में समर्थ होऊँ (तत्) सत्य धर्मानुष्ठानं पूर्तिश्च। उस सत्यव्रत को (मे) मम। मेरी इस व्रतानुष्ठान की इच्छा को आप (राध्यताम्) सम्यक् सिद्धं क्रियताम्। संसेध्यताम् अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिए। किं तद् व्रतमित्यत्राह ? वह व्रत क्या है ? (इदम्) प्रत्यक्षमाचरितुं सत्यव्रतम्। (अहम्) धर्मादि पुरुषार्थ चतुष्टयं चिकीर्षुर्मनुष्टाः। (अनृतात्) न विद्यते ऋतं यथार्थमाचरणं यस्मिन् तस्मात् मिथ्याचरणात् मिथ्याभाषणात् पृथक् भूत्वा ।(सत्यम्) यद् वेद विद्यया, प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः सृष्टिक्रमेण विदुषां संगेन सुविचारेणात्म शुद्धया वा निर्भ्रमं सर्वहिते तत्वनिष्ठं सत्प्रभव सम्यक् परीक्ष्य निश्चीयते तत्। सत्यं कस्मात्। सत्सु तायते सत्प्रभवं भवतीति वा। (उप एमि) उपैमि ज्ञातुं अनुष्ठातुं प्राप्नोमीति।

नानृतात्पतकं किञ्चिन्न सत्यात्सुकृतं परम्।
विवेकान्मपरा बन्धुरिति वेदविदो विदुः।
सर्वैः मनुष्यैरीश्वरस्य सहाय्येच्छा सदा कार्येति।
नैव तस्य सहायेन बिना सत्यधर्म ज्ञानं
तस्यानुष्ठानपूर्तिश्च भवतः।
"द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति सत्यं चैवानृतञ्च।"
मनुष्याणां द्विविध मेवाचरणं सत्यमनृतं च।
तत्र ये वाङ्मनः शरीरैः सत्यमेवा चरन्ति ते देवाः।
ये चैवानृत माचरन्ति ते मनुष्याः अर्थादसुरराक्षसाः
सन्तीति वेद्यम्।
सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः एतद्धवै देवा व्रतं चरन्ति
यत् सत्यम्।
सत्याचरणाद्देवा असत्याचरणान्मनुष्याश्च भवन्ति।
शतपथ ब्राह्मणे कां. १ अ. १

काम क्रोध अरु लोभ मद मिथ्या छल अभिमान।
इनसे मन को रोकिवो साँचो व्रत पहिचान।।

"सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो आप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ।।"
"सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीण दोषा ।" मुण्डकोपनिषद् ३ ।१ ।५-६

"त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ सत्येष्वा ।
त्वं यज्ञेष्वीडयः । अथर्व १९ ।५९ ।१

"नहि सत्यात्परो धर्मः नानृतात्पातकं परम् ।" मनुः ।

"सत्यमेव व्रतंयस्य दया दीनेषु सर्वदा ।
काम क्रोधौ वशे यस्य स साधु कथ्यते बुधैः ।।"
सत्येन रक्ष्यते धर्मो दयादानात् विवर्द्धते ।
मृज्यया रक्ष्यते रूपं कुलं वृतेन रक्ष्यते ।।

अतः सत्यधर्मस्यानुष्ठानमीश्वर प्रार्थनया स्व पुरुषार्थेन च कर्त्तव्यम् । ना पुरुषार्थिनं मनुष्यमीश्वरोऽनुगृह्णाति । यथा चक्षुष्मत्तं दर्शयति नान्धं च, एवमेव सत्यधर्मं कर्त्तुमिच्छन्तं पुरुषार्थ कारिणमीश्वरानुग्रहाभिलाषिणं प्रत्येवेश्वरः कृपालुर्भवति नान्यं प्रति चेति ।।

"सत्यहीना वृथा पूजा सत्यहीनो वृथा जपः ।
सत्यहीनं तपोव्यर्थमूषरे वपनं यथा ।

रिष् हिंसायाम् = हिंसिता भवेम । ऋक् ६ ।५४ ।९
सुहोत्र ऋषिः, पूषा देवता, गायत्री छन्दः ।

"पूषन् तव ब्रते वयं न रिष्येम कदाचन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ।।" यजुः ३४ ।४१ अथर्व. ९ ।३

ब्रत = आपके बनाये अटल सृष्टि नियमों के अनुसार चलते हुए हम (पूजन्) हे पुष्टिकारक परमात्मन् । शरीर, आत्मा समाज की पुष्ठि करने वाले जगदीश्वर ।(वयम्) हम सब भक्तजन सेवक प्रार्थना करने वाले लोग । (तव ब्रते) शीले नियमे वा सत्यधर्म पालन रूप नियम में (व्रदाचन) कदाचिदपि, कभी भी । किसी अवस्था में भी । (न रिष्येम) चित्त न बिगाड़ें, विचलित न हों । दुःखी न हों । (इह) इस जन्म में मनुष्य शरीर प्राप्त करके पथ भ्रष्ट न हों । (ते स्तोतारः) तव स्तुतिकर्त्तारः । आपकी स्तुति, उपासना, प्रार्थना करते हुए । भवामः करने वाले होते हैं । (स्मसि) स्मः । सुख से जीवन व्यतीत करने वाले हों, यथा सूर्यचन्द्रश्च न विभीतो न रिष्यतः । एवा में प्राण मा विभे ।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर के वा आप्त विद्वानों के बनाये हुए नियमों के अनुकूल वर्त्तते हैं। वे कभी नष्ट सुख वाले नहीं होते हैं।

वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो वयं त्वां जगत् साक्षिरूपं नमामः। सदेकं निधानं निरालम्बमीशं

शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः ॥ २।३२
अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥
योग सूत्र २।३०

"सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढ़व्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥" गीता ९।१४

"तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसार सागरात्।
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशित चेतसाम्॥" गीता १२।७

"मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥" गीता १२।८

"अहिंसा सत्यमस्तेयं शौच मिन्द्रिय निग्रहः।
एतत्सामाजिकं धर्मं चातुर्वण्यंऽब्रवीन्मनुः॥"

सुपथ पर चलने के लिए प्रार्थना

सुपथगामी बनें अगस्त्य ऋषिः। अग्निर्देवता। असतो मा सद्गमय।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।
यजु : ५।३६

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।

(अग्ने) सर्वेषां प्रकाशक, अग्रनेता परमात्मन्। (देव) सर्वानन्द प्रापक सर्व जगत् प्रकाशक, सर्व सुखदाता प्रभो। (अस्मान्) हम सब सुख उन्नति चाहने वाले भक्तों को। (राये) परम श्रीः मोक्ष सुख प्राप्तये। धन वा ज्ञान प्राप्ति के लिए (सुपथा) शोभनेन धर्ममार्गेण, उत्तम मार्ग से, असतो मा सद्गमय। (नय) प्रापय। ले चलिये, क्योंकि आप (विश्वानि) सर्वाणि, सम्पूर्ण उत्तम आचार-विचार व कर्मों को। (विद्वान्) जानने वाले हैं। यः सर्वं वेत्ति सः विद्वान् (अस्मत्) अस्माकं सकाशात्। हम लोगों से (जुहुराणम्) अन्तःकरणस्य कौटिल्यम्, मन की कुटलिता। (एनः) दुष्कृतात्मकमपराधम्, दुष्ट कर्मों को (युयोधि) दूरी कुरु, दूर कीजिए। युध सं प्रहारे धातु (ते) तव। संसार के परमगुरु आपकी हम लोग (भूयिष्ठां) ब्रहुतमाम्। भूयसीं, बहुत अधिक (नम उक्तिं) नति पुरः सरां स्तुतिम्। नमस्कार पूर्वक स्तुति को (विधेम) कुर्याम, करें। (स्वाहा) स्वकीयया सत्यया वाचा, वेदवाचा वा।

भावार्थ—प्रत्येक मनुष्य को सत्यधर्म मार्ग पर चलते हुए धन व ज्ञान प्राप्ति के लिए परम गुरु परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करनी चाहिए और दुष्कर्मों को छोड़ने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

सुपथ शब्द से यह बतलाया कि हम सब पथिक हैं।

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहिं।
अपि पन्थामगन्महि स्वस्ति गोमनेहसम्।
येन विश्वापरिद्विषो वृणाक्ति विन्दते वसु॥

पाप पुण्य फल प्रदाता जगदीश्वर

मेधातिथि ऋषिः। सविता देवता। गायत्री छन्दः।

"विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम्।"

यजुः ३० ।४

अन्वयः—वसोश्चित्रस्य राघसः विभक्तारं सवितारं नृचक्षसम् वयं हवामहे। (विभक्तारं) विभाजियितारं। विभज्य दातारं वा। (हवामहे) प्रशंसेम। प्रशंसा करें। प्रार्थना करें। (वसोः) सुखानां वास हेतोः। सुखों के निवास के हेतु।(चित्रस्य) अद्भुतस्य, आश्चर्य स्वरूप। (राधसः) धनस्य, धन का, ज्ञान का, पू प्रसवैश्वर्ययोः (सवितारं) जनयितारम्, सबके उत्पादक। (नृचक्षसम्) वृणां द्रष्टारं परमात्मानं, सब मनुष्यों के अन्तर्यामी स्वरूप से सब कामों के देखने हारे परमात्मा की हम लोग प्रशंसा करें।

भावार्थ—जगदीश्वरो यादृशं यस्य कार्यं पापं पुण्यं यावच्यास्ति तावदेव तादृशं तस्मै ददाति।

परमेश्वर पक्षपात रहित होकर सब जीवों को उनके कर्मानुसार पाप पुण्य रूप फल का प्रदान करता है।

कर्म वैचित्र्यात् सृष्टि वैचित्र्यम्। सांख्य सूत्र ६ ।४२
"वैषम्य नैर्घृण्ये न सापेक्ष्यत्वात्।" वेदान्तसूत्र २ ।१ ।३४
न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात्। वेदान्त २ ।१ ।३५
"पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन।" वृहदारण्यक
"कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्॥" गीता १४ ।१६
"ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्य गुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥" गीता १४ ।१८

कल्याणकारी पिता

मधुच्छन्दा ऋषिः, अग्निर्देवता, विराह गायत्री-छन्दः।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये। यजुः 3।24

अन्वयः—हे अग्ने। जगदीश्वर। यस्त्वं कृपया सूनवे पिता इव सूपायनो भवसि, स त्वं नोस्मान् स्वस्तये सततं सचस्व संयोजय। (अग्ने) हे करुणामय जगदीश्वर। ज्ञान प्रदाता परमेश्वर। (सूनवे) औरसाय सन्तानाय। अपने पुत्र पुत्रियों के लिए। (पितेव) पिता इव। जनक इव। पिता के समान। (नः) अस्मभ्यम्। हमारे लिए। (सूपायनः) सु उपायनः। श्रेष्ठ ज्ञान के देने वाले। (भव) भवसि, हैं। जैसे पालक पिता अपने पुत्र पुत्रियों को श्रेष्ठ ज्ञान देता और उत्तम व्यवहारों में लगाता है। वैसे ही आप हैं। (सः नः) जगदीश्वरः नः अस्मान्। सो आप जगदीश्वर हम लोगों को निरन्तर (सः) लोके वेदे च प्रसिद्धः परमेश्वरः। (स्वस्तये) सुखाय, सुख के लिए। कल्याणार्थ। (सचस्व) संयोजय, संयुक्त कीजिये। अर्थात् श्रेष्ठ व्यवहारों में लगाइये। अथवा आ सचस्व, आ समन्तात् सचस्व संयोजन। अन्येषामपि हृष्यते इति दीर्घः। इस मन्त्र में उपमालंकार है।

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव। त्वमेव बन्धुश्च।
षच् समवादे धातु से,

"यः प्रीणयेत् सुचरितैः पितरं स पुत्रो यद्भर्त्तुरेव
हितमिच्छति तत्क लत्रम्।
तन्मित्रमापदि, सुखे च समक्रियं यदेतत् त्रयं जगति पुण्य-
कृते लभन्ते॥"

"त्वं हि नः पिता वसोः त्वंमाता शतक्रतो वभूविध,
अथा ते सुभ्रमीमहे॥" ऋक् ८।९८।११

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्। गीता ३।१५

हमको ज्योति प्राप्त हो।

(तमसो मा ज्योतिर्गमय)

हमें शुभ कर्म की प्रेरणा दो।

"इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥"
ऋग्वेद ७।३२।२६

(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् प्रभो। सर्वदृष्टः जगदीश्वर। (नः) हम उपासकों को। आपको भक्तों को। (क्रतुम्) शुभ कर्म की प्रज्ञा की तथा उद्योग की। क्रतुम =

कर्म वा प्रज्ञां वा, क्रतुमिति कर्मनाम। (आभर) आ समन्ताद् भर प्रापय, भर दो परिपूर्ण करो। (यथा पिता) जैसे शुभेच्छु पालक पिता। (पुत्रेभ्यः) अपने पुत्रों को उत्तम शिक्षा से परिपूर्ण करता है। अथवा कल्याण मार्ग की ओर ले जाता है। तद्वत पुत्र पुत्रियों को सुशिक्षित। (पुरुहूत) हे बहुतों से पूजनीय परमेश्वर। (नः शिक्ष) हमको सुशिक्षित कीजिए। जिससे हम आपकी आज्ञानुसार धर्म मार्ग पर चलकर। (अस्मिन् यामनि) इस जीवन यात्रा में। (जीवाः) सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए हम जीव गण। जीव प्राण धारणे (ज्योतिः अशीमहि) आपकी कल्याणी ज्योति प्रतिदिन प्राप्त करते रहें।

"किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥"
कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥गीता ४।१६-१७

क्रियतेति कर्म। कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म—पाणिनि। कर्म = वर्णाश्रमादेरनुष्ठेयस्य

कर्म चार प्रकार के—नित्य, नैमित्तिक, काम्य और निषिद्ध।

यत् कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात् परितोषोऽन्तरात्मनः।
तत्तत् प्रयत्येन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्॥ मनुः ४।१६१
वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यात् अतन्द्रितः।
तद्धि कुर्वन्यथाशक्तित्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।अथा ते सुम्नमीमहे। ऋग्वेद ८।९८।११

(वसोः) हे वसो यद् विवसतेः। हे सबके अन्दर निवास करने वाले प्रभो ! तथा हे सर्वान्तर्यामिन्, सुखदाता, वस् निवासे धातु (शतक्रतो) सैकड़ों सत्कृत्य करने वाले जगदीश्वर। (त्वं हि नः पिता) तू हम सबका सच्चा पिता है। (त्वं माता बभूविथ) तू ही सबकी माता है। (अथा ते) इसलिए हम सब आपसे (सुम्नं ईमहे) सुख की कामना करते हैं। चाहते हैं।सुम्नं = सुख, ईमहे = इच्छा करते हैं।

"पितानोऽसि पिता नो वोधि नमस्ते अस्तु मा मा हिँ सी।"

पिता जनक इव, नः अस्माकं असि। यजुः ३७।२०

बोधि बोधय, मा माम्, मा निषेधे, हिंसी हिंसामुक्तं कुर्याः।

हिंसि हिंसायाम् धातु से।

भावार्थः—हे जगदीश्वर ! भवान् अस्माकं पिता स्वामी बन्धुमित्रो रक्षकोऽसि तस्मात्वां वयं सततमुपास्महे।

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव।।"
"पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽयप्रतिम प्रभावः।।"
गीता ११।४३

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् सामयजुरेव च।। गीता ९।१७

यो नः पिता जनिता यो विधाताधामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं सं प्रश्नं भुवनायन्त्यन्या।।
यजुः १७।२७

अन्वयः—हे मनुष्याः यो नः पिता जनिता यो विधाता विश्वा भुवनानि धामानि वेद। यो देवानां नामधा एक एवास्ति, यमन्याभुवनायन्ति सं प्रश्नं तं पूयं जानीत। जनिता = जनयिता जननी, माता। (यः नः पिता) हे मनष्यो ! जो हम सबका पालक पिता है। (जनिता) तथा सब पदार्थों का उत्पन्न करने हारा है। (यः विधाता) जो कर्म फलों का विधान करने हारा अर्थात् सब जीवों को कर्मों के अनुसार फल देने वाला तथा सबको धारण करने वाला, निर्माण करने वाला। (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक लोकान्तरों को और (धामानि वेद) जन्म स्थान नाम को जानता है। (यः देवाना नामधा) जो देवों का नाम धरने वाला। (एकः एव) अकेला ही अपनी सामर्थ्य से सृष्टि की रचना पालन, संहार करता है। (अन्याभुवनायन्ति) जिसको अन्य लोकस्य जीव प्राप्त होते हैं। अथवा करते हैं। (सं प्रश्नं तं जानीथ) सम्यक् प्रश्नोत्तरों द्वारा उसको तुम लोग जानो।

किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
तदेवाग्निस्तदादित्यस्तदुवायुस्तदुचन्द्रमा। तदेव शुक।

एक देव ही सबका उत्पादक है।

भुवन पुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्व कर्मा देवता।
"विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत
विश्व तस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन देव एकः।।"
ऋक् १०।८१

(विश्वतः चक्षुः) विश्वतः सर्वासु दिक्षु चक्षुर्दर्शनं यस्य सः। विश्वतः सर्वस्मिन् जगति चक्षुर्दर्शनं यस्य सः। जिसके सर्वत्र आँख हैं। अर्थात् जो अहर्निश सबके शुभाशुभ कर्मों को देखता है। (उत विश्वतः मुखः) और सर्वत्र मुख जिसके हैं। मुख के दो काम बोलना—वेद द्वारा उपदेश देना और भक्षण करना सबका संहार करना। (विश्वतः वाहुः) सर्वत्र जिसके बाहु कार्य कर रहे हैं। बाहुवैं वलम्।

बाहुर्वै वीर्यम् । पकड़ना और रक्षा करना । (उत विश्वतः पात्) सर्वत्र जिसके पाँव हैं । विश्वतः सर्वत्र पात् गतिर्व्याप्तिर्थस्य सः । पद् गतौ धातु । (सं बाहुभ्यां पतत्रैः) सं = सम्यक्, बाहुओं से और पाँवों से सबको संधमति धमतीति गति कर्मा । सम्यक्तया चलाता है । (द्यावा पृथिवी) द्युलोक = सूर्यलोक और पृथिवी लोक को । (एकः देवः) एक देव, अकेला दिव्यशक्ति सम्पन्न देव । (जनयन्) उत्पन्न करता है । जो सब विश्व को उत्पन्न करता है । अपनी अनन्त सामर्थ्य से इसको धारण करता है । ऐसे सर्वशक्ति सम्पन्न एक ईश्वर को छोड़कर जो अन्य देवी देवताओं की उपासना करता है । उससे अधिक भाग्यहीन कौन पुरुष है ?

"सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।" ऋक् १० ।९०

सृष्टि कर्त्ता जगदीश्वर

"इयं विसृष्टिर्यत आवभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्गवेद यदि वा न वेद ।।

ऋग्वेद १० ।१२९ ।६

सृज् विसर्गे धातु से सृष्टि बना ।सृज् + क्तिन् (इयं विसृष्टिः) इयं प्रत्यक्षा विसृष्टि विविधा सृष्टिः ।यह प्रत्यक्ष नाना प्रकार की सृष्टि ।सृज्यत इति सृष्टिःजगत् संसार । (यत् आ बभूव) जिस परमेश्वर से उत्पन्न हुई है । (यदि वा दधे) वही इसको धारण करता है । पोषण करता है । (यदि वा न) अथवा नहीं रचता, प्रलय करता है । (अस्यः सः अध्यक्षः) इसका वही अध्यक्ष अर्थात् स्वामी है । (परमे व्योमन्) यह सृष्टि आकाश के समान व्यापक उस परमेश्वर के सामर्थ्य से ही है । उसमें स्थित है । (अङ्ग वेद) हे अङ्ग जीव, जो उसको जानता है । अर्थात् जो इस रहस्य को भली भाँति समझता है । वही सदैव परमानन्द को प्राप्त होता है । अङ्ग सम्बोधने हर्षे । (यदि वा न वेद) और जो उसको नहीं जानता वही जब मृत्यु रूप दुःख सागर में पड़कर महान् दुःख पाता है ।

"राग विरागयो र्योमः सृष्टिः ।" सांख्य दर्शन २ ।६
"तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा ।"

प्रश्नोप. ६ ।६

"इह चेद वेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहा वेदीन्महती विनष्टिः
केनोपनिषद्

"जन्माद्यस्य यतः ।" वेदान्त सूत्र १ ।१ ।२

अर्थात् (अस्य) प्रत्यक्षादि प्रमाणैरुपलभ्यमानस्य, जगतः (जन्मादि) उत्पत्ति स्थितिनाशाः (यतः) यस्वाद् सम्भवतीति तद् ब्रह्म, जगदुत्पत्ति स्थिति लय कारणं ब्रह्म इत्यर्थः ।

जगत् = ज = जायते, ग = गच्छति, त = तिष्ठति; जगतां यदि नो कर्त्ता कुम्भकारेण विना घटः । चित्रकारेण विना चित्रम् स्वत एव भवेत्तदा ।

"क्षित्यङ्कुरादिक कर्त्तृ जन्यं कार्यत्वात् घटवत्।" न्याय.

"यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात् केश लोमानि तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥"

"तम आसीत्तमसा गूढमग्रेप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्॥"

मुण्डक् १।१।७

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायु र्ज्योति रापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥

मुण्डक् २।१।३

"तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि।
प्राणापानौ व्रीहि यवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च॥"

मुण्डक् २।१।७

"वह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूताः।" मुण्डक् २।१।५

अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यंक्त संज्ञके॥ गीता ८।१८

गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥ गीता ९।१८

"अतः समुद्रागिरयश्चसर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धव सर्वरूपाः।
अतश्च सर्वा ओषधयोरसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठतेह्यन्तरात्मा॥"

मुण्डक् २।२।९

"अक्षरत्रम्बरान्त धृतेः॥" वेदान्त दर्शन

स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्मे परिमुह्यमानः।श्वेतो. ६।१

"को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव॥"

ऋक् १०।१२९।६

अद्धा = यथार्थ में। विसर्जनेन = उत्पत्ति के। अर्वाक् = पश्चात्।

ज्येष्ठ ब्रह्म को नमस्कार।

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्राह्मणे नमः।

अथर्व १०।८।१

(यः) जो परमेश्वर सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर (इतं च भव्यं च) भूतकाल चकार से वर्तमानं काल और भव्य अर्थात् भविष्यत्काल इन तीनों (यः

सर्वम्) कालों को जो जानता और सबका (अधितिष्ठति) अधिष्ठाता है। अर्थात् तीनों कालों के बीच में जो कुछ होता है, उस सब व्यवहारों को यथावत् जानता है।तीनों कालों में जो सदैव विद्यमान रहता है।सर्वं जगच्चाधितिष्ठति, सर्वाधिष्ठाता सन् कालापूर्ध्व विराजमानोऽस्ति। स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। (स्वर्यस्य च केवलं) यस्य च केवलं स्वःसुखस्वरूपमस्ति। अर्थात् जो सुख स्वरूप है। भक्त जनों को सुख देने वाला है। (तस्मै ज्येष्ठाय) ज्येष्ठाय सर्वोत्कृष्टाय। उस सबसे बड़े सब सामर्थ्य से युक्त सर्व शक्ति सम्पन्न। (ब्रह्मणे नमः) ब्रह्म को हमारा वारंवार अत्यन्त प्रेम भक्ति के साथ नमस्कार।

"ईशानो भूत भव्यस्य स एवाय स उश्वः एतद्वैतत्॥"

कठोपनिषद् ४।१३

"योभूतानामधिपतिः यस्मिल्लोका अधिश्रिताः।
य ईशोऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेमः॥"

श्वेता. ४।१३

ज्येष्ठ ब्रह्म का विराट् रूप।

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानंतस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

अथर्व २०।७।३२

(यस्य भूमिः प्रमा) यस्य भूमिः भवन्ति भूतानि यस्यां सा भूमिः। प्रमा यथार्थ ज्ञान साधनं पादाविवास्ति। जिस परमेश्वर ने भूमि को पाद स्थानी रचा है। (उत अन्तरिक्षं उदरं) अन्तरिक्षं उभयोर्लोकयोर्मध्यस्थमाकाशम् और अन्तरिक्ष जो पृथ्वी और सूर्य के बीच में आकाश है सो उसका पेट है। (दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानं) द्यु लोक जिसका मूर्द्धा स्थानी शिर है। अर्थात् सूर्य लोक को मस्तक स्थानी रचा है। (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस सबसे ज्येष्ठ श्रेष्ठ बल को हमारा नमस्कार है। जो पृथिवी से लेकर सूर्य लोक पर्यन्त सब ब्रह्माण्ड को रचकर उसमें व्यापक होकर सबको धारण कर रहा है। उस परं ब्रह्म को हमारा श्रद्धाभक्ति से नमस्कार।

अन्तरिक्षमिति कस्मात्। अन्तराक्षान्तं भवति। अन्तराहीदं द्यावापृथिव्योरवस्थितम्। क्षान्तं = पृथिव्यन्तं चभवति।

"यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्नि यश्चक्रं आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥"
"यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥"

अथर्व.

"अग्निमूर्द्धा चक्षुषी चन्द्र सूर्य्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥"

मुण्डकोपनिषद् २।१।४

जिस परमेश्वर के पृथ्वी आदि पदार्थ यथार्थ ज्ञान की सिद्धि होने में साधन हैं।

स्कम्भ वर्णन (आधार)

कस्मादङ्गाद् दीप्यते अग्निरस्य कस्माद् अङ्गाद् पवते मातरिश्वा।
कस्मादङ्गाद विं मिमीतेधि चन्द्रमा, महस्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ॥

अथर्व १०।७।२

(अस्य कस्माद् अङ्गात्) इसके किस अङ्ग से, (अग्निः दीप्यते) अग्नि चमकता है। (अस्य कस्मादङ्गात्) इसके किस अंग से, (मातारिश्वा पवते) वायु और प्राण चलता है। (कस्मादङ्गात्) इसके किस अंग से (चन्द्रमा वि अधिमिमीते) चन्द्रमा विशेष रूप से प्रकाश करता है। (स्कम्भस्य) इस सबके आधार स्तम्भ का (महः अङ्गम्) महानता बताने वाला अंग (मिमानः) नापने वाला क्या है ?

भावार्थ—परमात्मा के किस अंग से अग्नि जलता है। वायु चलता और चन्द्रमा अपनी कलाओं के साथ खगोल स्थानीय नक्षत्र केन्द्रों को मापता हुआ चल रहा है ?

आध्यात्मिक भाव—किस अंग से वाणी उच्चारी जाती है ? कहाँ से प्राण चल रहा है ? कहाँ से मन सब कार्यों को देख रहा है ? इस सबका आधार कौन है ? यह प्रश्न हैं ?

महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे।
तस्मिञ्छ्रयन्ते य उके च देवाः वृक्षस्य स्कन्धाः परित इव शाखा ॥

अथर्व.

प्रभु की व्यापकता

"कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम् कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥" अथर्व १०।७।३

(अस्य) इस सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक जगदीश्वर के (कस्मिन् अङ्गे) किस अङ्ग में "शेषाधार पृथिवीत्युक्तम्"। (भूमिः तिष्ठति) भूमि ठहरी है। स्थित है। (कस्मिन् अङ्गे अन्तरिक्षं तिष्ठति) किस अंग में अन्तरिक्ष स्थित है। (कस्मिन् अङ्गे द्यौः आहिता तिष्ठति) किस अंग में द्युःलोक सूर्य लोक रखा है ? स्थित है ? (कस्मिन् अङ्गे दिवः उत्तरं तिष्ठति) किस अंग में द्युलोक से परे का स्थान स्थित है—ठहरा है ?

भावार्थ—सर्व व्यापक जगदीश्वर के किस किस अंग में भूमि अन्तरिक्ष और द्युलोक अर्थात् यह त्रिलोकी स्थित है और इससे परे जो सूक्ष्म है वह कहाँ है ?

अध्यात्म पक्ष—नाभी के नीचे भूस्थान, हृदय अन्तरिक्ष स्थान और मस्तक द्युस्थान है। ये सब किसके आधार पर हैं ? अर्थात् इन सबका अधिष्ठाता कौन है।

यस्य भूमि प्रमान्तरिक्षंमुतोदरम्। दिवं यश्चक्रेमूर्द्धानं तस्मै ज्येष्ठाय।
अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्य्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृत्ताश्चवेदाः
वायुःप्राणो हृदयं विश्वयस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा।

मुण्डक २।१।४

अन्तरिक्षमिति कस्मात् ? अन्तराक्षान्तं भवति। अन्तराहीदंद्यावापृथिव्योरवस्थितम्, क्षान्त पथिव्यन्तं च भवति।

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्योवातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कंभतं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥

अथर्व १०।७।१२

भवन्ति भूतानि यस्मिन् स भूमिः। द्यौः द्योतते ह्येतत् ज्योतिषा। (यस्मिन् भूमिः अन्तरिक्ष) जिसमें भूमि अन्तरिक्ष और (यस्मिन् द्यौः अध्याहिता) जिसमें द्युलोक रहे हैं स्थित है। जिसमें अग्नि, चन्द्र, सूर्य, वायु ये देव रहते हैं। वही सबका आधार स्तम्भ है। वही आनन्दमय है। (सः कतयः स्वित एव) वह निश्चय करके कौन-सा है ?

अन्तरिक्षमुभयो र्लोक योर्मध्यस्थमाकाशम्।
अन्तराक्षान्तंतं भवति, "यो देवानामधिपो यस्मिलोका अधिश्रिताः।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।

मुण्डकोपनिषद् २।२।५ श्वेताश्वतर अ. ४।१३

यस्य त्रयस्त्रिशद् देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥"

अथर्व १०।७।१३

जिसके शरीर में सब तैंतीस देव मिलकर रहते हैं। वही सबका आधार स्तम्भ है। ऐसा तू कह, वही आनन्दमय है।

"यस्य त्रयस्त्रिशद्देवा अंङ्गे गात्रा विभेजिरे।
तान्वै त्रयस्त्रिशद्देवाने को ब्रह्मविदो विदुः॥"

अथर्व १०।७।२७

(त्रय: त्रिशत् देवा:) तैंतीस देव (यस्म अंगे) जिसके अंग में (गात्रा विभेजिरे) अवयवों में बाँटे गये हैं। उन तैंतीस देवों को (एके ब्रह्मविद: विदु:) अकेले ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं।

हिरण्यगर्भ की उपासना।

ज्योतिर्वै हिरण्यं, हिरण्यगर्भे यस्य स हिरण्यगर्भ:। प्रजापति ऋषि:। परमेश्वरो देवता।

हिरण्यगर्भ: समवर्त्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

ऋक् १० ।१२१ ।१

स्व प्रकाश स्वरूप और सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थों का धारक। (हिरण्यगर्भ:) हिरण्यानि सूर्यादि तेजांसि गर्भे यस्य स परमात्मा सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ जिसके भीतर हैं वह परमात्मा। ज्योतिर्वै हिरण्यम्। (अग्रे समवर्तत) सृष्टे: प्राक् सम्यक् वर्तमान आसीत्। सृष्टि से पूर्व अच्छी प्रकार से वर्तमान था, है और रहेगा। वह (भूतस्य जात:) उत्पन्न हुए सब संसार का, उत्पन्नस्य कार्यरूपस्य (एक: पति:) एक: अद्वितीयोऽसहाय: पति: पालक: स्वामी (आसीत्) प्रसिद्ध: आसीत् अस्ति। प्रसिद्ध है। (स पृथिवीं दाधार) स स्व आकर्षणेन पृथिवीधृतवान् धरति धरिष्यति वा। पृथिवीं विस्तीर्णां भूमिम्। पृथु विस्तारे धातु से पृथिवी शब्द बना, उसने अपनी आकर्षण शक्ति से पृथिवी का धारण किया है और करेगा। दध धारणे। धृज् धारणे लिङ्, पृथिव्यंपतेजोवाय्वाकाशपंचकस्य वस्तु तत्वस्य। (उत इमां द्याम्) उत अपि, इमाम् प्रत्यक्षां। द्याम् सूर्यादिकां सृष्टिं और इस द्युलोक को भी धारण किया हुआ है। (कस्मै देवाय) कस्मै एकस्मै। सुख स्वरूपाय, सर्वसुख प्रदात्रे द्योतमानाय परमात्मने। उस आनन्द स्वरूप परमात्मा की। (हविषा) आत्मादि सर्वस्य दानेन। होतव्येन पदार्थेन वा। (विधेम) परिचरेम। हम सब उपासना करें।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा ने अपने सामर्थ्य से सूर्यादि समस्त पदार्थों को रचा और धारण किया है, उसी एक परमात्मा की उपासना किया करो। कस्मै देवाय एकस्मै देवाय।

"अचिन्त्यरूपो भगवन्निरंजनो विश्वम्भरो ज्ञानमयश्चि दात्मा।
न चिन्तितो येन हृदिस्थितो नो वृथागतं तस्य नरस्य जीवितम्॥"

मुण्डक. २ ।२ ।१०

स्वयम्भु ब्रह्मऋषि:। परमात्मा देवता।

"न तत्र सूर्यो-तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति:।
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्व: स्तभितं येन नाक।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमान: कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

यजु. ३२ ।६

(येन) जिस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने, जिसने (उग्रा द्यौः) तीव्र तेज स्वरूप सूर्यादि पदार्थः। द्योतते द्योतत् ज्योतिषा (च पृथिवी दृढ़ा) और पृथिवी को दृढ़ बनाया। (येन स्वः स्तभितम्) जिसने सुख को धारण किया अर्थात् जो सुख स्वरूप है। स्तभितम्—धृतम्। (येन नाकः) और जिसने मोक्ष सुख रचा। नाकमिति सुखनाम (यः अन्तरिक्षे) जो मध्यवर्त्ति आकाश में, अन्तराक्षान्तं भवति। (रजसः विमानः) लोक समूहों का निर्माण करता है उस (कस्मै देवाय) आनन्द स्वरूप परमात्मा की हम लोग (विधेम) श्रद्धा भक्ति से पूजा किया करें। हविषा = प्रेम भक्ति भावेन विधेम-परिचरेम्। कस्मै देवाय एकस्मै देवाय।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने अत्यन्त प्रकाशमान् सूर्यादि पदार्थ और पृथिवी को दृढ़ रचा है तथा जो आकाश में नाना लोक-लोकान्तरों को रचकर धारण किये हुए है। ऐसे सर्वव्यापक आनन्द प्रदाता परमात्मा की हम सब लोगों को भक्ति भाव से पूजा करनी योग्य है।

(प्रकाश की गति सूर्य से पृथिवी तक) प्रति सैकण्ड १८६००० मील है। सूर्य के प्रकाश को पृथिवी तक आने में लगभग ८ मि. लगते हैं। सूर्य हमारी पृथिवी से १३$\frac{१}{२}$ लाख गुना बड़ा है। पृथिवी से सूर्य की दूरी ९,१४,०६,००० मील दूर है। यदि हम सौ मील प्रति घण्टा की गति से चलने वाली ट्रेन द्वारा बिना रुके लगातार यात्रा करते रहें तो चन्द्रमा तक पहुँचने में ९० दिन और सूर्य तक पहुँचने में १०५ वर्ष लगेंगे।

"इदं शरीरं परमार्थ साधनम् धर्मैक हेतुं बहुपुण्य लब्धम्।
लब्ध्वापि यो नो विदधीत भक्ति वृथागतं तस्य नरस्य जीवितम्॥"

प्रजापतिः ऋषिः। परमात्मा देवता। सेवन्ते-भजन्ते

"य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषंयस्य देवाः।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥"

अथर्व ४।२।१, ऋक् १०।१२१।२, यजु. २५।१३

(यः आत्मदा) जो आत्मिक ज्ञान का दाता अथवा आत्मिक बल दाता है। (बलदा) शारीरिक, मानसिक और सामाजिक बल देने वाला है। (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् लोग। विद्वांसो हि देवाः। देव सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, बिजली आदि। (यस्य प्रशिषं) जिसकी आज्ञा शासन व न्याय को (उपासते) मानते हैं, स्वीकार करते हैं। प्रशिषं प्रशासनम् (यस्य छाया अमृतं) छाया आश्रय। जिसका आश्रय अथवा शरण, भक्ति उपासना अमृत स्वरूप है। मोक्षदाता है। (यस्यं मृत्युः) जिसकी आज्ञा भंग करना ही मरण तुल्य है जिससे दूर होना मृत्युः मरण दुःख का

कारण है ।(कस्मै देवाय) उस सुखस्वरूप परमात्मा की हम लोग । (हविषा विधेम) श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि द्वारा उपासना करें ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर आत्मिक ज्ञान, शारीरिक-बल और तेज का देने वाला है। जिसकी आज्ञाओं का पालन सब देव लोग करते हैं। जिसका आश्रय मोक्ष का देने वाला और जिससे अलग होना ही मृत्यु है। उस परमदेव परमात्मा की श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि द्वारा पूजा किया करो ।

"जन्म मृत्यु जरा दुःखै विमुक्तोऽमृतमश्नुते।" गीता १४।२०

"मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। गीता ९।३२

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥" गीता ८।१५

"तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।" यजुः

कस्मै देवाय हविषा विधेम

"सेन्द्रियचेतनं द्रव्यं निरिन्द्रिय मचेतनम्" प्रजापतिः ऋषिः । ईश्वरो देवता ।

यो देवानामधिपो यस्मिल्लोका अधिश्रिताः, य ईशे अस्य द्विपद श्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम। श्वेतांश्वत।४।१३

"यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव, य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम", ऋक् १०।१२९।३

"इच्छा द्वेष प्रयत्नसुख दुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति" न्याय १।१०

(यः प्राणतः निमिषतः) हे मनुष्यो ! जो प्राण धारण करने वाले चेष्टा करने वाले और बिना चेष्टा वाले दोनों प्रकार के पदार्थों का और इस (जगतः) संसार का इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का (महित्वा) अपनी महत्ता के कारण, अपनी अनन्त महिमा से, (एकः इत) अकेला ही (राजा बभूव) राजा हुआ है। प्रकाश करने वाला है। (यः अस्य) जो इस जगत् के (द्विपदः चतुष्पदः) दो पाँव वाले मनुष्यादि प्राणी और चार पाँव वाले पशु गौ आदि का (ईशे) शासक है। कस्मै देवाय एकस्मै देवाय (कस्मै देवाय) उस सुख स्वरूप अथवा आनन्द प्रदान करने वाले परमेश्वर की हम सब लोग (हविषा विधेम) श्रद्धा भक्ति से उपासना किया करें।

भावार्थः—जो परमात्मा प्राणधारी और बिना प्राण वाले सब पदार्थों का रचने-हारा है और अपनी महत्ता के कारण सबका शासक है। उसी परमपिता परमात्मा की सब लोगों को उपासना करनी योग्य है।

"यच्च प्राणिनि प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः ॥"
अथर्व ११।७।२४

"मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्त मूर्तिना ॥" गीता ९।४

प्रजापतिर्ऋषिः । परमात्मा (ईश्वरो) देवता

"क्षित्यङ्कुरादिक कर्त्तृजन्य कार्यत्वात् घटवत्।" न्याय

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥"

ऋक् १० ।१२१ ।४

(इमे हिमवन्तः) ये हिमवान् पर्वतः हिमालय आदि और (रसया सह समुद्रं) नदियों सहित समुद्रः । सं उदको भवति (यस्य महित्वा) जिसकी महत्ता का जिसकी महिमा का (आहुः) कथन करते हैं । प्रशंसा करते हैं । कहते हैं । (इमां: प्रदिशः) ये दशों दिशायें (दिशायें और उपदिशायें) (यस्य बाहू) जिसकी बाहू हैं अर्थात् धारण सामर्थ्य हैं ।(कस्मै देवाय) उस सुख स्वरूप परमात्मा की हम लोग (हविषा विधेम) श्रृद्धा भक्ति द्वारा उपासना किया करें । कस्मै देवाय =एकस्मै देवाय ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने ये हिम वाले हिमालयादि ऊँचे-ऊँचे पर्वत रचे हैं और नदियों सहित समुद्रों को रचा है । जो कि उसकी महत्ता का ध्यान दिला रहे हैं तथा दसों दिशाएँ जिसकी बाहू अर्थात् धारण ग्रहण करने में सामर्थ्य हैं। जो इन दस दिशाओं में व्यापक रूप से है । उस सर्वसुख प्रदाता जगदीश्वर की हम सबको स्तुति करनी चाहिए ।

नोट—यजुर्वेद में "रसया" की जगह सरया पाठ भेद है, अतः—

समुद्रा गिरयश्च सर्वेदस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धव सर्वरूपाः अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठति हमन्तराल ॥" मुण्डक् २ ।२ ।९

यज्ञादि सत्कर्म की प्रेरणा

नारायण ऋषिः । सविता देवता ।

ओं देव प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतंनः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥"

यजु ३० ।१

षुञ् अभिषवे सूङ् प्राणि गर्भ विमोचने । यजुः ३० ।९
यश्चराचरं जगत् सुवत्युत्पादयति स सविता जगदीश्वरः ।

हे (सविता देव) जगदुत्पादक, सकलैश्वर्य युक्त देव ! जगदीश्वर ! आप हमें (भगाय) ऐश्वर्य युक्ताय धनाय । ऐश्वर्य के लिए (यज्ञं) यज्ञादि सत्कर्मों की । यजनं यज्ञः । यजनं पूजनं (प्र + सुव) प्र प्रकर्षेण सुब सम्पादम । प्रेरणा कीजिए और (यज्ञपति) यज्ञस्य पालकं । यज्ञ के पालक को षू प्रेरणे (प्रसुव) प्रेरय । प्रेरणा कीजिये । क्योंकि आप ही (दिव्यः) दिकि शुद्ध स्वरूपे भव । दैवी गुणों से युक्त हैं । (गन्धर्वः) वाणी के पोषक हैं तथा (केतपूः) केतं प्रज्ञानं पुनाति सः । केत इति प्रज्ञान नाम । ज्ञान से पवित्र करने वाले हैं । इसलिए (नः केतं) अस्माकं प्रज्ञानं । हम

सबके ज्ञान को बुद्धि को (पुनातु) पवित्रयतु। आप पवित्र कीजिए, षूञ् पवने (वाचःपतिः) वाचा वाण्या पतिः पालकः। आप वाणी के स्वामी हैं इसलिए (नः वाचं) अस्माकं वाणीम्। हम सबकी वाणी को (स्वदतु) स्वादयतु। मीठी चिकनी कोमल प्रिय कीजिये।

"वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्म मिच्छता।"

मनुः २।१५९

भावार्थ—सर्व जगदुत्पादक सकलैश्वर्य सम्पन्न जगदीश्वर हम सबको यज्ञादि सत्कर्म करने की शुद्ध बुद्धि प्रदान करें। वही वाणी के स्वामी हम सबकी वाणी को शुद्ध मधुर प्रिय करें।

ये पाँच वस्तु गृहस्थ को हिंसा का मूल है—चूल्हा, चक्की, बुहारी, उलूखल, मूसल और जल का घड़ा। निष्कृतिः प्रायश्चित।

"मतिश्चमे सुमतिश्चमे यज्ञेन कल्पन्ताम्।" यजुः १८।११।३९

(मतिः) मननम्। सुमतिः शोभना प्रज्ञा।यज्ञः यज् देव पूजा सङ्गतिकरण दानेषु। धातु से बना।यजनं यज्ञः। यजनं पूजनं, पूजनं नाम सत्कारः।सवितः षुञ् अभिषवे। "षूङ् प्राणि गर्भ विमोचने" धातु से यश्चराचरं जगत् सुवत्युत्पादयति स सविता परमेश्वरः।

"त्रयो धर्म स्कन्धां यज्ञोऽध्ययनं दानमिति।" छान्दोग्य.

"आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां, चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां, श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां, पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां, यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।" यजुः ९।२१

कल्पतां समर्थं भवतु। आयुः जीवनम्। यज्ञेन धर्म्येणेश्वराज्ञा पालनेन। यज्ञ के विषय में देखो गीता अध्याय ३ के श्लोक ९ से १६ तक।

"पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥" मनुः ३।६८

"तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्चक्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥" मनुः ३।६९

"ऋषि यज्ञ देवयज्ञ भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्॥" मनुः ४।२१

"अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तपर्णम्।
होमो दैवोबलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥" मनुः ३।७०

"पञ्चैतान्योमहायज्ञान्न हापयति शक्तितः।
य गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते॥" मनुः ३।७१

यज्ञादि मुख्य कर्म

नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता।

यज्ञेन यज्ञ मयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।

यजुः ३१।१६

(देवाः) विद्वांसः विद्वाँ सो हि देवाः। विद्वान् लोग। (यज्ञेन) यज्ञादि शुभकर्मणा। यज्ञ द्वारा स्तुति प्रार्थना उपासना रूप पूजा करके। यज् देव पूजा सङ्गतिकरण दानेषु: (यज्ञं) पूजनीयं परमात्मानं, यज्ञो वै विष्णुः। पूजनीय सर्वरक्षक अग्निवत् तेजस्वी परमेश्वर की। (अयजन्त) पूजयन्ति, पूजा करते हैं। क्यों पूजते हैं ? (तानि धर्माणि) ईश्वर पूजनादीनि धारणात्मकानि कर्माणि। क्योंकि ईश्वर पूजनादि धर्म कार्य। (प्रथमानि आसन्) सर्व कर्मभ्य आदौ मुख्यानि आसन् सन्ति सब कर्मों से पूर्व करने योग्य हैं।

प्रश्न—ईश्वर पूजन से क्या लाभ होता है ? अब यह बतलाते हैं।

(ते महिमानः) वे विद्वान् लोग महिमा से युक्त होते हैं। (ह) निश्चय से ही (नाकम्) मुक्ति सुखम्। मोक्ष सुख को। (सचन्त) प्राप्नुवन्ति। प्राप्त होते हैं। किस प्रकार प्राप्त होते हैं अब यह बतलाते हैं। षच् समवाये (यत्र) यस्मिन् सुखे। जिस मोक्ष सुख में। (पूर्वे) इतः पूर्व सम्भवाः। इस समय से पूर्व हुए (साध्याः) कृत साधनाः। साधनों को किये हुए। (देवाः) देदीप्यमानाः विद्वांसः। प्रकाशमान विद्वान् (सन्ति) मोक्षाख्ये परमे पदे सुखिनः सन्ति। मोक्ष रूप परम सुख को प्राप्त हुए। (देवाः) देव अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना करने वाले दानशील व्यवहारज्ञ एवं तेजस्वी विद्वान् पुरुष।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि सर्वधर्म कृत्यों को करने से पूर्व ईश्वर स्तुति, प्रार्थना उपासना द्वारा यज्ञ अवश्य किया करें। तभी उनके सब काम सम्पूर्णता को प्राप्त हो सकेंगे। क्योंकि उत्तम धर्म कार्यों में ईश्वर सदैव सहायक होते हैं।

विधिहीनो यज्ञः यजमानं हिनस्ति।
यज्ञो वै देवानां प्रत्येति सुम्नम्। यजुः ८।१४
(यज्ञः देवानां विदुषां सुम्नं सुखं प्रत्येति प्रापयति)

"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।" शतपथ ब्राह्मण।

"अग्नौ प्रास्ताहुति सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।" मनुः ३।७६

"अग्नेर्वैधूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद् वृष्टिः ततोऽन्नं तस्मात् प्रजाः।" शतपथ

"अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः।।" गीता ३।१४

"सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच बृहस्पतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्।।" गीता ३।१०
"नायं लोकोऽस्त्यज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम। गीता ४।३१
द्रव्ययज्ञास्तपो यज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे।।" गीता ४।२८

यज्ञ कैसा सुख करता है ? यज्ञ की पवित्रता परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। सविता देवता। यज्ञ जीवन का हमारा श्रेष्ठ सुन्दर कर्म है। यज्ञों का कराना आर्यों का धर्म है।

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्त्र धारम्।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा
कामधुक्षः।। यजुः १।३

(वसोः) यज्ञो वै वसुः। वसु यज्ञः। शतपथ ब्रा. (पवित्रं असि) पुनाति येन कर्मणा तत् पवित्रं पवित्र कारकं शुद्धिकारकं कर्म असि अस्ति। पवित्र करने वाला शुद्धि करने वाला कर्म है। (वसोः शतधारं सहस्रधारं पवित्रं असि) शतं वहुविधं ब्रह्माण्डं असंख्यातं विश्व धरतीति। सहस्रं बहुविधं ब्रह्माण्डं धरतीति। असंख्यात ब्रह्माण्ड को धारण करने पवित्र करने वाला और सुख देने वाला है। (त्वा) तं यज्ञम्। उस यज्ञ को (सविता देवः) सर्वेषां वसूनां अग्नि पृथिव्यादीनां त्रयस्त्रिंशतो देवानां प्रसवितः परमेश्वरः। वसु आदि तैंतीस देवों का उत्पत्ति कर्त्ता परमेश्वर।(वसोः पवित्रेण शतधारेण पुनातु) यज्ञ सैकड़ों प्रकार से हमें पवित्र करें। (सः कामधुक्) वह यज्ञ सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला है। (सुप्वा अस्ति) सुष्ठुतया पुनाति पवित्र हेतु र्वा अस्ति। सः यज्ञः कामं दोग्धीति कामधुगास्ति। वह यज्ञ हम सबकी कामनाओं का पूर्ण करने वाला है।यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। कुतः ? तस्य परार्थत्वात्। यज्ञः परोपकारायैव भवति। जनाना समूहो जनता। तत्सुखायैव यज्ञो भवति। स्वामी दयानन्दः ऋग्वेदादिभाष्य भू.

"सविता प्रापयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणः।" यजुः १।१
"त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे।।"
"यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेवतत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।। गीता १८।३-५
"नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।" गीता ४।३१
"यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोंकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।।" गीता ३।९
"सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच बृहस्पतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्।।" गीता ३।१०

"देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥" गीता ३।११
"इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्तेस्तेन एव सः ॥"
गीता ३।१२
"अघं स केवलं भुंक्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।
यज्ञ शिष्टाशिनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ॥" मनुः ३।११८
"यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ गीता ३।१३
"पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ॥"मनुः ३।६८

यज्ञ में डाला गया पदार्थ किस प्रकार सुखदायी होता है ?

और्णनाभ ऋषिः । यज्ञो देवता (यज्ञ की श्रेष्ठता यज्ञ का महत्व)
"पूर्णादर्विपरापत सुपूर्णा पुनरापत ।
वस्नेव विक्रीणावहा इष मूर्जँ शतक्रतो ॥" यजुः ३।४९

(दर्वि पूर्णा) होत द्रव्येण परिपूर्णा। होम करने योग्य द्रव्यों से परिपूर्ण आहुति। यज्ञ में डाली गई आहुति। (परापत) परा ऊर्ध्वं पत पतति गच्छति। यज्ञाग्नि द्वारा सूक्ष्म रूप होकर ऊपर आकाश में व्याप्त होती है। अर्थात् होम हुए पदार्थों के सूक्ष्म अंश को ऊपर आकाश में पहुँचाती है।(सुपूर्णा) सु सुष्टु पूर्णा भूत्वा। वही फिर अच्छी तरह से परिपूर्ण होकर वायु वृष्टि जलादिकों को शुद्ध करके।(पुनः आपत) पुनः पश्चात् आ समन्तात् पत पतति गच्छति पृथिवीं आगच्छति, येन यवादयः ओषधयः शुद्धाः सुखपराक्रमप्रदाः जायन्ते, शुद्ध पवित्र होकर वृष्टि रूप में पृथिवी में आती है जिससे गेहूँ, जौ, चावल, उड़द, मूँग, तिल आदि पदार्थ शुद्ध पवित्र उत्पन्न होते हैं। (शतक्रतोः) शतमसंख्याताः क्रतव कर्माणि प्रज्ञा यस्येश्वरस्य तत्सम्बुद्धौ। हे असंख्यात उत्तम कर्म वा ज्ञान दाता जगत्प्रभो ? जगदीश्वर ? आपकी कृपा से हम लोग (इषं ऊर्जम्) इषमभीष्टमन्नम् ऊर्जं पराक्रमम्। उत्तम उत्तम अन्नादि पदार्थ और पराक्रम युक्त वस्तुओं को (वस्ना इव) पण्य क्रियेव। वैश्यों के व्यवहार के समान (विक्रीणा वहै) वि विशेषार्थे क्रियायोगे। व्यवहारयोग्य व स्तुनि दद्याव गृहणीयाव का। देवें अथवा ग्रहण करें।

भावार्थ—यन्मनुष्यैः सुगन्ध्यादि द्रव्यमग्नौ हूयते व दूर्ध्वं गत्वा वायु वृष्टि जलादिकं शोधयन् पुनः पृथिवीभागच्छति येन यवादयः ओषधयः शुद्धाः सुखपराक्रम प्रदा जायन्ते।

"यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ। स्वां योनिं गच्छ स्वाहा।"

अथर्व ९।९६।५

"इध्यमेन त्वा जातवेदः समिधावर्धयामसि।
तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया चधनेन च॥"

अथर्व १९।६४।२

भावार्थ—जब हम लोग सुगन्धित, पुष्टिकारक, रोग विनाशक पदार्थों को अग्नि में डालकर हवन करते हैं तब यज्ञाग्नि से वे सूक्ष्म रूप होकर ऊपर आकाश में जाकर वायु वृष्टि जल को शुद्ध करते हुए पुनः उत्तम गुणों से परिपूर्ण होकर पृथिवी पर वृष्टि द्वारा आते हैं जिससे गेहूँ, जौ, तिल, चावल, उड़द, मूँग वनस्पतियाँ औषधियाँ पूर्ण पराक्रम वाली होती हैं। जैसे वणिक् जन रुपया आदि को दे लेकर अनेक प्रकार के व्यवहार योग्य अन्नादि पदार्थों को खरीदते एवं बेचते हैं वैसे ही हम सब लोग यज्ञाग्नि में शुद्ध द्रव्यों को डालकर अनेक सुखों को खरीदते हैं।

"अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्य मुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥" मनुः ३।७६

"अन्नाद्भवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः॥" गीता ३।१४

"कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।
तस्माद् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥" गीता ३।१५

पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनुषिच्यते।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत्॥ अथर्व ६।११

पहले (रेतः) वीर्य (पुंसि) मनुष्य में (वै) ही (भवति) होता है, (तत्) वह (स्त्रियामनुषिच्यते) स्त्री में सींच दिया जाता है। (तत् वै) वह ही (पुत्रस्य वेदनं) सन्तान की प्राप्ति कराने वाला होता है। (तत्) ऐसा (प्रजापतिः) परमात्मा ने (अब्रवीत्) कहा है।

"यत्र चारा अनपेतामधोर्घृतस्य च याः।
तदग्निवैश्वकर्मणः - स्वर्देवेषु नोदधत्॥" यजुः १८।६५

यज्ञ द्वारा यजमान की उन्नति (आशीर्वाद)

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन वोधय।
आयुः प्राणं प्रजां पशून कीर्त्तिं यजमानं च वर्धय॥"

अथर्व १९।६३।१

हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञान के स्वामिन् ? परमात्मन् ? (उत्तिष्ठ) हमारी उन्नति कीजिये। हमें उन्नत बनाइये। (यज्ञेन) यज्ञादि सत्कर्म के द्वारा। (देवान्) विदुषान्। विद्वानों को। विद्वां सो हि. देवाः। (बोधय) बोध = ज्ञान दीजिये। जागृति =

उत्पन्न कीजिये। (च यजमानं) और यज्ञादि सत्कर्म करने वालों की। (आयुः) जीवनम्। सौ वर्ष जीवन व्यतीत करने की पूर्ण आयु। (प्राणं) प्राण। प्राणिति जीवति येन तं प्राणं जीवन हेतुम्। (प्रजां) सन्तति। पुत्र पौत्रादिकों को। (पशुं) गौ, बैल, अश्व, हस्ति, बकरी आदि उपकारी पशुओं को। (कीर्तिम्) सत्कर्मों से होने वाला यश—ये सबके। (वर्धय) बढ़ाइये। अर्थात् इनको बढ़ाकर उन्नति कीजिये।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि यज्ञादि उत्तम कर्मों के द्वारा अपनी उन्नति करें क्योंकि इसी के द्वारा आरोग्य, प्रजा, सत्कीर्ति और सुख मिलता है।

"यज्ञेन हि देवाः दिवंगताः, यज्ञेनासुरानपानुदन्त, यज्ञेन द्विषन्तो मित्राणि भवन्ति, यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्मात् यज्ञं परमं वदन्ति।" **तैत्तिरीयाण्यक प्रपाठक १०**

"यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षासि राजसा।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसाः जनाः॥" **गीता १७।४**

"विधिहीन मसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धा विरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते॥" **गीता १७।१३**

भौतिक अग्नि के गुण (उपयोग)

विश्वरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निवृद् गायत्री छन्दः।

"अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवां देवा आसादयादिह।"

यजुः २२।१७

(अग्निं दूतम्) दूतवत् कार्य साधकं अग्निं। बन्हिम्। दूत के समान कार्यों की सिद्धि करने वाली अग्नि को (पुरः) अग्रतः। आगे अर्थात् सब कार्यों में सबसे आगे प्रमुख रूप (दधे) धरामि। धरता हूँ। अर्थात् उपयोग में लाता हूँ। वह अग्नि कैसा है? (हव्यावाहम्) यो हव्यानि अत्तुमर्हाणी वहति, प्रापयति तम्। अर्थात् जो भोजन करने योग्य पदार्थों की प्राप्ति करने वाला है तम् उस अग्नि को "हू" दानादानयोः। आदाने चेत्येके। (उपब्रुवे) उपदिशामि। उपदेश करता हूँ। अर्थात् उसके उपयोग करने की आज्ञा देता हूँ। उसको व्यवहार तथा कला कौशल में प्रयोग करो। फिर वह अग्नि तुम्हारे लिए क्या करे ?(देवान्) दिव्यान् भोगान्। दिव्य अर्थात् उत्तम उत्तम भोग्य पदार्थों को। पशु, पुत्र, स्त्री, धन धान्यादिकों को। (आ सादयेत्) आ समन्तात् सादयेत् प्रापयेत्। सब प्रकार से प्राप्त करावे। कहाँ ? किसको ?(इह) अस्मिन् संसारे। इस संसार में तुम सबका उपकार करे।

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है हे मनुष्यो ! जैसे इस संसार में अग्नि तुमको दिव्य सुखों को देने वाली है। उसी प्रकार अग्नि, जल, वायु, पृथिवी, आकाश आदि पदार्थों का भी तुम सदुपयोग करके सुख प्राप्त करो।

"अग्निं दूतं वृद्धिमहे होतारं विश्ववेदसम्, अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम।"

अथर्व २०९।१

अग्निदेव की उपासना

"अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥" ऋक् १।१।१।१

अन्वय—देवं पुरोहितं यज्ञस्य ऋत्विजं होतारं रत्नं धातं अग्निं ईडे। (यज्ञस्य) यज्ञादि सत्कर्मों के, यज् देवपूजा संगति करण दानेषु। (देवम्) दिव्य स्वरूप सर्व प्रकाशक। (पुरोहितम्) पूर्व से ही जगत् को धारण करने वाले, (ऋत्विजम्) प्रत्येक ऋतु में पूजनीय, (होतारम्) जगत् के सुन्दर पदार्थों को देने वाले (रत्नधातमम्) रमणीय रत्नादिकों के पोषण करने वाले, (अग्निम्) प्रकाश स्वरूप परमात्मा की, (ईडे) मैं उपासक स्तुति करता हूँ। "ईऽस्तुतौ" अध्येषणा कर्मा, याञ्चाकर्मा, पूजाकर्मा वा। देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा। (दानाद्वा) ददाति ह्यसौ ऐश्वर्याणि। यो देवः सा देवता।(दीपनाद्वा) दीपयति ह्यसौ तेजोमयत्वात्। (द्योतनाद्वा) द्योतनं प्रकाशनम्। (द्युस्थानो भवति) सामान्यं हि द्यौः स्थानं देवतानाम्। (पुरोहितं) पुर एनं दधति। पुरस्तात्सर्वं जगद्दधाति इति। (अग्निः) अग्निः कस्मात् ? अग्रणी भवति। अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते, अङ्गं नयति सन्नममानः। एति च दहति च नयति च हवींवि देवेभ्यः इति अग्निः।अग्रणी भवति अग्र शब्दः प्रधानवाची, स एष वा अग्रं नयति, सेनां वा अग्रे नयति। अग्निर्वै देवानां सेनानी। नीः णीञ् प्रापणे—धातु से अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते प्रथम यज्ञेषु प्रणीयते न तावत् किञ्चित् अन्यत् क्रियते यावदयं न प्रणीयते। तणेष काष्ठे वा यत्र सन्नमति आश्रयति तत् आत्मनोऽङ्गतांनयति आत्मसात्करोतीति।

सुपुत्र महिमा (माता पिता का कर्त्तव्य)

"उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये। सुमृडीका भवन्तु नः॥"
यजुः ३३।७७

अन्वय—ये न सूनवः अमृतस्य गिरः उपशृण्वन्तु ते नः सुमूडीका भवन्तु। सामृतैर्पाणिभिघ्नन्ति।

"लालयेत् पञ्च वर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥"

(ये) जो (नः) अस्माकम्। हमारे (सूनवः) अपत्यानि। सन्तान, पुत्र, पुत्रियाँ।(अमृतस्य) नाशरहितस्य परमेश्वरस्य। नित्यस्य वेदस्य वा अविनाशी परमेश्वर की नित्य वेद के उत्तम उपदेशों को। (गिरः) वेद रूप वाणी को (उपशृण्वन्तु) अपने गुरुओं से अथवा साधु महात्माओं के निकट जाकर सुनें पढ़ें, समझें। ते (नः सुमृडीका भवन्तु) वे नः = अस्मभ्यम् सुमृडीका = सुष्ठु सुखकराः भवन्तु। वे पुत्र पुत्रियाँ हमको उत्तम सुख के देने वाले होवें सुयोग्य बनकर। मृडीक इति सुखनाम। मृड सुखने धातु से।

भावार्थः—माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे अपने पुत्र-पुत्रियों को ब्रह्मचर्य के साथ वेद विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त करें जिससे वे सदैव सबको उत्तम सुख के देने वाले बनें।

"विद्याविलास मनसोधृतशीलशिक्षा सत्यव्रताः रहितमान भलाप्रहाराः सत्यार्थ समु. ३

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खं शतान्यपि।"
एकश्चन्द्रश्तमो हन्ति न च तारागणा अपि। चाणक्य.

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना।
वासितं तद् वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा।। नीतिः।

"सानन्दं सदनं सुतांश्च सुधिया कान्ता प्रियालापिनी।
सन्मित्रं सुधनं स्वयोषितिरति राज्ञापराः सेवकाः।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्ठान्नपानं गृहे।
साधोः सङ्गमुपासते हि सततं धन्यो गृहस्थाश्रम।।"

"एकेनापि सुपुत्रेण सिंहीः स्वपिति निर्भयम्।
सहैव दशाभिर्पुत्रै भारं वहति गर्द्दभी।।"

"यः प्रीणयेत् सुचरितैः पितरं स पुत्रो यद् भर्त्तुरिव हितमिच्छति तत्कलत्रयं।"

निरुत्साहं निरानन्दं निर्वीर्यमरिनन्दनम्।
मास्य सीमन्तिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम्।।

"वरं गर्भ स्रावो वरमृतुषु नैवाभिगमनम्।
वरं जातः प्रेतो वरमपि च कन्यैव जनिता।
वरं बन्ध्याभार्या वरमपि च गर्भेषु व सतिः।
न चाविद्वान् रूपद्रविण गुणहीनोऽपि तनयः।।"

होई भले कें अनभलो, होई दानि के सूम।
होई कुपूत सुपूत के, ज्यों पावक में धूम।।
तुलसी.

"अस्ति पुत्रो वशे यस्य भृत्यो भार्यां तथैव च।
अभावे सति सन्तोषः स्वर्गस्थोऽसौ महीतले।।"

"एकेन शुष्क वृक्षेण दह्यमानेन वन्हिना।
दह्यते तद् वनं सर्वं दुष्पुत्रेण कुल यथा।।"

"उक्तं मया जातमात्रेऽपि राजन् दुर्योधनं त्यजपुत्रं त्वमेकम्।
तस्य त्यागात्पुत्रशतस्य बृद्धिरस्यात्यागात्पुत्रशतस्यनाशः।।"

यह विदुर जी ने महाराज धृतराष्ट्र को समझाया था।

सुपुत्र—महाराजा हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र, श्रीकृष्ण चन्द्र, महर्षि दयानन्द, महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस।

कुपुत्र—रावण, कंस, दुर्योधन, जयचन्द्र, याहया खाँ, जिन्ना।

"यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम्।
तस्मात् प्रजा विशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत् प्रयत्नतः॥" मनुः ९।९

गृहस्थ महिमा (गृहस्थाश्रम का अनुष्ठान)

वि उपर्सग पूर्वक वह प्रापणे धातु से घञ् प्रत्यय से विवाह शब्द।

"गृहा मा विभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं विभ्रतऽएमसि।
ऊर्ज्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः॥"
यजुः ३।४१

(गृहाः) हे गृहस्थाश्रममिच्छन्तो मनुष्याः। हे गृहस्थाश्रमी लोगो! तुम लोग, "गृहे गृह कर्मणि स्थितः गृहस्थः।" (मा विभीत) गृहाश्रमानुष्ठाने भयं मा कुरुत। गृहस्थाश्रम कर्म करने में डरो मत तथा (मा वेपध्वम्) मा कम्पध्वम्। मत काँपो, किन्तु (ऊर्ज्जं बिभ्रत एमसि) ऊर्जं बलं पराक्रम च बिभ्रतः पदार्थान् आइमसि वयं प्राप्तुम इतीच्छत। बल पराक्रम से पदार्थों को पाने की इच्छा करो। "मा गृधः कत्स्यत् चित् धनम्।" (ऊर्जं विभ्रद्वः) वो युष्माकं मध्येऽहम् ऊर्जं विभत्सन्। गृहस्थाश्रमी पुरुषों से ऐसा कहो कि मैं परमात्मा की कृपा से आप लोगों के बीच बल पराक्रम धारण करता हुआ तथा ऊर्ज बल प्राणनयोः धातु से।

"वर्चं आधेहि में तन्वां सह ओजो वयो बलम्।"

(सुमना, सुमेधा) शुद्धमनाः उत्तम बुद्धि युक्तः सन्। उत्तम—शुद्ध मन, पवित्र शुद्ध बुद्धि से संयुक्त होता हुआ। (मनसा मोदमानः) हर्षोत्साहयुक्तः। प्राप्तानन्दः। प्रसन्नचित्त होता हुआ। हर्ष आनन्द से संयुक्त होकर।(गृहान् आ एमि) गृहाश्रमं आ समन्तात् एमि प्राप्नोमि।

"गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद।" अथर्व ८।१०।३

"हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन दृश्यते।
यादृशं पुरुषस्येह पर दारोपसेवनम्। मनुः

यह गृहस्थाश्रम सब आश्रमों का मूल है। इससे इस गृहस्थाश्रम का अनुष्ठान अच्छे प्रकार से करना चाहिए।

"अर्थागमोनित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोर्थंकरी च विद्या षट्जीव लोकस्य सुखानि राजन्॥"
विदुरनीतिः।

"ब्रह्मचारी गृहस्थंश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
एते गृहस्थ प्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥" मनुः ६।८७
"यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥" मनुः ३।७८
"यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥" मनुः ६।९०
"यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व जन्तवः।
तथा गृहस्थ माश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमः॥" मनुः ३।७७
"स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्ग मक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः॥" मनुः ३।७९
"सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृति विधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् विभर्त्ति हि॥" मनुः ६।९८
"सानन्दं सदनं सुतांश्च सुधियः, कान्ता न दुर्भाषिणी।
सन्मित्रं सुधनं स्वयोषितिरति श्चाज्ञापराः सेवकाः॥"
आतिथ्यं शिव पूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे।
साधोः सङ्गमुपासते हि सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः॥ भर्तृहरिः।
संत संग अपवर्ग कर, कामी भवकर पन्थ।
कहँहि सन्त कवि कोविद श्रुति पुराण सद्ग्रन्थ॥ तुलसी.
गृहे गृहकर्मणि स्थितः इति गृहस्थः।
"न गृहं गृहमित्याहु, गृहिणीगृहमुच्यते।"
"तन पवित्र सेवा किये धन पवित्र कर दान।
मन पवित्र हरि भजन कर होत त्रिविध कल्यान॥"
बाल्ये विद्या ग्रहणादीनर्थान् अर्थं कामं च यौवने। कामसूत्र.
विद्या भूमि हिरण्य पशुधान्यभाण्डोपस्कर मित्रादीनामर्जनं
अर्जितस्य विवर्धनमर्थः। कामशास्त्र।

हम उसके नियम में चलें

हम सुखी कैसे हों ? (हम व्रतधारी बनें)

बन्धुऋषिः, सोमो देवता, गायत्री छन्दः।

वय ँ॒ सोमव्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि॥

यजुः ३।५६

(सोम) हे सत्कर्म प्रेरक जगदीश्वर। पू प्रेरणे धातु से। हे जगदुत्पादक जगदीश्वर। यः सुवत्युत्पादयति चराचरं जगत् तत् सम्बुद्धौ सकल

जगदुत्पादकेश्वर। अथवा सूयन्ते रसा यस्मात् स सोम। हे सकल उत्पादक जगदीश्वर। (वयं) हम सब आपके भक्तजन। (तव व्रते) भवदाज्ञा पालने। सत्यभाषणादि धर्मानुष्ठाने।आपके बताये सत्य धर्मानुष्ठान करने में। सत्य भाषणादि नियम पालन करने में। व्रत = नियम। (तनुषु) सुखयुक्त शरीरेषु। बड़े-बड़े सुखयुक्त शरीरों में। (मनः) मननात्मिकान्तः करणवृत्तिम्। मन की वृत्तियों को मन के अन्दर अच्छी वृत्तियों को धारण करते हुए और काम, क्रोध, लोभ, अहंकारादि वृत्तियों को त्यागते हुए सदैव उत्तम गुणों को (विभ्रतः) धारयन्तः। पोषयन्तः। धारण करते हुए। (प्रजावन्तः) सु सन्तानवन्तः सन्तो। उत्तम सन्तान धन ऐश्वर्यों से युक्त होकर। (सचेमहि) सर्वैः सुखैः नित्यं समवेयाम्। नित्य सब सुखों को प्राप्त होवें। अर्थागमोनित्यमरोगिता आदि ६ सुखों से।

नियम—"शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः ॥"

—योगदर्शन, साधनपाद सूत्र ३२

यम—अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः। योगसूत्र

काम क्रोध अरु लोभ मद मिथ्या छल अभिमान।
इनसे मन को रोकिवो साँचो ब्रत पहिचान॥
अस्ति पुत्रो वशे यस्य भृत्योभार्या तथैव च।
अभावे सति सन्तोषः स्वर्गस्थोसौ महीतले॥

शौच; शुचिर् पूतिभावे धातु से शौच, शब्द बना। शुच् शौचे धातुः। शौचं बाह्यमाभ्यन्तरं च। बाह्य जलमृतिकादिना आभ्यन्तरं रागद्वेष असत्यादि त्यागेन कार्यम्।

"शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं मनः शुद्धिस्तथान्तरम्॥" मनुः
"अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥" मनुः
"मनः शौचं कर्मशौचं कुल शौचं च भारत।
शरीरं शौचं वाक् शौच शौचं पञ्चविधं स्मृतम्॥" महाभारत
"सर्वेषामेव शौचाना मर्थ शौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिः स हि शुचिः न मृद्वारि शुचिः शुचिः॥"

मनुः ५।१०

"शौचात् स्वाङ्ग जुगुप्सा परैरसंसर्णः।" योगसूत्र २।३२
"कलेवरं मूत्रपुरीष भाजनं रमन्ति मूढाः।
न रमन्ति पण्डिताः॥"

"वाचं ते शुंधामि, प्राणं ते शुंधामि, चक्षुस्ते शुंधामि श्रोत्रं ते शुंधामि नाभिं ते शुंधामि मेढ्रं ते शुंधामि पायुं ते शुंधामि चरित्रांस्ते शुंधामि।" यजुः

धर्मानुष्ठानेन सम्यक् प्रसन्नता संपादनीया, सन्तोषाद उत्तम सुख लाभः
योगसूत्र २।४२

"सन्तोष परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।"
"सन्तोष मूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ।।" मनुः
"सन्तोषस्त्रिषु कर्त्तव्यः स्वदारे भोजने तथा धने।
त्रिषु चैव न कर्त्तव्यः यज्ञे तपसि तथा पाठने ।।"
"स हि भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ।।"
"यद्धात्रा निजभाल पट्ट लिखितं स्तोकं महद्वाधिकम्।"

स्तुति करने योग्य प्रभु

"इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्र व्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां बाजानां सत्पतिं पतिम् ।।"
ऋग्वेद १।११।१ यजुः ११।६१

(समुद्र व्यचसं) समुद्र अन्तरिक्ष के समान विस्तृत व्यापक। (रथीनां रथीतमं) रथ सुखदाता पदार्थों में अतिश्रेष्ठ सुख देने वाले अथवा रथी वीरों में श्रेष्ठ वीर। रथः रंहतेर्गति कर्मणः। (वजानां पतिं) वाज इत्यन्न नाम। अन्नों के स्वामी देने वाले। (सत्पतिम्) सबके सच्चे पालक स्वामी। सच्चासौ पतिः सत्पतिः। (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवान् प्रभु की। इदि परमैश्वर्ये धातु से। (विश्वाः गिरः) समस्त वाणी समस्त श्रुतिएँ। (अवीवृधन्) बढ़ाती हैं। अर्थात् विस्तार से उसकी प्रशंसा करती हैं।

भावार्थ—हे मनुष्यों ! जिस सर्वव्यापक जगदीश्वर की श्रुतिएँ सम्पूर्ण वेद शास्त्र, भक्त महापुरुष और योगी जन देवता लोग प्रशंसा और उपासना करते हैं जो सबको सच्चा सुख देने वाला और सबका पति है उसी प्रभु की स्तुति किया करो।

"तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाय देवं भुवनेश मीड्यम् ।।"
"न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिंगम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्यकश्चिज्जानितान चाधिपः ।।"
एको देवो सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।।
श्वेताश्वतर अ. ६।७-९-११

अनन्यांश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।। गीता ९।२२

परमपद की प्राप्ति

विष्णुः = विश् + नु । औणादिक नु प्रत्यय ।

"तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । अथर्व ७।२६।७
दिवीव चक्षुराततम् ।।" ऋक् ९।२२; यजुः ६।५; साम. ८।२।५

(विष्णुः) वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स विष्णुः परमेश्वरः ।

विष्तृ व्याप्तौ—धातु से विष्णु शब्द बना। विश् प्रवेशने व्यापकस्य परमेश्वरस्य। सर्वव्यापक परमात्मा के उस (परमं) प्रकृष्टा नन्दस्वरूपम्। परम सर्वोत्कृष्ट आनन्द स्वरूप को (पदम्) पद्यत गम्यत इति पदम्। सर्वोत्तमोपायैर्मनुष्यै प्रापणीयम्। पद् गतौ धातु से बना। (तद्) मोक्षाख्यमस्तितम्। मोक्ष रूप परम पद को (सूरयः) विद्वांसः। ज्ञानी पुरुष। (सदा पश्यन्ति) सर्वेषु कालेषु पश्यन्ति। सब काल में देखते हैं। वह कैसा है ? साक्षात् कुर्वन्ति। (दिवि इव) मार्त्तण्ड प्रकाशे नेत्र दृष्टे र्व्याप्तिर्यथाभवति।जैसे सूर्य के प्रकाश में ही नेत्रदृष्टि देखने में समर्थ होती है। (चक्षुः आततम्) अन्धकार में नहीं होती ऐसे ही उस परमात्मा के ज्ञान प्रकाश से ही परमपद की प्राप्ति होती है। अज्ञान अन्धकार से नहीं होती।

भावार्थ—जिनके अन्तःकरण निर्मल हो गये हैं। जो पाप ताप से रहित हैं। उन्हीं ज्ञानी विवेकी पुरुषों को परमपद प्राप्त होता है। "Blessed are the pure in Heart they Shall See God."

पद् गतौ धातु से पदं शब्द बना जिसका अर्थ है गति को।

तद् बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्य पुनरावृत्तिं ज्ञान निर्धूत कल्मषाः ।। गीता. ५।१७

"प्राणाघातान्निवृत्तिः, परधन हरणे संयमः सत्य वाक्यं काले शक्त्या प्रदानं, युवति जन कथा मूकभावः परेषाम्। तृष्णा स्रोतों विभंगो, गुरुषु च विनयः, सर्वभूतानुकम्पा, सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधि श्रेयसामेष पन्थाः ।।"—नीतिशतक

सर्वधारक परमात्मा

"त्रीणि पदाविचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ।।" ऋक् १।२२।१८, यजुः ३४।४३

(विष्णुः) वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स परमेश्वरः। चराचर जगत् में व्याप्त परमेश्वर। सर्वव्यापक जगदीश्वर ने। (अदाभ्यः) अहिंसकत्वादयालुः। दयालु जगत्पिता। (गोपाः) सर्वरक्षक। सबकी रक्षा करने वाला परमात्मा गुप् रक्षणे धातु त्रीणि पदानि ज्ञातव्यानि प्राप्तव्यानि भूम्यन्तरिक्ष द्युलोक-रूपाणि (त्रीणि पदा) तीन पद पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष लोक और सूर्यलोक को अथवा स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप जगत् को। (विचक्रमे) विशेष क्रम से रचा है। अथवा रखा है। समर्थानि सावयवानि कृतवान्। (अतः) इसलिए, इस कारण से वही, (धर्माणि) धर्मान्

वा धारकाणि पृथिव्यादीनि, धर्मों को पृथिवी अन्तरिक्ष और सूर्य लोक को। (धारयन्) धारण करता है। पोषण करता है। पोषयन् वचत इति शेषः।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! दयालु, रक्षक, सर्वव्यापक जगदीश्वर ने ही भूमि अन्तरिक्ष और सूर्य आदि लोकों को रचा है। वही इन सबको धारण करता है और रक्षा करता है। इसलिए उसी की उपासना करनी योग्य है। येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः—

"यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद् उर्वन्तरिक्षम्।
यस्यासौ सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम॥"

अथर्व ४।२।४

(यस्य) जिसका (द्यौः उर्वी) द्यु लोक बड़ा है। (च पृथिवी मही) और पृथिवी महान् है। (यस्य अदः) जिससे यह (अन्तरिक्षं उरुः) अन्तरिक्ष विस्तृत हुआ है। (यस्य) जिसका (विततः) फैला हुआ (असौ सूरः) वह सूर्य (महित्वा) महत्व के साथ चमकता है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम)।

परम पद प्राप्त करने के अधिकारी कौन हैं ?

यस्माद् विष्टमिदं सर्वं तस्य शक्या महात्मनः।
तस्मादेवोच्यते विष्णु र्विशेर्धातोः प्रवेशनात्॥
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाँसः समिन्धते। विष्णोर्यत् परमं पदम्।

ऋक् १।२२।२१; यजुः ३४।४४

अन्वयः—ये जागृवासः विपन्यवो विप्रासो विष्णोर्यत् परमं पदमस्ति तत् समिन्धते, तत्संगेन यूयमपि तादृशा भवत इत्याभिप्रायः। विप्र इति मेधावि नाम। (विप्रासः) मेधाविनो योगिनः। बुद्धिमान् योगी लोग ज्ञानी महात्मा। (विपन्यवः) विशेषेण स्तोतुमर्हा ईश्वरस्य वा स्तावकाः। विशेष कर स्तुति करने योग्य व ईश्वर की स्तुति करने वाले। (जागृवाँसः) अविद्या निद्रादुत्थाय जागरूकाः। अविद्या रूप निद्रा से उठकर चेतन हुए, जाग्रत रहने वाले। (विष्णोः) सर्वव्यापक परमेश्वर का सर्वत्राभिव्यापकस्य् विश् प्रवेशने धातु से। (पदमस्ति) प्रापणीयं मोक्षप्रदं स्वरूपम्। प्राप्त होने योग्य मोक्ष दायी स्वरूप है। पद्यत गम्यत इति पदम्।(तत् समिन्धते) उसको प्रकाशित करते हैं। सं सम्यक् प्रकाशयन्ति उनके संग से तुम लोग भी वैसे ही होओ। इन्धी दीप्तै धातु।

"या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जागृति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥" गीता २।६९

भावार्थ—जो योगाभ्यासादि सत्कर्मों को करके शुद्ध मन और आत्मा वाले धार्मिक पुरुषार्थी ज्ञानी जन हैं। वे ही सर्व व्यापक परमेश्वर के स्वरूप को जानने और उसको प्राप्त होने योग्य होते हैं अन्य नहीं।

तद् बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञान निर्धूत कल्मषाः ॥ गीता ५ ।१७
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युः संसार सागरात् ।
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् ॥ गीता १२ ।७
"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधित ।" कठ. ३ ।१४

ईश्वर के अद्भुत कर्म

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानिपस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्य सखा ॥
ऋक् १ ।२२ ।१९; यजुः ६ ।४

इस मन्त्र में विष्णु शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। अर्थात् परमात्मा सर्वव्यापक है। एक देशी नहीं है। कर्म करता है परन्तु उसके हाथ पैर नहीं हैं। जगतां यदि नो कर्त्ता कुम्भकारेण विना घटः। चित्रकारेण विना चित्रं स्वत एव भवेन्तदा।

विष्लृ व्याप्तौ धातु से। यः वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स विष्णुः जगदीश्वरः।(विष्णोः) व्यापकस्य परमेश्वरस्य। सर्वव्यापक ईश्वर के।(कर्माणि) जगदुत्पत्ति स्थिति संहृत्यादीनि सर्वाणि कर्माणि। संसार का बनाना, पालन करना और संहार करना आदि सत्य गुणों को, उत्तम कर्मों को। जन्माद्यस्य यतः अनुभव करो। (पश्यत) संप्रेक्षध्वम्। देखो समझो मानो। (यतः) येन विज्ञानेन। जिस ज्ञान से। (व्रतानि) नियतानि सत्य भाषणादीनि। सत्य भाषणादि नियमों को व्रतों को अर्थात् धर्म नियमों को कर्त्तव्य कर्मों को। (पस्पशे) स्पृशति। बाँध रहा अर्थात् नियम कर रहा है। वही (इन्द्रस्य) इन्द्रियाणां स्वामिनो जीवस्य परमैश्वर्य मिच्छुकस्य जीवस्य। परम ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले जीव का। (युज्यः) युनक्ति सदाचारणेति युज्यः। उपयुक्ताननुप्रदः। सदाचरण में लगाने वाला, उपासना करने योग्य।(सखा) मित्र इव वर्तमानः। मित्र के समान वर्त्तमान है। पस्पशे = प्राप्त होता है।

भावार्थ—हे मनुषयो ! सर्वव्यापक परमात्मा के सृष्टि निर्माण, पालन और प्रलय करना तथा न्याय व्यवस्था में रखना इत्यादि अद्भूत कर्मो को देखो। उसको देव समझकर सत्य धर्म पालन में सदैव तत्पर रहो। क्योंकि वही परमेश्वर जीवात्मा का सच्चा हितकारी, परममित्र और आनन्द का देने वाला है।

भौतिक अग्नि को ठीक रखो

अवत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः।

तनू विस्तारे तन्यते विस्तीर्यते सुख दुखानि येन सः।
"तनूपा अग्नेऽसि तन्व मे पाहि, आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्च्चोदा अग्नेऽसि वर्च्चोमे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण" ॥ यजुः १४ ।१७

अन्वयः—हे अग्ने, जगदीश्वर। यद्यस्मात्त्वं तनूपा असि तत्तस्मात् में मम तन्वं पाहि। हे अग्ने ! यद्यस्मात त्वं मायुदां असि तत्तस्मान्मे मह्यं पूर्णमायुर्देहि। हे अग्ने !यद्यस्मात् त्वं वर्च्चोदा असि तत्तस्मान्ये मह्यं वर्चः तेजोबलं देहि। हे अग्ने ! मे मम तन्वा यद्यावदूनं बुद्धि बलशौर्यादिकमपर्याप्तमस्ति तत्तावदापृण आ समन्तात्पृण पूरय इत्येकोऽर्थः। (अग्ने) हे जगदीश्वर, हे तेजस्वी प्रकाशमान प्रभो। तनूपा असि। जिस कारण आप सब मूर्तिमान पदार्थों के शरीरों की रक्षा करने वाले हैं इससे आप 'पा रक्षणे' (मे तन्व पाहि) मेरे शरीर की रक्षा कीजिये। पृपालन पूरणयोः (अग्ने आयुर्दा असि) हे परमेश्वर आप सबको आयु (जीवन) के दने वाले हैं। इसलिए (मे आयः देहि) मुझे पूर्ण आयु अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन दीजिये। जीवेम शरदः शतात्। भूयश्च शरदः शतात्। (अग्ने वर्च्चोदा असि) हे ईश्वर ! आप अपने भक्तों को तेज बल बुद्धि विद्या के देनेहारे हैं। इस कारण से। (मे वर्च्चः देहि) मेरे लिए भी तेज बल शक्ति सामर्थ्य दीजिये। (अग्ने) हे सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले प्रभो। (मे तन्वा यदूनं) मेरे शरीर में जितना बल शक्ति बुद्धि विद्या आदि सद्गुण कम हैं ऊनमंपर्याप्तम्। (तत् मे आपृण) उस सबको आप भली प्रकार से पूर्ण कर दीजिये। (आयुः) ईयते प्राप्यते यत्तादायुर्जीवनम्। शरीर प्राणात्य संयोगः।शरीर जीवयोर्योगो जीवनम् तेनावच्छिन्नः काल आयुः।

तेज-बल बढ़ाने की प्रार्थना।

इन्द्रियों में शक्ति सामर्थ्य प्राप्त करने की प्रार्थना।

आर्युर्मे पाहि प्राणं मे पाहि अपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मेपाहि, श्रोत्रं मे पाहि, वाचं मे पाहि **"वर्च आधेहि मे तन्वा सह ओजो वयो बलम्।**
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रतिगृहणामि शतशारदाय।।"

अथर्व. १९।३७।२

(मे तन्वां) हे परमेश्वर। आप मेरे शरीर में (वर्चः सहः ओजः वयः बलं) तेज, सहनशीलता, पराक्रम, शक्ति सामर्थ्य, बल पौरुष ये सब सद्गुणों को (आ धेहि) सब प्रकार से धारण कराइये क्योंकि मैं (इन्द्रियाय) ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के लिए (कर्मणे) शक्ति सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए तथा (वीर्याय) शक्ति सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए और (शत शारदाय) सौ वर्ष पर्यन्त पूर्ण आयुष्य की प्राप्ति के लिए (त्वा प्रतिगृहृणामि) आपको ग्रहण करता हूँ, अर्थात् आपके उपदेशों को स्वीकार करता हूँ। इन्द्राय जीवात्मने। ओजो हृदिस्थं बलं, तेजो दृष्टि बलम्।

भावार्थ—प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए। हे दयालु जगदीश्वर ! आप ऐसी कृपा कीजिये कि मेरे शरीर में ओज, तेज, शक्ति, सामर्थ्य, सहनशीलता आदि सद्गुणों की वृद्धि हो। मेरी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ शक्ति सामर्थ्य से सदा संयुक्त रहें। मेरा मन सदा उत्साह से परिपूर्ण रहे। मैं सुख-दुःख

में सहनशील बनूँ। मेरी सभी इन्द्रियाँ सौ वर्ष पर्यन्त अपने कर्म करने में समर्थ रहें। हे प्रभो ! मैं आपके बताये हुए धर्म मार्ग पर चलने के लिए आपके उपदेशों को स्वीकार करता हूँ। "दध् धारण पोषणयोः।"

"तेजोऽसि तेजो मयि धेहि, वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेहि, ओजोस्योओजो मयि धेहि, मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि॥" यजुः १९।९

शम, दम, तितिक्षा, विवेक, वैराग्य और श्रद्धा ये षट्सम्पत्ति हैं।

"वाचं यच्छ, मनोयच्छ, यच्छ प्राणेन्द्रियाणि च।
आत्मानमात्मना यच्छ, न भूयः कल्पसेऽध्वनः॥" महाभारत

१—(वाचं यच्छ) वत्तयनया तां वाणीं यच्छ संयमी कुरु।

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥" मनुः

"सत्यं मृदु प्रियं वाक्यं धीरो हितकरं वदेत्।
आत्मोत्कर्षं तथा निन्दां परेषां परिवर्जयेत्॥" मनुः

"केयूराः न भूषयन्ति पुरुषं हाराः न चन्द्रोज्वलाः।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृताः मूर्द्धजाः॥
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते।
क्षीयन्तेऽखिल भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥" भर्तृहरिः।

"अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रिय हितञ्च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥ गीता १७।१५

"जिह्वा मे मधुमत्तमा।"
यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि॥"

"वाक् चैव मधुराश्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता॥" मनुः २।१५९

कागा काको लेत है, कोयल काको देत।
मीठी वाणी बोल के जग अपनो करि लेत॥

२—(मनो यच्छ) स्वमनं वशी कुरु।

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।"

"यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं-ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥"
यजुः ३४।१

"यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥" गीता ६।२६

"चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।" गीता ६।३४

"वाचं ते शुन्धामि, प्राणं ते शुन्धामि, चक्षुस्ते शुन्धामिम, श्रोतं ते शुन्धामि,
नाभिं ते शुन्धामि, मेढ्रं ते शुन्धामि, पायुं तें शुन्धामि, चरित्राँस्ते शुन्धामि।।" यजुः ६।१४

"असशयं महावाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।" गीता ६।३५

"अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः। योगसूत्र समाधिपाद 12

"विरागस्य भावो वैराग्यम्। अभ्यसनमभ्यासः।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भाव संशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते।। गीता १७।१६

३— (यच्छ प्राणेन्द्रियाणि च) प्राण और इन्द्रियों को वश में करो।
प्राण = पञ्च प्राण। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान।
तस्मिन् सति श्वासः प्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः।

"प्रच्छर्द्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य।" योगसूत्र 2

"दह्यंते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।" मनुः ६।७१

"इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेष क्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृत्वाय कल्पते।।" मनुः।

""आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्।।"

"के शत्रवः सन्ति। निजेन्द्रियाणि। तान्येवमित्राणि जितानि यानि।।"
स्वामी शंकराचार्यः।

"इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्।।" मनुः २

"इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यशंसयम्।
संन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति।।" मनुः २

४—(आत्मानमात्मना यच्छ) विवेक युक्त बुद्धि से अपनी आत्मा को ऊँचा उठावे, नीचे न गिरने देवें।

"आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं सः योगी परमो मतः।। गीता ६।३२

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। गीता

कल्याण का मार्ग

अग्ने नय सुपथा—(प्राणाघातान्निवृत्तिः परधन हरणे संयमः सत्य वाक्यं) अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परिद्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताऽघ्नता-जानता सङ्गमेमहि ॥ ऋक् ५ ।५१ ।१५

हम सब लोग (सूर्या चन्द्रमसौ इव) सूर्य और चन्द्रमा के समान (स्वस्ति पन्थां) कल्याण के मार्ग का (अनुचरेम) अनुगमन करें और (पुनः) फिर (ददता) दान देने (अघ्नता) घात-हिंसा न करने वाले (जानता) ज्ञानी विद्वज्जनों के साथ (संगमेमहि) गमन करें अर्थात् उनका सत्संग कर उत्तम ज्ञान प्राप्त करें । संगमेमहि हम संयुक्त रहें ।

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा विभः ॥

यजुः ४ ।२९; अथर्व २ ।१५ ।३

भावार्थ—सूर्य और चन्द्रमा जिस प्रकार अपने नियम का पालन करते हुए सबको प्रकाश देकर संसार का उपकार करते हैं, वैसे ही हम लोग भी अपने नियम धर्म का पालन करते हुए कल्याण के मार्ग पर चलें । सूर्य और चन्द्र जिस प्रकार दिन और रात परोपकार में तत्पर रहते हैं उसी भाँति हमें भी दिन रात परोपकार में तत्पर होना चाहिए । दीन दुःखियों की अन्न वस्त्रादि से सहायता करनी चाहिए तथा ज्ञानी विद्वानों का महात्माओं का सत्संग करके उत्तम ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । यही सर्वोत्तम कल्याण का मार्ग है । नित्य नियमित और निरन्तर दान यज्ञादि कर्म और सत्संग करें ।

दान

"दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीयागतिर्भवति ॥
"चत्वारो धनदायदा धर्माग्निर्नृपतस्कराः ।
तेषां ज्येष्ठावमानेन त्रयः कुप्यन्ति बान्धवाः ॥"
"गोदुग्धं वाटिका पुष्पं विद्या कूपोदकं धनम् ।
दानाद्विवर्धयैन्नित्यंमदानाच्च विनश्यति ॥"
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेवतत् ।
"यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥" गीता १८ ।५
"यो न ददाति न भुंक्ते सति विभवे नैव तस्य तद्दुव्यम् ।
तृणमय कृत्रिम पुरुषो रक्षति सस्यं परार्थे ॥"

(अनुचरेम) अनु पीछे चरेम चलें पहले ज्ञान प्राप्त करें पीछे कार्य करें।
अनु अनुकूल्येन। चर गति भक्षणयोः।

अष्टो गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतञ्च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥

विदुर नीतिः

अर्थाः पाद रजः समा गिरि नदी वेगोपमं यौवनं, आयुष्यं जललोलविन्दु चपलं फेनोपमं जीवितम्। दानं यो न करोति निश्चल मतिः भोगं न भुंक्ते च यः, पश्चात्तापयुतो जरापरिगतः शोकाग्निना दह्यते॥

"दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विक विदुः॥" गीता १७।२०

"वाणी रसवती यस्य भार्या पुत्रवती सती।
लक्ष्मीर्दानवती यस्य सफलं तस्य जीवितम्॥"

"धर्माय यशसेऽर्थाय आत्मने स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन वित्तमिहऽमुत्र च मोदते॥"

अहिंसा

अहिंसा परमो धर्मः अधर्मः प्राणिनां वधा।
अहिंसया च भूतानांममृतत्वाय कल्पते। मनुः ६।६०

मांसभक्षैः सुरापानैर्मूर्खैश्चाक्षरवर्जितैः।
पशुभिः पुरुषाकारै र्भाराक्रान्तास्ति मेदिनी॥

"ना कृत्वा प्राणिनां हिंसामांस मुपापद्यते कृथिम्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांस विवर्जयेत्॥"

"अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः॥ मनुः ५।५१

"न हि मासं तृणात् काष्ठादुपलाद्वापि जायते।
हत्वा जन्तु ततो मांस तस्माद्दोषस्तु भक्षणैः॥"

सत्संगः

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति॥
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं।
सत्संगतिः कथय किन्न करोति पुंसाम्॥ भर्तृहरिः।

"संत संग अपवर्ग कर कामी भवकर पन्थ।
कहहिं संत कवि कोविद श्रुति पुराण सद्ग्रन्थ॥" तुलसी—

"न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।"

चार्वाक. नितिश १।६७

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न श्रूयते।

मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्र स्थितं राजते ।।
स्वात्यां सागर शुक्तिसंपुटगतं तज्जायते मौक्तिकम् ।
प्रायेणाधम मध्ययमोत्तम गुणाः संसर्गतो जायते ।।

आत्म सुधार (दोष दूर करने की प्रार्थना)

जिस प्रकार छिद्र युक्त कलश (घट) में रस, दूध, घृत आदि पदार्थ नहीं ठहरते, बहते, रिसते रहते हैं इसी प्रकार जब तक हमारे अन्दर छिद्र दोष बने रहेंगे तब तक सद्गुण नहीं रह सकते ।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वाति तृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु ।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः । यजुः ३६ ।२

(यत्) जो (मे) मेरे (चक्षुषः) नेत्र की, आँख की (हृदयस्य) अन्तः करण = हृदय की (छिद्रम्) न्यूनता, दोष, बुराई दूषण, कमी, त्रुटि (वा) अथवा (मनसः) मन की सबके अन्दर (अति तृष्णम्) अत्यन्त त्रुटि, व्याकुलता अथवा हिंसा का भाव है । (तत्) उसको (बृहस्पतिः) ज्ञान का स्वामी, बड़े आकाशादि का पालक स्वामी परमेश्वर (मे) मेरे दोष को (दधातु) ठीक करे । (यः) जो (भुवनस्य) सृष्टि-संसार का (पतिः) स्वामी है रक्षक है वह (नः) हमारे लिए (शंभवतु) कल्याणकारी होवे ।

जीव अल्पज्ञ है । अल्पज्ञता के कारण उससे अनेकानेक त्रुटियाँ होती हैं ।

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिए कि सृष्टि कर्त्ता प्रभु जगदीश्वर से नित्य प्रार्थना किया करें कि हे जगत्प्रभो ! मेरे चक्षुरादि इन्द्रियों में हृदय में अथवा मन में जो कुछ बुराई, दूषण दोष हों उन्हें आप दूर कीजिये । आप ज्ञान के स्वामी हैं मुझे भी ज्ञान प्रकाश दीजिये जिससे मेरे हृदय के अन्दर से अज्ञान-अन्धकार दूर हो और मेरे मन में हिंसादि दोषों का भाव कमी न आवे । आप सबका कल्याण करने वाले हैं । मेरा भी कल्याण कीजिये ।

"कर चरण कृतं वा क्कायजं कर्मजं वा श्रवण नयनजं वा मानसं वापराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व, जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भोः ।।
अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ।" यजुः ३ ।१७

आपृण = पूरय । पृ पालन पूरयोः धातु से । आयु = जीवनम् ।

पद्ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यादिन्द्रिये ।
यदैनश्चकृमावयमिदं-तदवयजामहे स्वाहा ।। यजुः ३ ।४५

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा हतेः पात्रादिवोदकम् ।।
"तस्मात्वामिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ । गीता

"इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेत् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ।।" मनुः ।

अदाता को पाप।

"मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि-वधइत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ।।"

ऋक् १० ।११७ ।६

(अप्रचेता:) विवेक ज्ञान शून्य पुरुष, अविवेकी मनुष्य (मोघं) व्यर्थ ही (अन्नं विन्दते) अन्न लाभ करता है। (सत्यं ब्रीवीमि) मैं यह सत्य कहता हूँ। वह धन उसका नहीं है किन्तु (सः तस्य) वह उस अज्ञानी पुरुष के लिए (वधः इत्) बध ही है अर्थात् मरण ही है। वह (न अर्यमणं) न तो यज्ञ करके ईश्वर को ही (पुण्यति) सन्तुष्ट करता है और (वो सखायम्) न अपने मित्र को ही पुष्ट करता है। विशेष क्या कहा जाय (केवलादी) केवल स्वयं अपने लिए भोजन करने वाला पुरुष (केवलाघः भवति) केवल पापी होता है, केवल उसका पाप ही रह जाता है।

"अहं दाशुषे विभजामि भोजनम्।" ऋक् १० ।४८ ।१

आशय—"उत्तम पदार्थों का अकेले उपयोग नहीं करना चाहिए अपितु अपने मित्रों, बन्धु, बान्धवों तथा अन्य लोगों को उसका भागी बनाना चाहिए। जो दूसरों को अपने कमाये हुए अन्न धन में से दान नहीं देता वह पापी होता है। इसलिए दान करने के पश्चात् ही उसका भोग करना चाहिए।"

एकः स्वादु न भुञ्जीत मनुः
"भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।" गीता ३ ।१३
"अधं स केवलं भुक्ते यः पचत्यात्मकारणात्।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत् सतामन्नं विधीयते।।" मनुः २ ।११८

कृपण की निन्दा

"न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिर्विच्छेत्।।"

ऋक् १० ।११७ ।४

(सः) वह पुरुष (न सखा) किसी का सच्चा मित्र नहीं (यः) जो (सचाभुवे) सदा साथ रहने वाले, समान विचार वाले (सचमानाय) सेवा करने के लिए उपस्थित (सख्ये) सखा मित्र को (पित्व नः ददाति) अन्न नहीं देता (अस्मात्) इस अदाता मित्र से (अप प्रेयात्) दूर भाग जाना चाहिए। क्योंकि (तत् ओकः न अस्ति) उसका घर सच्चा घर नहीं है। (पृणन्तं अन्यं) दूसरे दान देने वाले (अरणं) सरलता से आश्रय देने वाले स्वामी की (चित् इच्छेत्) इच्छा करनी योग्य है।

भावार्थ—जो धनी मानी पुरुष अपने साथी मित्र अथवा अन्य दीन दुःखियों की अन्न धनादि से सहायता नहीं करता अथवा दान नहीं देता। उसका घर सच्चा घर नहीं है। वहाँ से दूर ही चला जाना चाहिए। सच्चा घर वही होता है जहाँ दानी

मनुष्य रहता है। उसके पास सब मित्र इकट्ठे होते हैं। अतः कृपणता का त्याग कर यथाशक्ति दानशील बनना चाहिए।

"विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं वामृतभोजनः।
विघसंभुक्तशेषन्तु यज्ञशिष्टं तथामृतम्॥" मनुः ४

"यदङ्गदाशुषे त्व मग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥"

"यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम्।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि॥" नीतिः।

"दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन"— भर्तृहरि नीतिः

सच्चा परोपकारी (दानी)

"अहं दाशुषे विभजामि भोजनम्। ऋक् १०।४८।१

"स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्न कामाय चरते कृशाय।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम्॥"
ऋक् १०।११७।३

(यः) जो दानी पुरुष (कृशाय) अत्यन्त कृश दुर्बल अति दीन (अन्न कामाय चरते) अन्न की इच्छा से भ्रमण करने वाले (गृहवे) घर-घर में जाकर भीख माँगने वाले भिक्षुक को (ददाति) अन्न देता है। (स इत भोजः) वही वास्तव में सच्चा भोजन करता है। (अस्मै) इस दानदाता के लिए (याम हूतौ) योग्य समय पर दान करने के लिए (अरं भवति) पर्याप्त अन्न होता है। (उत) और (अपरीषु) कठिन प्रसंग में इसको सब लोग (सखायं कृणुते) मित्र बनाते हैं। अर्थात् उसके सब कोई मित्र ही हो जाते हैं।

भावार्थ—जो दुर्बल कृश अति दीन भूख से पीड़ित और घर-घर में जाकर भीख माँगने वाले याचकों को अन्नादि दान करता है। वही सच्चा भोजन करता है।दूसरों को दान न देते हुए ही जो स्वयं भोजन करता है वह सच्चा भोजन नहीं करता। दानी पुरुषों के बहुत मित्र हो जाते हैं। इसलिए उनका जीवन क्रम सुख से व्यतीत होता है।

"मोधमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य नार्यमणं।"

"देयं भेषजमार्त्तस्य परिश्रान्तस्य चासनम्।
तृषितस्य च पानीयं क्षुधितस्य च भोजनम्॥"

"अन्नाद्बलञ्च तेजश्च प्राणिनां वर्द्धते सदा।
अन्नदानमतो हेतोः श्रेष्ठमाह प्रजापतिः॥"

"गोदुग्धं वाटिका पुष्पं विद्या कूपोदकं धनम्।
दानाद्विवर्धते नित्यमदानाच्च विनश्यति॥"

अन्नदान।

"य आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान् सन् रफितायोपजग्मुषे।
स्थिरं मनः कृणुते मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित्स मर्डितारं न विन्दते॥"

ऋक् १०।११७।२

(यः अन्नवान् सन्) जो पुरुष धन-धान्य सम्पन्न होकर भी (पित्वः चकमानाय) भिक्षा रूप से अन्न चाहने वाले (रफिताय) बुरी अवस्था में पड़े हुए (आध्राय) अन्न बिना अत्यन्त दुर्बल (उप जग्मुषे) घर में आये हुए भिक्षुक को दान न देकर (मनः स्थिरं कुरुते) अपने मन को कठोर कर लेता है। अर्थात् उसको अन्न नहीं देता। (उतो) किन्तु (पुरः सेवते) उसके सामने ही स्वयं अन्न सेवन करता है, अर्थात् पहले उसको खिलाये बिना स्वयं भोजन करता है (सः चित्) वह निश्चय से (मडितारंन विन्दते) अपने सुखदाता मित्रों को अथवा सबको सुख देने वाले प्रभु को नहीं पाता। ऐसे स्वार्थी अदाता पुरुष के बन्धु बान्धव भी उसको सुखकारी नहीं होते किन्तु उससे घृणा करते हैं।

"यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम्।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि॥"
"यो न ददाति ल भुंक्ते सति विभवे नैव तस्य तद्रव्यम्।
तृणमय कृत्रिम पुरुषो रक्षति सस्यं परस्यार्थे॥"
"दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥"
"अन्नाद् बलञ्च तेजश्च प्राणिना वर्द्धते सदा।
अन्नदान मतो हे तो श्रेष्ठमाह प्रजापतिः॥"
"अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः।
अद्यतेऽन्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते॥"

दान से उत्तम गति

"पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीथांसमनुपश्येत पन्थाम्।
ओ हि वर्त्तन्ते रथ्येवचक्राऽन्यमन्यमुपतिष्ठन्तरायः॥"

ऋक् १०।११७।५

(तव्यान्) बलवान्, धन धान्य सम्पन्न पुरुष (आधमानाय) सहायता की इच्छा करने वाले याचक अतिथि को (इत् पृणीयात्) निश्चय से अवश्य ही तृप्त किया करे, सहायता देवे। यदि वह देवेगा तो (द्राधीयांसं पन्थां) अतिशय दीर्घ सुकृत के मार्ग को (अनुपश्येत) देखेगा। अर्थात् उसको उत्तम गति प्राप्त होगी। आगे कारण बताते हैं—(उ हि) निश्चय से (रायः) धन (आवर्त्तन्ते) घूमते रहते हैं। परिवर्तनशील हैं। अर्थात् एक ही स्थान पर वे नहीं रहते। इसमें दृष्टान्त देते हैं। (रथ्या चक्रा इव)

जैसे रथ के चक्र पहिये ऊपर नीचे होते रहते हैं। वैसे ही धन सम्पत्तियाँ भी (अन्यं अन्यं) अन्य-अन्य पुरुष के समीप (उपतिष्ठन्ति) उपस्थित होते रहते हैं। चली जाती हैं।

भावार्थ—धन, सम्पत्ति सदैव किसी के पास स्थिर रूप में नहीं रहती। आज जो श्रीमान् दिखाई देता है। वही भविष्य में निर्धन हो सकता है। इसलिए धन का गर्व किसी को भी नहीं करना चाहिए।

"यदङ्गदाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।तवेत्तसत्यमङ्गिरः॥"

ऋक् १।१।६

"आपद्गतं हससि किं द्रविणान्धमूढ़,
लक्ष्मी स्थिरा न भवतीति किमज चित्रम्।
ऐतान् प्रपश्यसि घटान् जलयन्त्र चक्रे रिक्ता भवन्ति भरिता भरिताश्च रिक्ताः॥"
"मा कुरु धन जन यौवन गर्वं हरति निमेषात् कालः सर्वम्।"

पुण्य धन की याचना।

"त्वं विश्वस्य धनदा असि"
"अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहुते वसव्यम्।
इन्द्रयच्चित्रं श्रवस्या अनुद्यून् बृहद् वदेम विदथे सुवीरा॥"

ऋक् २।१३।१३

(वसो) हे सर्व व्यापक जगदीश्वर, हे सर्व सम्पन्न देव! (इन्द्र) हे परमैश्वर्यशाली परमात्मन्! (अस्मभ्यं) हम उपासकों को (तत् राधः) वह धन (दानाय) दान और भोग के लिए (समर्थयस्व) दीजिये। (यत्) जो धन (अनुद्यून्) प्रतिदिन (श्रवस्याः) यश का बढ़ाने वाला हो, क्योंकि (ते) आपका धन (बहु) बहुत (वसव्यम्) सबको वास देने योग्य एवं (चित्रं) विचित्रै। नाना प्रकार का है। आपका धन पाकर हम लोग (सुवीराः) सुवीर हों। और सुवीर पुत्र पौत्रादिकों से युक्त हों। (विदथे) पवित्र यज्ञशाला में (बृहद्) आपकी बहुत स्तुति और यशोगान (वदेम) किया करें।

"कबिरा सब जग निरधना धनवन्ता नहि कोय।
धनवन्ता सो जानिये जाके राम नाम धन होय॥" —कबीर

भावार्थ—हे इन्द्र। परमैश्वर्यशाली प्रभो! हे सबके अन्दर निवास करने वाले परमात्मन्! आप हम सब उपासकों, भक्तों को दानादि शुभ कार्य करने के लिए धन दीजिये। आपका वह दिया धन अनेक प्रकार का और यश बढ़ाने वाला हो। जिसको पाकर हम लोग पुत्र, पौत्रादि से युक्त होकर वीर बनें तथा यज्ञादि सत्कर्मों में आपका यशोगान किया करें।

प्रभु की कृपा और सत्कर्म द्वारा कमाया धन दानादि शुभ कर्मों में लगाना चाहिए। इससे मनुष्य का आत्मबल मन, शरीर पवित्र बनता है। बल पौरुष की वृद्धि होती है। उसकी कीर्ति बढ़ती है। सज्जनों का धन औरों के सुख के लिए होता है।

"वाणी रसवती यस्य भार्या पुत्रवती सती। लक्ष्मीर्दानवती यस्य सफलं तस्य जीवितम्॥" लक्ष्मीर्लाभाद्वा, लक्षणाद्वा, लषतेर्वा लाञ्छनाद्वा, धनमिति कस्मात्। धनोतीति सतः धनोती सार्थंये तीत्यर्थः। "वाचस्पति र्वाचं न स्वदतु जिह्वा मे मधुरत॥"

"कुरदत को नापसन्द हैं सख्ती बयान में, इससे नहीं लगाई है हड्डी जुवान में॥"

"अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः मतञ्च।
पराक्रमश्चाबहु भाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥"
"अर्थाः पाद रजः समा गिरिनदी वेगोपमं यौवनं, आयुष्मं जललोल विन्दु चपलं फेनोपमं जीवनम्। दानं यो न करोति निश्चल मतिर्भोगं न भुंक्ते च यः पश्चात्तापयुतो जरापरिगतः शोकाग्निना दह्यते॥" दानं भोगोनाशस्तिस्रो.......
"दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं विदुः॥" गीता १७।२० अ.
"अपात्रेभ्यस्तु दत्तानि दानानि सुबहून्यपि।
वृथा भवन्ति राजेन्द्र भस्मन्याज्याहुतिर्यथा॥"
"पात्रापात्र विवेकोऽस्ति धेनु पन्नगयोर्यथा।
तृणात्संजायते क्षीरं क्षीरात् संजायते विषम्॥"
"पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनपेक्ष्य प्रयोजनम्।
केवलं त्याग बुद्ध्या यत् धर्मदानं तदुच्यते॥"
"सुक्षेत्रे वापयेद् बीजं, सुपात्रे निक्षिपेद्धनम्।
सुक्षेत्रे सुपात्रे च ह्युप्तं दत्तं न नश्यति॥"
"गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य संचयात्।
स्थिति रुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः॥"
"यस्य दान विहीनस्य धनान्या यान्ति यान्ति किम्।
आरण्य कुसुमानीव निरर्थास्तस्य संपदः॥"
"द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्त मदातारं दरिद्रञ्चातपस्विनम्॥"
"धर्माय यशसेऽर्थाय आत्मने स्वजनाय च।

पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते ।।"
"दरिद्रान्भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।"

ईश्वर के अनन्त दान

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः ।
अतश्च सर्वां ओषधयोरसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ।।
मुण्डक् २।१।९

"इन्द्रमीशान मोजसाभिस्तोमा अनूषत ।
सहस्त्रं यस्य रातयः उत वा सन्ति भूयसीः ।।" ऋक् १।११।८

(स्तोमाः) हमारे स्तोत्र, स्तवन, स्तुति प्रार्थना, गीत गान इत्यादि सकल व्यापार (इन्द्रम्) परमैश्वर्य युक्त परमात्मा को ही (अभि अनूषत) सब प्रकार से दिखलाने वाले हों। जो इन्द्र (ओजसा) अपने बल और ज्ञान से (ईशानम्) इस जगत् का नियामक हो रहा है अर्थात् जो बलपूर्वक इस सकल अचिन्त्य संसार को अपने नियम में रखकर शासन कर रहा है। हे मनुष्यो ! (तस्य रातयः) जिसके दान (सहस्त्रं) सहस्त्र संख्या युक्त हैं। (उत वा) अथवा सहस्त्र संख्या से भी जिसके दान (भूयसी सन्ति) अधिक हैं।

बलपूर्वक जगत् के नियन्ता ईश्वर के ही प्रदर्शक मेरे स्तोत्र हों, जिसके धन दान सहस्त्र संख्याक से भी अधिकतर हैं।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! हम तुम सब मिलकर उसी परमात्मा का यशोगान करें जो इस जगत् का ईश है। जिसके दिये हुए अनन्त दान हम सबको सुख पहुँचा रहे हैं। देखो इस जगत् में कितने प्रकार के अन्न, फल, कन्द, मूल, वृक्ष, पुष्प, लता औषधियाँ विद्यमान हैं। दूध देने वाले गाय, भैंस, बकरी आदि उपकारी पशु तथा अनेक प्रकार के सुन्दर मधुर स्वर में बोलने वाली पक्षीगण ये सब हमको उसी की याद दिलाते हैं। इसके अतिरिक्त नदी, समुद्र, पर्वत तथा आकाश में सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु, मेघ इत्यादि शतशः पदार्थ हमको सुख दे रहे हैं अतः हम सबका कर्त्तव्य है कि उसी की उपासना करें।

"एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ।।" मुण्डक् २।१।३

सब उसी की स्तुति करते हैं

"कस्मै देवाय हविषा विधेम"

"अभित्वाशूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ।।
ऋक् ७।३२।२२; यजुः २७।३५

(शूर) हे शूर ! हे महावीर ! हे ईश ! आप (अस्य जगतः ईशानम्) इस जगत् के और जङ्गम वस्तुओं के ईश्वर हैं और (तस्थुषः ईशानम्) स्थावरों के भी ईश्वर स्वामी हैं। तथा (स्वः दृशम्) सब दिशाओं के देखने वाले हैं। (अथवः स्वः) मोक्ष सुख के दर्शन कराने वाले हैं। (इन्द्र) हे परमैश्वर्य सम्पन्न देव ! (त्वा) आपकी ही हम मनुष्यगण (अभि नो नुमः) अतिशय स्तुति करते रहते हैं। यहाँ दृष्टान्त देते हैं—(अदुग्धाः) न दोही गई (धेनवः इव) गाय के समान अर्थात्—गाय जैसे अपने बछड़े को दूध पिलाने को मानो स्तुति करती है। अर्थात् आतुर रहती है। वैसे ही आप हमें सुखी करने को आतुर रहते हैं।

अनुवाद—हे महाबलेश्वर ! हे इन्द्र अदुग्धा धेनुवत् हम सब उपासक आपकी ही सब तरह से स्तुति प्रार्थना किया करें। क्योंकि आप ही इस स्थावर जंगम जगत् के ईश्वर हैं तथा सबके कर्मों को देखते भी हैं।

भावार्थ—प्रभु इस जड़ चेतन रूप जगत् के स्वामी हैं। अपने भक्तों को मोक्ष रूप सुख के देने वाले हैं। जिस प्रकार न दुही गई गौ सबसे प्रथम अपने बछड़े को दूध पिलाती है इसी प्रकार भक्त वत्सल जगदीश्वर भी अपने भक्तों को गो दुग्धवत् अमृत = मोक्ष सुख देते हैं।

गोक्षीरं वृष्यमायुष्यं बुद्धि मेधा करम् परम्। ज्वर कुष्ठक्षयोन्मादपाण्डुशोथातिसारनुते। "धीरधारणावती मेधा।"

"एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥"

कठ. २।२।१२

भक्ति के तीन अंग हैं

(1) स्तुति, (2) प्रार्थना, (3) उपासना।

स्तुतिः—गुणेषु गुणकथनं स्तुतिः। गुण कथन। नाम स्मरण। जो ईश्वर के गुण, ज्ञान, कथन, श्रवण और सत्य भाषण करता है वह स्तुति होती है। स्तुति से ईश्वर में प्रीति उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण कर्म, स्वभाव का सुधारना स्तुति का फल है।

कविमग्नि मुपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे। देवममीव चातनम्।

ऋक् १।१२।७

हे मनुष्य समूह ! हे जीवगण ! तू (अध्वरे) अखिल यज्ञादि शुभकर्म में (कविम्) सर्वज्ञ (सत्य धर्माणम्) सत्य धर्म वाले जिसके सब ही नियम धर्म सत्य हैं। उस (देवम्) सकल दिव्य गुणों से युक्त (अमीव चातनम्) निखिल विघ्नों और रोगों के विनाशक (अग्निम्) सर्वव्यापक परमात्मा की ही (उपस्तुहि) स्तुति प्रार्थना उपासना कर।

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव॥"
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

त्वं हि नः पिता वसोः त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अथा ते सुम्नमीमहे ॥ ऋक्. साम.

"त्वं जामिर्जनानामग्नेमित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्य ईड्यः ॥"
ऋक् १ ।७५ ।४

(अग्ने) हे अचिन्त्य स्वरूप तेजोमय देव ! (त्वम्) आप (जनानां) सकल मनुष्यों और जीवों के (जामिः असि) बन्धु हैं (मित्रः) सबके मित्र और (प्रियः) प्रिय हैं। (साखिभ्यः) सखाओं के लिए (सखा) परम हितकारी सखा और (ईडयः) स्तुत्य हैं।

भावार्थः—वास्तविक सखा और सम्बन्धी यदि कोई है तो वह प्रभु ही है। साधारण से अपराध होने पर भी माता पिता अपनी सन्तान को घर से बाहर कर देते हैं। राजा अपने राज्य से निष्कासित कर देता है। परन्तु दयालु जगदीश्वर पापी से पापी मनुष्य को भी अपने प्रेम से वंचित नहीं करते उसे सुधारने की सामग्री सतत देते रहते हैं। अतः उनसे बढ़कर कौन मित्र हो सकता है। इसीलिए उसी की स्तुति करनी योग्य है।

प्रार्थना = प्र प्रकर्षेण अर्थात् विशेष उत्कण्ठा से अर्थना = याचना माँगना ।यह प्रार्थना का शब्दार्थ है। अपने पूर्ण सामर्थ्य के उपरान्त उत्तम कार्यों की सिद्धि के लिए परमेश्वर अथवा किसी सामर्थ्यवान् व्यक्ति से सहायता लेने का नाम प्रार्थना है। प्रार्थना से जीवन में निरभिमानता आती, उत्साह उत्पन्न होता और सहायता की प्राप्ति होती है। यह प्रार्थना का फल है।

"विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥"
"वयं स्याम पतयो रयीणाम्।"
"जीवेम शरदः शतम्।"
"सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।"
"वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु।"
"तेजोऽसि तेजोमयि धेहि।"
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि॥"

उपासना = (सं.स्त्री.) उप + आस् + मुच् - स्त्रियां टाप्। उप = समीप। आस = आस् उपवेशने धातु से। आसना = बैठना उपस्थित होना। पूजा ध्यानादि द्वारा इष्ट देवता का स्मरण चिन्तन करना।

(सगुणोपासनम्) सर्वज्ञादि गुणैः यह वर्त्तमानः सगुणः। तद्यथ परमेश्वरः सर्वज्ञः सर्वव्यापी, सर्वाध्यक्षः सर्वस्वामी इत्यादि गुणैः। सह वर्तमानः सगुणः। तद्यथा परमेश्वरः सर्वज्ञः सर्वव्यापी, सर्वाध्यक्षः सर्वस्वामी इत्यादि गुणैः सह वर्तमानत्वात् परमेश्वरस्य सगुणोपासनं ज्ञेयम्।

(निर्गुणोपासनम्) तथा सोऽजोऽर्थाज्जनमरहितः अव्रणः छेदरहितः निराकारः आकाररहितः, अकायः शरीर सम्बन्ध रहितः तथैव रूपरसगन्धस्पर्शसंख्या परिमांणादयो गुणास्तस्मिन्नसन्तीति इदमेव तस्य निर्गुणोपासनं ज्ञातव्यम्। तथा-अविद्यादि क्लेश परिमाणद्वित्वादि संख्या शब्दस्पर्शरूप रसगन्धादि गुणेभ्यों निर्गतत्वान्निर्गुणोस्तीति विज्ञेयम्।

इत्येवं तस्य परमेश्वरस्योपासना द्विविधास्ति।एका सगुणा-द्वितीया निर्गुणाश्चेति। ऋ भा. भू. उपासना विषय.

सत्य का ग्रहण और असत्य का नाश

उत्तम ज्ञान चाहने वाले मनुष्य के लिए सत्य और असत्य दोनों प्रकार के वचन अपना-अपना प्रभाव दिखाते हैं।

"सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत् सत्यं यतरहजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत्॥"

ऋक् ७।१०४।१२

(चिकितुषे) विद्वान् विवेकी (जनाय) जन के लिए (सुविज्ञानं) यह सुविज्ञेय है अर्थात् विवेकी जन इसको सहज रूप में जान और समझ सकते हैं कि (सत् च असत् च) सत् और असत् (वचसी) दोनों प्रकार के वचन (पस्पृधाते) परस्पर स्पर्धा रखते हैं। (तयोः) उन सत् और असत् दोनों में (यत् सत्यं) जो सत्य बचन हैं (यतरत्) और जो (ऋजीयः) ऋजुतम अकुटिल है। सरल है (तत् इत्) उसी की (सोमः अवति) परमात्मा रक्षा करता है। (असत् आ हन्ति) और असत्य का सर्वथा हनन करता है।

अनुवाद—विद्वान् विवेकी जन को यह सुबोध है कि सत्य और असत्य दोनों प्रकार के वचन परस्पर स्पर्धा = विरोध रखते हैं। उनमें जो सत्य और ऋजुतम है उसी की ईश्वर भी रक्षा करता है और जो असत्य है अधर्म है उसको हनन करता है।

भावार्थ—"सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।" आर्य समाज का नियम संख्या-4 (सत्य) सम्यङ् परीक्ष्य निश्चीयते तत् सत्यम्। सत्यमिति कस्मात् ? सत्सु तायते सत्प्रभं भवतीति वा। निरुक्ते

सोमः = सत्कर्मों का प्रेरक, ष् प्रेरणे धातु से, शान्त स्वरूप, शान्ति दायक परमात्मा अथवा सकल जगदुत्पादक॥ षङ् प्राणि प्रसवे, षङ् प्राणिगर्भ विमोक्त।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥" मनुः ४।१३८

"सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत् प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥" गीता १७।२६

"सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः।"
अर्थात् सत्याच्चरणाद्देवा असत्याचरणान्मनुष्याश्च भवन्ति।

शतपथ ब्राह्मण

"द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति सत्यं चैवानृतं च।" ऋक्.

परमात्मा की प्राप्ति का साधन

"सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा, सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ।।"

मुण्डक्. ३ ।१ ।५

"सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्।।"

मुण्डक्. ३ ।१ ।६

"सत्येन रक्ष्यते धर्मो, विद्याभ्यासेन रक्ष्यते ।
मृज्जया रक्ष्यते रूपं, कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ।।"

"न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः न ते वृद्धाः ये न वदन्ति धर्मम्।
न वै धर्मो यत्र न सत्यमस्ति, न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ।।"

"सत्यहीना वृथा पूजा, सत्यहीनो वृथा जपः ।
सत्यहीनं तपो व्यर्थं मूषरे वपनं यथा ।।"

सत्यवादिन् कौशिक ऋषि की कथा पुराणों में आती है ।

"सत्यं भूतहितं प्रोक्तं न यथार्थाभिभाषणम् ।
सत्यं प्रियं मृदु वाक्यं धीरो हितकर वदेत् ।।"

"ऋतं तपः, सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपः ।
शमस्तपो दानं तपो, यज्ञस्तपो, भूर्भुवः स्वर्ब्रह्मै तदुपास्वैतत्तपः ।।"

तैत्तिराण्यक्.

सत्येन वायुरावाति सत्येनादित्यो रोचते दिवि, सत्यं वाचः प्रतिष्ठा, सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं, तस्मात्सत्यं परमं वदन्ति ।

तैत्तिरा. प्रपा. १० ।६२ ।६३

"सत्यभाषणात् सत्याचरणान्च्च परं धर्म लक्षणं किञ्चिन्मास्त्येव ।"

ईश्वर के अनेक रूप और नाम

"तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।।" यजु: ३२ ।१

(तत्) वह सर्वज्ञं सर्वव्यापी सनातन, अनादि, सच्चिदानन्द स्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव, न्यायकारी दयालु, जगत् का स्रष्टा सर्वान्तर्यामि । वह सर्वज्ञ सर्वव्यापी सनातन, अनादि, स्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव, न्यायकारी दयालु, जगत् का स्रष्टा, धारणकर्त्ता और सबका अन्तर्यामी । (एव) निश्चये । ही (अग्निः) ज्ञानस्वरूपत्वात्स्व प्रकाशत्वाच्च । ज्ञान स्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि है । (तत् आदित्यः) प्रलये सर्वस्यादातृत्वात् । प्रलय समय सबको ग्रहण करने से

आदित्य अथवा वह सूर्य है। (तत् वायुः) अनन्त बलत्व सर्वधर्त्तृत्वाभ्याम्। अनन्त बलवान् और सबका धर्त्ता होने से वायु। वह वायु है। (तत् उचन्द्रमाः) आनन्दस्वरूपत्वादाल्हादकत्वाच्च। आनन्द स्वरूप और आनन्द कारक होने से चन्द्रमा। वह निश्चय से चन्द्रमा है। "यदि आल्हादने दीप्तौ च।" (तत् एव शुक्रं) आशुकारित्वाच्छु भावाच्च। शीघ्रकारी या शुद्ध भाव से शुक्र। वह ही शुक्र अर्थात् शुद्ध पवित्र है। (तत् ब्रह्म) सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म। सबसे बड़ा होने से ब्रह्म, वह ब्रह्म है। बृह बृहि बृद्धौ धातु से (ताः आपः) सर्वत्र व्यापकत्वात्। अप्लृ व्याप्तौ धातु से। सर्वत्र व्यापक होने से आप अर्थात् जल हैं। (सः प्रजापतिः) सर्वस्याः प्रजायाः स्वामित्वात्। सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है ऐसा तुम लोग जानो।

भावार्थ—हे मनुष्यो। अग्नि आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आप, प्रजापति ये ईश्वर के नाम हैं। इन गौण शब्दों द्वारा निश्चय से उसी परमात्मशक्ति का बोध होता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

आदद्नादादित्यः इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहु रथोदिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।

"स धाता स विधर्त्ता स वायुर्नम उच्छितम्।सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः। सोऽग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः।।"

अथर्व. १३।४।३-४-५

"स ब्रह्मा स शिवः, सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमा।।"
"एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्।।" मनुः १२।१२३
"इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।"

ऋक्. १।१६४।४६

"वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते।।"

गीता ११।३९

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांस मणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यातपुरुषं परम्।।" मनुः १२।१२२

मन ज्ञाने, मनुः विज्ञान स्वरूप होने से। रुक्माभम् = स्वप्रकाश स्वरूप। स्वप्नधीगम्यं = समाधिस्थ बुद्धि से जानने योग्य।

"सूर्याचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्।"
"स्वतेजसाविश्वमिदं तपत्तम्"। गीता ११।९

"यदादित्य गतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥" गीता १५।१२
"बहुधावदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः॥" ऋक्. १।१६४।४६

ईश्वर की कोई प्रतिमा (मूर्ति) नहीं है।

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिँ सीदित्येषा यस्मान्नजात इत्येषः॥
यजुः ३२।३

(यस्य) जिस सर्वव्यापक जगदीश्वर का (महत) महान् (नाम) प्रसिद्ध (यशः) यश है (तस्य) उस परमात्मा की उस जगदीश्वर की (प्रतिमा) प्रतिमीयते यथा तत् प्रतिकृतिराकृतिर्वा प्रतिमा, आकृति, मूर्तिः। (न अस्ति) नहीं है। (हिरण्यगर्भ इति एषः) 'हिरण्यगर्भ' आदि मन्त्रों द्वारा तथा (मा मा हिंसीत् इति एषा) 'मा मा हिंसीत्' इस मन्त्र से और (यस्मान्न जातः इति एषः) यस्मान्न जात इस मन्त्र से उसका वर्णन होता है।

हे मनुष्याः! यस्य भगवतो महद्यशो नामास्ति तस्य प्रतिमा नास्ति। यो कदाचिन्न जायते न म्रियते विक्रियते न क्षीयते तस्यैवोपासनां सततं कुरुत॥

मा मा हिँ सीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवँ सत्य धर्मा व्यानट्।
यश्चाश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
यजुः १२।१०२

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यां मुते मां कस्मै देवाय हविषां विधेम॥
यजुः २३।१

"यः प्राणतोऽनिमिषतो महित्वैक इद्रजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवायः हविषा विधेम॥"
२३।२५

"यस्मै मे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्ये माः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥"
यजुः २५।१२

ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त १२१, मन्त्र १-३-४, युजुः अ. २५, मंत्र १०,११,१२,१३

"य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विद्येम॥
यजुः २५।१३

"यस्मान्नजातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश, भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया संरराण स्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी।।"

यजु: अ. ८।३६।३२।५

अचिन्त्यरूपो भगवन्निरञ्जनो विश्वम्भरो ज्ञानमयश्चिदात्मा।
न चिन्तितोयेन हृदिस्थितं नो वृथार्गततस्यनरस्य जीवितम्।।

"तदेवाग्निस्तदा दित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् बह्म ता आपः स प्रजापतिः।।" यजुः ३२।१

"स बह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः।।"

"एतमेके वदन्त्यग्निं मनु मन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्।।"

"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।"

ऋक्. १।१६४।४६

इन्द्रं मित्र वरुण मग्निमाहुरथोदिव्यः म सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा ...... ।

"सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्च न मध्ये परिजग्रभत्।।" यजुः ३२।२

"मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्त मूर्तिना।
मत्स्थानि सर्व भूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।।" • गीता ९।४

"यो मामजमनादिं च वेत्ति लोक महेश्वरम्।।" गीता १०।३

"अव्यक्ता अतीन्द्रिया मूर्त्तिः स्वरूपं यस्य स अव्यक्त मूर्तिः तेन अव्यक्त मूर्तिना।।" करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः। अन्तवत्वमसर्वज्ञता वा। उत्पत्य सम्भवात्।

वेदान्त सूत्र २।२।४०-४१

अभय प्रार्थना

अभयं मित्रादभयममित्रात् अभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।

अथर्व. १९।१५।६

"यत इन्द्रभयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्विद्विषो विमृधो जहि।।"

ऋक्. ८।६१।१३

(इन्द्र) हे सर्वद्रष्टां प्रभो ! परमात्मन्। परमैश्वर्यवान् प्रभो ! (यतः) जिस-जिस हिंसक प्राणी से (भयामहे) हम लोग भय खाते हैं, डरते हैं। (ततः नः) उससे हम सब आपके भक्त जनों को (अभयं कृधि) भय रहित कीजिए, क्योंकि (महघवन्) हे

सकलैश्वर्यं सम्पन्न देव। आप (शग्धि) समर्थ हैं, सामर्थ्यवान् हैं, (तत्) उस हेतु से (तव ऊतिभिः) आप अपनी रक्षाओं में (न द्विषः) हमारे आन्तरिक और बाह्य द्वेषकारी शत्रुओं को (विजहि) विनष्ट कीजिये और (मृधः) मनुष्यों को धोखा देने वाले कपटी वञ्चक पुरुषों को, (विजहि) विनष्ट कीजिये।

भावार्थ—मनुष्य जाति कुसंस्कारों और विविध पापों से युक्त होने के कारण सदैव भयभीत रहती है। काम, क्रोध, लोभ-मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि यह हमारे आन्तरिक शत्रु हैं। हम इनसे बचें और बाह्य शत्रुओं से भी हम बचते रहें तभी हमारा कल्याण हो सकता है।

"यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शनः कुरु प्रजाभ्यो अभयं नः पशुभ्यः॥" यजुः ३६

"इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्।
जेता शत्रून् विचर्षणिः॥" ऋक्. २।४१।१२

दुष्ट मनुष्यों का स्वभाव

अकरुणत्वमकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृति सिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्॥
नीतिश.

परद्रोही परदाररत पर धन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय देह धरे मनुजाद॥ दोहावली

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।
त्वामभि प्रणो नुमो जेतारमपराजितम्॥ ऋक् १।१२।२

(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् प्रभो। (शवसः पते) शक्ति के स्वामी जगदीश्वर। (ते सख्ये) आपकी मित्रता में हम (वाजिनः) बलवान् होने के कारण किसी से भी (माभेम) नहीं डरते (जेतार) विजयी और (अपराजितं) किसी से पराजित न होने के कारण (त्वां) तुझको, आपको ही (अभि प्रणोनुमः) सब ओर से, सब प्रकार से मन, वचन, कर्म से, श्रद्धा भक्ति से नमन करते हैं।

भावार्थ—प्रभु के भक्तों में ऐसा विलक्षण बल हो जाता है कि वे कभी किसी अवस्था में किसी से भी नहीं डरते हैं। क्योंकि जिसका रक्षक प्रभु हो उसको डराने मारने वाला कौन हो सकता है ? वे सदा निर्भय रहते हैं और भय, संकटों में सदा ही उनकी विजय होती है। अभयं मित्रादभयं.......।

"जरामृत्यू हि भूतानां खादितारौ वृकाविव।
बलिनां दुर्बलानाञ्च ह्रस्वानां महतामपि॥"
महाभारत, शान्ति. अ. ३८

"जरामरण मोहसाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।" गीता ८।२९

जरा बुढ़ापा, जृवयोहानौ धातु से बना। मरण मृत्यु। म्रियन्ते पुनः पुनः प्राणिनो यस्मात् समृत्युः।

शरीर प्राणात्म वियोगः।
"यथा सूर्यश्चन्द्रश्च न विभीतो मरिष्यतः।
एवा में प्राण मा विभेः॥"

सबका अद्भुत राजा है

जो सबकी सुनता है सर्वत्र श्रवण करने वाले कानों से युक्त निश्चय से मेरी स्तुति को श्रवण करता है। मच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्॥

"विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम्।
अग्निमीडे स उ श्रवत्॥" ऋग्वेद ८।४३।२४

(विशां) प्रजाओं का। सब लोगों का। (अद्भुतं) अद्भुत, विलक्षण, आश्चर्य युक्त (राजानं) राजा। शासन करने वाला। "राजृ दीप्तौ" (धर्मणां) धर्म कार्यों का, धार्मिक कर्त्तव्यों का (अध्यक्षं) अध्यक्ष। अधिष्ठाता। (इमं अग्निं) इस प्रकाश स्वरूप परमात्मा। तेजस्वी देव की (ईडे) मैं स्तुति प्रार्थना करता हूँ। ईड स्तुतौ। (स उ) वही प्रसिद्ध देव निश्चय से (श्रवत्) हमारी प्रार्थना को स्तुति को सुनता है।

"आश्रुत् कर्णश्रुधीहवम्।" ऋक् १।१०।९

भावार्थ—परम देव परमेश्वर ही सबका एक अद्भुत राजा है और वही सब श्रेष्ठ धर्म कार्यों का अधिष्ठाता अध्यक्ष है। सबके हृदय में ज्ञान रूप प्रकाश का देने वाला वही है। वह सबकी प्रार्थनाएँ (पुकार) सुनता है। इसीलिए उसी एक परमात्म देव की हम सबको उपासना करनी चाहिए।

"अपने पूर्ण पुरुषार्थ—सामर्थ्य के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिए परमेश्वर अथवा किसी सामर्थ्यवान् व्यक्ति से सहायता लेने का नाम प्रार्थना है।" स्वामी दयानन्द आर्योद्देश्यरत्नमा **"चतुर्विद्या भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोर्जुन।"**

गीता ७।१६

धर्माचरण की प्रार्थना

दुर्गुण दूर करने की प्रार्थना। दुः उपसर्ग पूर्वक इणगतौ धातु से क्त प्रत्यय दु + इण् + क्त = दुरित। नारायण ऋषिः। सविता देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।

"विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव॥"

यजुः ३०।३; ऋक्. ५।८२।५

अन्वयः—हे देव ! सवितः त्वं अस्मद् विश्वानि दुरितानि परासुव, यद् भद्रं तत् नः आ सुव।(हे देव) दिव्य गुण कर्म स्वभाव। दिव्य स्वरूप (देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा द्योतनाद्वा। निरुक्त) सब सुखों के दाता परमेश्वर। (सवितः) सकल जगदुत्पादक जगदीश्वर, षङ् प्राणि प्रसवे षुञ् अभिषवे इन धातुओं से सविता शब्द बना। यश्चराचरं जगत् सुनोत्युत्पादयति स सवितः परमेश्वरः। उत्तम गुणकर्मस्वभावेषु षू प्रेरणे धातु से प्रेरक परमेश्वर। आप हमारे कृपा करके (विश्वानि) समग्राणि। सकलानि। सम्पूर्ण। समग्र। सब (दुरितानि) दुः इतानि अर्थात् दुर्गति प्रापकाणि कर्माणि दुष्टाचरणानि दुःखानि वा। दुर्गुण दुर्व्यसनों और दुःखों को दुः + इत्। इण् गतौ धातु + क्त प्रत्यय। (परासुव) परा + सुव। परा दुरार्थे सुव गमय, दूर कर दीजिये। (यत् भद्रं) यत् जो भद्रं वन्दनीयं, कल्याण करं धर्म्याचरणम्। जो कल्याण कारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं। श्रेष्ठ धर्मयुक्त आचरण वा सुख हैं। "भद्रि कल्याणो सुखे च।"

"इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा हते पात्रादिवोदकम्॥" मनुः २।९९
"इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥" मनुः २।९३

(तत् नः) वह उसको हमारे लिए। हम सब आपके भक्तों के लिए (आ सुव) आ समन्तात् सुव जनय प्रापय। अच्छे प्रकार से उत्पन्न कीजिये अथवा प्राप्त कराइये।

"दुख दुर्गुण नाशन हारे हो प्रतिपाल करो ..... ।"

भावार्थ—भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है—हे सब जगत् के उत्पादक प्रभो ! हे सकल संसार के परमपिता परमेश्वर ! हे देव ! आप मेरे सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसनों और दुःखों को दूर कर दीजिये और श्रेष्ठ सद्गुणों को धारण कराइये।

"दुआ मैं क्या करूँ तुझसे दुआ से शर्म आती है।
कभी मैंने कहा तेरा किया हो तो कहूँ तुझसे॥"
"कामं क्रोधं मदं मोहं मात्सर्यं लोभ मेव च।
अमून् षडवैरिणो जित्वा सर्वत्र विजयी भवेत्॥" बुद्धोपदेश
"मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियोमदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च काम जो दशको गणः॥"
"पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्योऽसूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोष्टक॥ मनुः ७।४८
"न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृत ज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥" गीता ७।१५

साधु और डाकू की कथा। ३ पत्थर लेकर पहाड़ पर चढ़ो।

"अकरणत्वमकारणविग्रहः परधने पर योषिति च स्पृहा।
सुजन बन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृति सिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्।।"

"परद्रोही परदार रत परधन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय देह धरे मनुजाद।।" दोहावली

कालिदास और महाराज भोज का सम्वाद—

भिक्षो। मांस निषेवणं प्रकुरुषे। किं तेनमद्यं विना?

मद्यं चापि तव प्रियः। प्रिय महो वाराङ्गनाभिः सह। वेश्याण्यर्थ रुचिः कुतस्तव धनं। द्यूतेन चौर्येण वा द्यूतचौर्य युतोऽपि भवतो। नष्टस्य कान्या गतिः।

जिसके पात्र में मांस जैसा दूषित पदार्थ पड़ा हुआ हो। उसके पात्र में कोई ख़ीर कैसे डाल सकता है ? यदि हमारे मन रूपी पात्र में दुरित दुर्गुण, दोष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, मत्सरता आदि बुराइयाँ भरी हुई हों तो उसमें भलाइयाँ आ नहीं सकती।

अग्निर्वः पातु दुरितादवद्यात्। यजुः ४।१४

"Blessed are the pure in heart for they shall see God." बाईविल

जिनके हृदय शुद्ध और पवित्र हैं। वे सौभाग्यशाली हैं क्योंकि वे ही ईश्वर के दर्शन कर सकते हैं। "अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।।"

राम-सदन

काम क्रोध मद मानन मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।
जिनके कपट दम्भ नहिं माया। तिन्ह के हृदय वसहु रघुराया।।
सबके प्रिय सबके हितकारी। दुःख सुख सरिस प्रशंसा गारी।।
कहहिं सत्य प्रिय वचन विचारी। जागत् सोवत सरन तुम्हारी।।
तुम्हँहि छाँड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माँही।।
जननी सम जानहि परनारी। धन पराय विष ते विष भारी।।
जे हरषहिं पर सम्पत्ति देखी। दुःखित होहिं पर विपति विसेखी।।
जिन्हहिं राम तुम प्रान पियारे। तिनके मन शुभ सदन तुम्हारे।।
स्वामि सखा पितुमातु गुरु। जिनके सब तुम तात।।
मन मन्दिर तिन्हके बसहु। सीय सहित दोउ भ्रात।।
रामचरित मानस से

काम क्रोध अरु लोभमद, मिथ्या छल अभिमान।
इनसे मन को रोकिवो, साँचो व्रत पहिचान।।

हे सर्व व्यापक प्रभु। हमारे पाप नष्ट हों।

"त्वंहि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि।
अप नः शोशुचदधम् ।।" ऋग्वेद १।९७।६

(विश्वतोमुख) हे प्रकाशमय देव ! हे विश्वतोमुख देव विश्वतः सर्वासु दिक्षु मुखानि यस्य सः, हे सर्वद्रष्टा प्रभो आप सर्वत्र मुख वाले हैं। अर्थात् आपका मुख चारों दिशाओं में और ऊपर नीचे सर्वत्र है। आप सब ओर से सबको देख रहे हैं। यस्य सः (हि त्वं) निश्चय से आप। सर्वोपदेशक सर्वस्मिन् जगति चक्षुर्दर्शनं (निश्वतः) सर्वथा, सर्वप्रकार से, सर्वत्र सर्वस्मिन् जगति। (परिभूः असि) सर्व व्यापक हैं। अतः समस्त उपद्रवों से हमारी रक्षा कीजिये। हम आपकी शरण में सब प्रकार से उपस्थित होते हैं। (नः अयम्) हमारे पाप, दोष, दुर्गुण, बुराइयाँ, बुरे व्यवहार, दुष्टाचरण, अन्याय, अत्याचार, काम-क्रोध-लोभ-मोहादि दुर्गुण हमसे (अपशोशुचत्) दूर हों, नष्ट हों, विनष्ट हो जावें।

भावार्थ—परमेश्वर की सर्वव्यापकता का ध्यान करके पापों से बचने, दुर्गुणों को त्यागने का प्रयत्न सबको सदैव करते रहना चाहिए।

"न मां दुष्कृतिनो मूढा, प्रपद्यन्ते नराधमाः।
मापयाऽपहृतज्ञाना आसुरं भाव माश्रिताः ।। गीता।

पाप = दाति रक्षति आत्मानं यस्मात्। जिससे प्राणी अपने को बचाना चाहता है।

पुण्य = पुनाति येन कर्मणा तत्पुण्यम्। जिन कर्मों से आत्मा शरीर, मन पवित्र बनता है।

"पुण्यस्य फलमिच्छन्ति, पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।
न पाप फल मिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः ।।"
पुणयस्य फलं सुखम्। पापस्य फलं दुःखम्।
"विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतोवाहुरुत्।
विश्वतस्पात् ।।" यजुः १७।१९

द्वेष से छुड़ाइये (द्वेषी शत्रु बैरी)

विश्वतः सर्वासु दिक्षु मुखानि यस्य सः।
"द्विषो नो विश्वतो मुखानि नावेव पारय। अप नः शोशुचदघम् ।।"
ऋग्वेद १।९७।७

(विश्वतो मुख) हे विश्वतो मुख देव ! सर्वद्रष्टा प्रभु ! हे सब ओर मुख वाले परमेश्वर ! सर्वोदेशक। हे सर्व शुभाशुभकर्म निरीक्षक नाथ ! (नावा इव) नाव की तरह जैसे नौका द्वारा लोग नदी पार होते हैं उसी तरह। (नः) हमको, आपके भक्तों को, (अति द्विषः) अतिशय द्वेषी, अतिबैरी, काम, क्रोध, लोभ मोहादि द्वेष्टन् शत्रून् आन्तरिक बैरी और बाह्य शत्रुओं से हमें अद्य = अधिगत्याक्षेपे।(पारय) पार

कर दीजिए। दूर कर दीजिए। पार लगा दीजिए। (नः अघं) हमारे पाप, दुःख, दुर्गुण, रागद्वेषादिक (अप शोशुचत्) नष्ट हों। हमसे दूर हों। दूर धुल जावें।

"के शत्रवः सन्ति ? निजेन्द्रियाणि, तान्येव मित्राणिजितानि यानि।।"

"कामं क्रोधं मदं मोहं मात्सर्य लोभमेव च।
अमून् षड्वैरिणोजित्वा सर्वत्र विजयी भवेत्।।" बुद्धोपदेश

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभः तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।। गीता १६।२०

"उलूकयातुं शुश्लूकयातुं जहिश्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातु मुत गृध्र यातुं हशदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र।।" ऋग्वेद

काम = भोग्य पदार्थेषु यो भोगेच्छा वेगः स कामः। क्रोध = मनः प्रक्षोपभको यो द्वेष परिपाकः सः क्रोधः। लोभ = लुभ् विमोहने धातु से लोभ। हमारे पाप ही हमें ले डूबते हैं।

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।"

द्वेषियों से बचना

स नः सिन्धुमिव नावयति पर्षा स्वस्तये।
अप नः शोशुचदघम्।।"

ऋग्वेद १।९७।८, अथर्व. ४।३३।८

(सः) वह सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर आप, (नावया) नौका द्वारा (अथर्व. में नावति पद है)। (सिन्धुं इव) जिस प्रकार नदी को पार करते हैं तदत्। (नः स्वस्तये) हमारे कल्याण करने वाले हैं इसलिए (अतिपर्ष) हमको शत्रुओं से बचाइये और (नः अघं) हमारे पाप राग-द्वेष, क्रोध लोभादि को (अप शोशुचत्) नष्ट कीजिए। दूर हों, धुल जावे शुच् शौचे धातु से (पर्ष) पार लगा अति अतीत्य लाँघकर।

भावार्थ—नदी को मनुष्य जिस प्रकार नाव द्वारा पार कर जाते हैं उसी प्रकार राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ आदि अन्तःशत्रुओं से बचने के लिए हमको सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए क्योंकि वही इस घोर संसार सागर से पार करने वाला है।

"अपनः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्यारयिम्।
अप न शोशुचदघम्।। अथर्व. ४।३३।१

आशुशुग्धि = अच्छे प्रकार पवित्र करो।

"तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशित चेतसाम्।।" गीता १२।७

"अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय वलादिव नियोजितः।।" गीता ३।३६

"काम एष क्रोध एष रजो गुण समुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह बैरिणम् ।।" गीता ३ ।३७
"इन्द्रियस्येन्द्रियार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ।।" गीता ३ ।३४

प्रभु भक्ति का फल क्या ?

"सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यज्ञामहे। अप नः शोशुचदघम्
ऋग्वेद १ ।९७ ।२

(सुक्षेत्रिया) शोभनाय क्षेत्राय हे परमात्मन्! सुशोभनीय क्षेत्र अर्थात् अच्छे शरीर के लिए। उत्तम खेत के लिए (सुगातुथा) सुशोभनीय गति अर्थात् सद्गति प्राप्ति के लिए असतो मा सद् गमय। (वसूया च) और सुशोभनीय धन अर्थात् सुखकारी धन प्राप्ति के लिए अथवा ज्ञान प्राप्ति के लिए। (यजामहे) यहाँ (पूजयाम:) हम लोग आपका यजन पूजन करते हैं। (नः अघं) हमारे पाप, दुर्गुण, दोष, बुराइयाँ। (अप शोशुचंत) नष्ट हों। हमसे दूर हों। धुल जावें। शुचिर् श्तीभावे। शुच् शौचे धातु से।

भाव—प्रभु भक्ति करने से अच्छा शरीर मरण के पश्चात् सद्गति तथा इहलोक और परजन्म में सुखकारी धन, ज्ञान प्राप्त होता है एवं सर्व प्रकार के पाप विनष्ट हो जाते हैं।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्र मित्यभि धीयते।
एतद्यो वेत्ति वं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ।। गीता १३ ।१
"तुलसी काया खेत है। मनसा भये किसान।।
पाप पुण्य दोऊ बीज है। बुवै सो लुने निदान।।"
"इदं शरीरं परमार्थ साधनं। धर्मैक हेतुं बहुपुण्य लब्धम्।।
लब्धापि यो नो विदधीत भक्ति। वृथागतं तस्य नरस्य जीवितम्।।"
"बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सद् ग्रन्थन गावा।।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाय न जेहि परलोक संवारा।।"
"सो परम दुःख पावहिं सिर। धुनि धुनि पछिताय।।
कालहिं कर्महि ईश्वरहिं। मिथ्या दोष लगाय।।"

मानस शिव संकल्प।

शिवसंकल्प ऋषिः। मनो देवता।
यज्जाग्रतो दूरमुदैतिदैवं तदुसुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।
यजुर्वेद अ. ३४ ।१

(यत्) जो मेरा मन।(मन ज्ञाने धातु से मन शब्द बना)। (जाग्रत:) जाग्रत अवस्था में जागते समय प्राणी का। (दूरं उत् आ एति) उदेति उद्गच्छति। दूर दूर भागता है। जाता है (ऊतत्) और वही मन विषयों का ग्रहण करता है। (सुप्तस्य) शयानस्य। सुप्त अवस्था में भी, सोते हुए का, (तथा एव एति) उसी प्रकार जाता है। तेनैव प्रकारेण गच्छति। (दूरं गमं) दूर दूर जाने वाला, दूर दूर गमन करने वाला। (ज्योतिषां ज्योति:) शब्दादि विषय प्रकाशकानामिन्द्रियाणां ज्योति: प्रकाशकम्। शब्दादि विषय प्रकाश करने वाली इन्द्रियों का प्रकाशक, प्रधान इन्द्रिय। (एकं) एकमात्र। केवल एक (दैवं) देवस्य जीवात्मन: साधनं। जीवात्मा का साधन। दिव्य शक्ति से युक्त। दिव्य गुणों वाला, दिव्य गुणों का प्रकाशक (मे मन:) मेरा मन। संकल्प निकल्पात्मकम्। संकल्प विकल्प करने वाला मेरा मन। मननशीलं ज्ञान साधनं। (शिव संकल्पं) शिव: कल्याणकारी संकल्प इच्छा यस्य तत्। शुभ संकल्प से युक्त। धर्म मार्ग पर चलने वाला। (अस्तु) भवतु। होवे।

मनो नाम संकल्प विकल्पात्मिकान्त: करणवृत्ति:। "मन ज्ञाने"

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्। न्याय दर्शन १।१।१६

आत्मेन्द्रियार्थ सन्निकर्षे ज्ञानस्यभावोऽमावश्च मनसो लिङ्गम्।

लक्षणं मनसो ज्ञानस्याभावोभाव एव च। एति ह्यात्मेन्द्रियार्थांना वैशेषिक.

भोग्य पदार्थे या भोगेच्छा वेग: स काम:। मन प्रक्षोभको यो द्वेष पारेपाक: स: क्रोध:। क्रुधि हिंसायाम् धातु से क्रोध लुभ् विमोहने धातु से लोभ शब्द बना।

सन्निकर्षात् वर्तते—चरक संहिता सू. स्था. अ. १

"मन: पुर: सराणि च इन्द्रियाण्यर्थ ग्रहण समर्थानि भवन्ति।"

चरक.

"इन्द्रियेणेन्द्रियार्थो हि समनस्केन गृह्यते।" चरक.

"अणुत्वमथचैकत्वं द्वौ गुणौ मनस: स्मृतौ।"चरक शा. स्थ.

"मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च।
अशुद्धं काम संयुक्तं शुद्धकाम विवर्जितम्।।" गीता १०।२२

"इन्द्रियाणां मनश्चास्मि"

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।।"

"ध्यायतो विषयान् पुंस: सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते काम: कामात् क्रोधोऽभिजायते।।" गीता २।६२

क्रोधाद् भवति संमोह: संमोहात् स्मृति विभ्रम:।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।। गीता २।६३

"चंचलं हि मन: कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।" गीता ६।३४

"असंशयं महाबाहो मनो दुर्विग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।" गीता ६।३४-३५
बुद्धिर्नाम निश्चयात्मिकान्तः करण वृत्तिः। बुध अवगमने।
"अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः"। योग सूत्र समाधिपाद १२
"ध्यान धारणाभ्यास वैराग्यार्दिभिस्तन्निरोधः।" साँख्य
"तत्र स्थितौ यत्नोभ्यासः।
दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्।।"
योगदर्शन समाधिपाद सूत्र १३
"पुनर्नः पित्तरो मनो ददातु दैव्यो मनः। जीवं व्रातं सचेमहि।
यजुः ३।५५
"येन कर्माण्यसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।"
यजुः ३४।२

(येन) जिस मन से। येन मनसा। (अपसः) अपः कर्म तद्वन्तः सदा कर्म निष्ठाः पुरुषार्थी। (धीराः) ध्यानवन्तो मेधाविनः। ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग। (मनीषिणः) मनस ईषिणो दमन कर्त्तारः। मन का दमन करने वाले। (यज्ञे) अग्निहोत्रादौ, धर्मेण संगत व्यवहारे। यज्ञादि सत्कर्मों में। (विदथेषु) विज्ञान युद्धादि व्यवहारेष। (कर्माणि) कर्त्तुरीप्सिततमानि क्रियमाणानि। उत्तम कर्मों को। (कृण्वन्ति) कुर्वन्ति। अत्यन्त इष्ट कर्मों को करते हैं। (यत् अपूर्व) अनुत्तम गुणकर्म स्वभावम्। जो मन सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव। (यक्षम्) (पूजनीयम्) पूजनीय (प्रजानां अन्तः) प्राणिमात्र के अन्तः करण हृदय में स्थित है। (तत् में मनः) वह मेरा मन। मनन विचारात्मकम्। (शिवसंकल्पमस्तु) शुभ संकल्प वाला हो।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर की उपासना, सुन्दर विचार, विद्या और सत्संग से अपने अन्तःकरण को अधर्माचरण से निवृत्त कर सदा धर्माचरण में प्रवृत्त किया करें। 'संकल्प' शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक कलृप् सामर्थ्ये धातु से बना है। सम् का अर्थ है एक साथ या सम्यक् प्रकार से अच्छी तरह से और क्लृप का अर्थ है कल्पन अर्थात् समर्थ उपयोगी बनाना।

"परोऽपेहि ममस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षान् बनानि संचरगृहेषु गोषु में मनः।।"
अथर्व. ६।४५।१

शिव संकल्प ऋषिः। मनो देवता।
यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च य ज्जयोतिरमृत प्रजासु। यस्मान्न ऋते
किञ्चन कर्मं क्रियते तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।
यजुः ३४।२

(यत् प्रज्ञानम्) प्रजानाति येन तद् बुद्धि स्वरूपम्। जो मेरा मन ज्ञान का उत्पादक बुद्धि रूप। (उत् चेत:) अपि चेतति स्मरति येन तत्। तथा चिन्तन शक्ति (च धृति:) धैर्यरूपं चकारान्नज्जादोन्यपि कर्माणि येन क्रियन्ते। और धैर्य लज्जा आदि का साधक है। (प्रजासु) मनुष्यों के प्राणियों के अन्त: = भीतर (अन्त: अमृतम्) अभ्यन्तरे नाशरहितम्, अन्त:करण में आत्मा का साथी होने से नाश रहित। (ज्योति:) द्योतमानम्। प्रकाश रूप है। (यस्मात् ऋते) जिस मन के बिना। (किञ्चनकर्म) किञ्चिदपि कर्म। कोई भी कर्म, काम। (न क्रियते) नहीं किया जाता। (तत् ये मन:) मे जीवात्मनो मन:। वह मेरा मन। (शिव शंकल्पमस्तु) शुभ विचार करने वाला हो।

भावार्थ—हे मनुयो ! जो अन्त:करण मन बुद्धि, चित्त और अहंकार रूप वृत्ति वाला होने से चार प्रकार से भीतर प्रकाश करने वाला प्राणियों के सब कर्मों का साधक अविनाशी मन है, उसको न्याय और सत्याचरण में सदा प्रवृत्त किया करो।

"मन्वानो मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेतयंश्चित्तं भवति।
अहं कुर्वाणोऽहंकारो भवति।।"
कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीं
र्धीर्भीरित्येतत् सर्वं मन एव।। एतरेय.
"हष श्रुतानुभूतार्थानास्मरणात् स्मृतिरुच्यते।"
चित्त चेत: हृदयं हृन्मानसं मन:।। अमरकोश:।
"मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये।
मत्यैश्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम्।।"

अथर्व.....६।४१।१

शिव संकल्प ऋषि:। मनो देवता।

"येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येनयज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मन: शिव संकल्पमस्तु।।

यजु: ३४।४

(येन अमृतेन) मनसा येन नाशरहितेन आत्मनासह युक्तेन मनसा। जिस नाश रहित आत्मा के साथ युक्त होने वाले मन से (भूतम्) अतीतम्। व्यतीत हुआ। (भुवनम्) भवतीति भुवनम्। वर्तमान कालस्य सम्बन्धि। वर्तमान काल सम्बन्धी। (भविष्यत्) यदुत्पत्स्यमानम्। भावि। आगे होने वाला। (इदं सर्वम्) वस्तुजातं समग्रं। यह सब त्रिकालस्थ वस्तुमात्र। (परिगृहीतम्) परित: सर्वतो गृहीतं ज्ञातम्। सब ओर से जाना जाता है। ग्रहण किया जाता है। (येन) जिस मन के द्वारा (सप्त होता यज्ञ:) सात ऋत्विजों द्वारा होने वाला यज्ञ। (तायते) तन्यते विस्तीर्यते। पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ अहंकार और बुद्धि द्वारा जो यह जीवन यज्ञ चलाया जा रहा है। वह

मन के अधिष्ठातृत्व में ही चल रहा है। (तत् मे मनः) वह सब कार्यकारी इन्द्रियगणों का अधिष्ठातो मेरा मन (शुभ संकल्पमस्तु) सदैव शुभ विचार करने वाला होवे।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! भूत, भविष्य और वर्तमान, इन तीनों कालों में जो कुछ हुआ होगा और हो रहा है उस सबका जिस मन के द्वारा ग्रहण किया जाता है उस मन को सदा शुभ संकल्पमय बनाओ जो सुख और विद्यादि शुभ गुणों को प्राप्त होने के लिए अत्यन्त पुरुषार्थ करने की विशेष इच्छा है उसको संकल्प कहते हैं।

शिव संकल्प ऋषिः। मनो देवता।

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथना भाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥

यजुः ३४।५

(यस्मिन्) मनसि। जिस मन में। (ऋचः साम यजूंषि) ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद। (यस्मिन्) जिसमें (रथनामौ आरा इव) रथनामि में आरों के समान। यथा रथस्य रथ चक्रस्य मध्यमे काष्ठे सर्वे अवयवाः लग्ना भवन्ति तथा (प्रतिष्ठिता) प्रति स्थिता भवन्ति। सब ओर से स्थित होते हैं। (प्रजानां सर्वं चित्तम्) मनुष्याणां समग्रं। सर्व पदार्थ विषयि ज्ञानं मनुष्यों का सर्व प्रकार का ज्ञान। (यस्मिन् ओतं) सूत्रे मणिगणा इव प्रोत्तम्। जिसमें प्राणियों का समग्र पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान सूत में मणियों के समान् संयुक्त है। चिति संज्ञाने से चित्त। (तत् में मनः) वह ज्ञान सम्बन्धी मेरा मन सदा (शुभ संकल्पमस्तु) शुभ संकल्प वाला हो।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस मन में वेदादि शास्त्रों का ज्ञान तथा अन्य सब ज्ञान सूत में मणियों के समान स्थित भरा रहता है। वह सदा शुभ संकल्प वाला करो।

"चितिस्मृत्याम्"। चिति संज्ञाने इन धातुओं से चित्त शब्द बना जितं जगत् केन। मनो हि येन। तीर्थं परं किम् ? स्वमनो विशुद्धम् "मनसा एव इदं आप्तव्यम्"।

शंकराचार्य

"यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा। तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदाश्वा इव सारथेः।"

कठोपनिषद्

शिव संकल्प ऋषिः। मनो देवता।

सुषारथिरश्वानिवयन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीषु भिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥

यजुः ३४।६

(सुषारथिः) सु सारथिः। शोभनश्चासौ सारथिर्यान चालयिता। उत्तम सारथि, चतुर सारथि गाड़ीवान्। (अश्वानिव) अश्वान् इव जैसे घोड़ों को सुशिक्षित करके (अभीषुभिः) लगामों के द्वारा वश में करके (नेनीयते) इतस्ततो नयति गमयति। शीघ्र इधर-उधर अनेक मार्गों पर ले जाता है। तद्वत्, (वाजिन इव) वेग वाले घोड़ों को।

मनुष्यों के इन्द्रिय रूपी (यत् मनुष्यान्) घोड़ों को वश में करके चलाता है और (यत् हृत् प्रतिष्ठं) हृदि प्रतिष्ठा स्थितिर्यस्य तत्। जो मन हृदय में रहता हुआ। (आजिरं) जराद्यवस्थारहितम्। बृद्धादि अवस्था रहित और (जविष्ठं) अतिशयेन वेगवत्तरम्। अत्यन्त वेगवान् है। (तत् मे मनः) वह मेरा मन सदैव (शिव संकल्पमस्तु) शुभ संकल्प वाला हो।

अश्वः कस्मात्? अश्नुतेऽध्वानम्। महाशनोभवतीति वा। अश्नुते व्याप्नोति। अशूङ् व्याप्तौ धातु से। स हि बहु भुंक्ते। वाजी वेजनवान् चलनवान् इत्यर्थः।

भावार्थ—रथ का सारथि जिस प्रकार घोड़ों को चलाता है। उसी प्रकार यह मन इन्द्रियों को चलाता है। इसलिए इसका शुभ संकल्पमय होना आवश्यक है। मूर्खजन जिसके अनुकूल वर्तते हैं और विद्वान् अपने वश में करते हैं। जो शुद्ध हुआ सुखकारी और अशुद्ध हुआ दुःखकारी जो जीता हुआ सिद्धि को और न जीता हुआ असिद्धि को देता है। उसको मनुष्यों को अपने वश में रखना चाहिए।

"इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेत् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥ मनु: २।८८
"इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
संन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥" मनु: २।९३
"श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृता॥"
"एकादशं मनोज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्।
यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ॥" मनु: २।९०।९१
श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः॥
मनु: २।९८

आपदा कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥ महाभारत वनपर्व
"रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्दान्तैः सुखं याति रथीन धीरः॥"
महाभारत उद्योग पर्व अ. ३४
"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहु विषयाँस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रिय मनो युक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥" कठ. १।३।३-४
"रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः।"
यजु: २९।४३

"यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमास्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥" गीता ६।२६
"अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।" गीता ३।३६
"भोक्तर्भोगायतनं शरीरम् चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शररीम्। यच्छीर्यते तच्छरीरम्।"

इन्द्रियों की शान्ति

"इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः।" अथर्व १९।९।५

(इमानि यानि) दृश्यमानानि ये जो हमारे शरीर में निवास करने वाली (पञ्च इन्द्रियाणि) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और नासिका (घ्राण) (मनः षष्ठानि) जिसमें मन छठवाँ है। छठे मन सहित, मनः षष्ठं येषां (बह्मणा संशितानि) जो वेद ज्ञान से सतीक्ष्ण की गई है। (मे हृदि) मेरे हृदय में रहती हैं। (यैः एव) इन्द्रियैः। जिनसे ही। जिनके द्वारा ही अधर्म मार्ग पर चलने से। (घोर ससृजे) भयंकर पाप कार्य किये गये हैं। (तैः एव) इन्द्रियैरेव। उनसे ही अथवा उनके द्वारा ही। (नः शान्तिः अस्तु) हमें शान्ति प्राप्त होवे।

भावार्थ—मन और इन्द्रियाँ यदि अधर्माचरण में लग जाती हैं तो मनुष्य को घोर विपत्ति में डाल देती हैं। परन्तु यदि वे वश में रहें तो उन्नति की ओर ले जाती हैं। इसलिए उनको वश में रखकर उत्तम उद्योग द्वारा ही शान्ति स्थापित करनी चाहिए।

"ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च।
मनो बुद्धि रहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम्॥"
"बुद्धीन्द्रियाणि चक्षु श्रोत्र घ्राण रसनस्पर्शनकानि।
वाक् पाणिपाद पायूपस्यान कर्मेन्द्रियाण्याहुः॥"

सांख्य कारिका

बुध्यन्तेऽवगच्छन्ति इति बुद्धीन्द्रियाणि ज्ञानेन्द्रियाणीत्यर्थः। ज्ञान प्रधानमिन्द्रियं ज्ञानेन्द्रियम्। कर्मणां क्रियाणां साधन भूतमिन्द्रियं कर्मेन्द्रियम्। अन्तः अभ्यन्तरं करणमिन्द्रियं अन्तःकरणम्।

इन्द्रिय शब्द का अर्थ

इन्द्रियमिन्द्रर्लिगमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्ट मिन्द्र जुष्टमिन्द्रदत्त मितिवा।

अष्टाध्यायी सूत्र ५।२।९३

(इन्द्र लिङ्गम्) इन्द्रः प्राणः तस्य लिंगमितीन्द्रियम्। अथवा इन्द्रोऽन्तरात्मा तस्य लिंगमिति। (इन्द्रदृष्टम्) इन्द्रेणात्मना मम चक्षु मम श्रोत्रमित्यादि क्रमेण दृष्टम्। ज्ञातम्। (इन्द्र सृष्टम्) इन्द्रेण ईश्वरेण सृष्टं रचितम्। (इन्द्र जुष्टम्) इन्द्रेण जुष्टम्, जुष्

प्रीति सेवनयोः धातु से (इन्द्र दत्तम्) इन्द्रेण परमात्मना दत्तम्। (इन्द्रियम्) ज्ञानकर्म साधनम्।के शत्रवः सन्ति ? निजेन्द्रियाणि। तान्येत मित्राणि जितानि यानि।

शंकराचार्यः

इन्द्रियाभ्यमजय्याभ्यां द्वाभ्यामेव हतं जगत्।
अहो उपस्थ जिह्वाभ्यां ब्रह्मादि मशकावधिः ॥ मनुः।
"तीब्रे तपसि लीनानाभिन्द्रियाणां न विश्वसेत्।
विश्वामित्रोऽपि सोत्कण्ठः कण्ठे जग्राह मेनकाम्॥"
"इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा हते पात्रादिवोदकम्॥" मनुः २।९९
"इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेष क्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते॥" मनुः
"तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ गीता २।६१
"न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन दृश्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्॥" मनुः ४।१३४

मन की शान्ति

"परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परे हि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि संचर गृहेषु गोषु मे मनः॥"

अथर्व. ६।४५।१

"युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्।" न्याय मन ज्ञाने।
मनो नाम संकल्प विकल्पात्मिकान्तःकरवृत्तिः।
"इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः॥

अथर्व. १९।९।४

(वाम्) तुम दोनों स्त्री पुरुषों का। युवयोः स्त्रीपुरुषयोः। (यत् इदं) जो यह हमारे शरीर के अन्दर वर्तमान, (ब्रह्म संशितम्) ज्ञान से तीक्ष्ण बना हुआ। सम्यक् शितनिशितं तीक्ष्णीकृतम्। ब्रह्मणा वेद ज्ञानेन। वेद ज्ञान से तीक्ष्ण किया गया। (परमेष्ठिनं) परमात्मा से सम्बन्ध रखने वाला। (मनः) अन्तःकरणं मन है, जिससे अथवा जिसके अधर्माचरण से (येन एव) जिससे अथवा जिसके द्वारा ही, जिस मन के द्वारा। (घोरं ससृजे) भयंकरं कर्मं पापं उत्पन्नं घोर अर्थात् भयंकर कर किये जाते हैं (तेन एव) मनसा एव। उसी से ही अथवा उसी के द्वारा, (नः शान्तिः अस्तु) हमें

शान्ति प्राप्त हो। हमारे लिए शान्ति होवे। (परमेष्ठिनम्) सर्वोत्कृष्ट परमात्मा में ठहरने वाला। परं ष्ठागतिनिवृत्तौ।

भावार्थ—हमारे अन्दर जो मन है वह आत्मा की शक्ति से कार्य करता है। इस मन के दुरुपयोग से बड़े २ भयानक दुष्परिणाम होते हैं। यदि इसको वश में रखा जाय और धर्म कार्यों में लगाया जाय तो मानव की उन्नति होती है। उसको अन्त में सच्ची शान्ति प्राप्त होती है।

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयंस्मृतम्।"
"चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहंनिग्रहं-मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥" गीता ६।३४
"असंशयं महावाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥" गीता ६।३५

वाणी की शान्ति

वाणी रसवती यस्य भार्या पुत्रवती सती।
लक्ष्मीर्दानवती यस्य सफलं तस्य जीवितम्।
यद् वदामि मधुमत्तद् वदामि। जिह्वा मे मधुरमत्तमा।

परं + ष्ठा गति निवृत्तौ—इनि कित् ङीप्। ब्रह्मणा वेद ज्ञानेन सं सम्यक् सिता तीक्ष्णी कृता। मिस्टर जिन्ना ने वाणी के दुरुपयोग से लाखों का खून कराया।

"इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता।
यथैव ससृजेघोरं तयैव शान्तिरस्तु नः। अथर्व. १९।९।३

(या इयम्) जो यह हमारे अन्दर। इयं दृश्यमाना। (ब्रह्म संशिता) ज्ञान से तीक्ष्ण बनी हुई, वेद ज्ञान से तीक्ष्ण की गई है। (परमेष्ठिनी वाग्देवी) परमात्मा में सम्बन्ध रखने वाली सर्वोत्कृष्ट परमात्मा में ठहरने वाली, वाक् देवी = वाणी है। उत्तम गुण वाली (यया एव) जिससे अथवा जिसके द्वारा ही कटु भाषण से। (घोरं ससृजे) भयंकर प्रसंग उत्पन्न होता है। सृष्टम् = उत्पन्नं (तया एव) उसी से अथवा उसी के द्वारा ही। (नः शान्तिः अस्तु) हमें शान्ति प्राप्त होवे। नः अस्मभ्यम्।

"वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते। क्षीयन्ते......"

भावार्थ—हमारे अन्दर जो वाणी = वाक् शक्ति है, उसके दुरुपयोग से अनन्त झगड़े बखेड़े उत्पन्न हो जाते हैं। उसके सदुपयोग से अनन्त उपकार तथा शान्ति प्राप्त होती है। इसलिए हमें सदैव इसको संयत करना चाहिए और वेदादि सच्छास्त्रों के पठन-पाठन आदि धर्म कार्यों में लगाना चाहिए।

"वाङ्म आस्येऽस्तु"—मे आस्ये मेरे मुख में सौ वर्ष पर्यन्त अर्थात् जीवन पर्यन्त वाक् उत्तम वक्तृत्व शक्ति अस्तु = होवे। "वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु", स्वदतु = स्वादयतु।

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥" मनुः
"वाक् चैव मधुराश्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता। मनुः २।१५।९
परं + ष्ठा गति निवृत्तौ इनि कित् ङीप्। ब्रह्मणा वेद ज्ञानेन ....।"
"वाचं यच्छ मनो यच्छ यच्छ प्राणेन्द्रियाणि च।
आत्मानं आत्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वनः॥"
"अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रिय हितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥" गीता १७।१५

"मीठी वाणी बोलिये अपना आपा खोय। औरहूँ को शीतल करे आपहुँ शीतल होय।"

॥ हृदय की शान्ति॥

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्।
शान्ता उदन्वती रापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः॥
शान्तानि पूर्व रूपाणि शान्तमेतत् कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः॥
अथर्व १९।९।१-२

"असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः।
समुद्रो अस्मि विधर्मणा॥" अथर्व. १६।३।६

(मे हृदयम्) मेरा हृदय मन "हृदयं चेतना स्थान मुक्तं सुश्रुत देहिनाम्" हे जगदीश्वर। आपकी कृपा से मेरा मन (असंतापं) सन्तापरहित (राग द्वेष रहित) होवे। (गो + यूतिः) इन्द्रियों की गति, सामर्थ्य शक्ति। (उर्वी) बड़ी हो। महान् हो। (विधर्मणा) इन्द्रियों के विविध धर्म नियमों का पालन करने के कारण मैं (सम् उद्रः अस्मि) सम्यक् रीति से उत्कर्ष के लिए गति उत्पन्न करने वाला बनूँ। अथवा समुद्र के समान गम्भीर बनूँ। समुद्रः कस्मात्। समुद्रवन्त्यस्मादापः। समभिद्रवन् त्येन मापः।

सम्मोदन्तेऽस्मिन् भूतानि। समुदको भवति। समुनत्तीति वा, उन्दी क्लेदने धातु से। (निरुक्त)

"यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य वनसो वाति तृष्णं बृहस्पतिर्मेतद्दधातु।
शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः।" यजुः ३६।२
"कुरङ्गमातङ्ग पतङ्ग भृङ्ग मीनाः हताः पञ्चभिरेव पञ्च।

एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥"

"अलिपतंग मृगमीनगज जरत एक ही आँच।
तुलसी वे कैसे जियें जिन तन लागी पाँच॥"

"हृदय पुण्डरीकेण सहशं स्यादधोमुखम्।
जाग्रतस्तद् विकसति स्वपतस्तु निमीलति॥"

"राग द्वेष वियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।" गीता २।६४

"एतस्मात् जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायु ज्योंतिरायः पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥"

मुण्डक. २।१।३

स्थिर प्राण और अपान। प्राण प्रदाता संकटत्राता,

"प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवं यत् प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व-श्रीश्च प्रज्ञ विधेहि नः।" प्रश्नो. २।१।३

"मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परागात्।"

अथर्व. १६।४।३

हे प्रभु ! प्राण प्रदाता (प्राणः) प्राण् प्राणवायु। जीवन का हेतु, (माम्) मुझे, आपके भक्त को, (मा हासीत्) न छोड़े अर्थात् असमय में न त्यागे और (अपानः उ) अपान वायु भी मुझे (उच्छास) (मा परागात्) दूर न जाये अर्थात् छोड़कर न जावे।

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! आप मुझे ऐसी सामर्थ्य दीजिये जिससे मेरे अन्दर पूर्ण आयु सौ वर्ष पर्यन्त प्राण अपान आदि बलवान होकर कार्य करते रहें।

"आयुर्मे पाहिं प्राणं मे पाहि अपानं मे पाहि ब्यानं मे पाहि।
चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचम्मेपिन्व मनो मे जिन्वात्मानम्मे-पाहि ज्योतिर्मेयच्छ॥" यजुः १४।१७

"न वैतं चहुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद-यस्याः पुरुष उच्यते॥" अथर्व. १०।२

प्र उपसर्ग पूर्वक अण् प्राणने—धातु से प्राण शब्द बना।

स पञ्चधा—प्राण अपान समान उदान व्यान भेदात्।

"प्राणिनां सर्वतो वायुः चेष्टां वर्धयते पृथक्।
प्राणनाच्चैव भूतानां प्राण इत्यभिधीयते॥"

प्राणनं जीवनं करोतीति प्राणः। प्राणेन जातानि जीवन्ति।

"प्राण देवा अनुप्राणन्ति मनुष्याः पशवश्चये॥"

तैत्तिरीयोः २।३

"उत्पत्तिर्मायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा।
अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते॥" प्रश्नोपनिषद् प्रश्न ३

इन्द्रियों में स्थिरता

कार्येन्द्रियं सिद्धिरशुद्धि यथात्तपसः योग

"वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णो श्रोत्रं कर्णयोः। अपालिता, केशां अशोणादन्ताः बहु बाह्वोर्बलम्॥"

ऊर्वोरोजो, जंघयोर्जवः, पादयो प्रतिष्ठा। अरिष्टानि मे सर्वात्मा निमृष्ट तनूस्तन्वा मे सहेदतः सर्वमायुरशीय। स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे॥ अथर्व. काण्ड १९, सूक्त ६०-६१-६२

"वाङ्म आस्येऽस्तु, नसोर्मेप्राणोऽस्तु अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु कर्णयोर्मे-श्रोत्रमस्तु, बाह्वो में बलमस्तु, ऊर्वो में ओजोऽस्तु, अरिष्टानिमेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु॥" पारस्कर गृह्यसूत्र १।३।२५

(मे) मेरे (आसन्) मुख में पूर्ण आयु, सौ वर्ष की समाप्ति तक। (वाक्) उत्तम वक्तृत्व शक्ति रहे। (नसोः प्राणः) दोनों नासिका में प्राण-शक्ति संचार करती रहे। (अक्ष्णोः चक्षुः) दोनों नेत्रों में दृष्टि उत्तम प्रकार से बनी रहे। (कर्णयोः श्रोत्रं) दोनों कानों में श्रवण शक्ति रहे। (अपालिताः केशाः) मेरे बाल सफेद न हों। (अशोणाः दन्ताः) मेरे दाँत मलिन न हों। (बाह्वोः बहुबलम्) दोनों भुजाओं में बहुत बल रहे। (ऊर्वो ओजः) दोनों जाघों में शक्ति बनी रहे। (जंघयो जवः) जाँघों, पैरों में वेग रहे। (पादयोः प्रतिष्ठा) दोनों पैरों में स्थिरता, दृढ़ता बनी रहे। (मे सर्वांग) मेरे सम्पूर्ण अवयव (अरिष्टामि) रोग से रहित और (आत्मा निमृष्टः) आत्मा, मन उत्साह से पूर्ण रहे। (मे तनुः) मेरे शरीर के सब अवयव (तन्वा) उत्तम अवस्था में रहे। (दतः सहे) दबाने वाले शत्रु को दमन करने की शक्ति मेरे अन्दर रहे। मैं (सर्व आयुः) पूर्ण दीर्घायु सौ वर्ष अथवा उससे भी अधिक (अशीय) प्राप्त करूँ। पूर्ण आयु की समाप्ति तक मेरे सब अययव हृष्ट पुष्ट रहें। (मे स्योनं) मुझे सुख (सीद) प्राप्त होवे। (पुरुः पृणस्व) बहुत पूर्वत्व प्राप्त हो। मैं (पवमानः) पवित्र होकर (स्वर्गे) स्वर्ग में अर्थात् उत्तम लोक की प्राप्ति करूँ।

मैं सबका प्यारा बनूँ

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु, प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये। अथर्व काण्ड १९ सू. ६३

(मा देवेषु प्रियं कृणु) हे प्रभो ! मुझे ब्राह्मणों का प्यारा बनाओ। (राजसु मा प्रियं कृणु) क्षत्रिय समुदाय में मैं प्रिय बनूँ। (उत अर्ये उत शूद्रे)

वणिग्वर्ग में और शूद्र समाज में मैं प्रियता प्राप्त करूँ। इतना ही नहीं अपितु (सर्वस्य पश्यतः प्रियं) सब देखने वाले प्राणिमात्र का मुझे प्रिय कीजिए। प्राणी अपने आचरण और वाणी से सबका प्यारा बनता है।

"वाकचैव मधुराश्लक्ष्णाप्रयोज्या धर्म मिच्छता।" मनुः

"हते ह ह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषासमीक्षामहे॥" यजु : ३६।१८

"अदृेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःख सुखः क्षमी॥" गीता १२।१३

"आत्मौपभ्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥ गीता ६।३२

मीठी वाणी बोलिये अपना आपा खोय।
और हूँ को शीतल करै आपहुँ शीतल होय॥

"आयुः ईयते प्राप्यते यत्तदायुर्जीवनम्।
जीविताविधिकालः।"

"शरीरेन्द्रिय सत्वात्म संयोगोधारि जीवितम्।
नित्यगश्चानुवन्धश्च पार्यायैरायुरुच्यते।"

चरक सं. सूत्र अ. १।४२

शरीर प्राणयोरेव संयोगादायुरुच्यते। कालेन त द्वियोगाच्च।

संगठन से रहें

सं उपसर्ग पूर्वक गम् गतौ धातु से।
गतेस्त्रयोर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति।

"संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवाभागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते।"

ऋक्. १०।१९१।२

"सं जानीध्वं सं पच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा-पूर्वे सं जानाना उपासते॥"

अथर्व. ६।६४।१

पृच्यध्वं = पृची संपर्के धातु से।

(संगच्छध्वं) हे मनुष्यो ! तुम सब एक होकर प्रगति करो। सर्वं विरोधं विहाय परस्परं संगता भवत। (संवदध्वम्) संगता भूत्वा परस्परं विरुद्धवादं विहाय संप्रीत्या प्रश्नोत्तर विधानेन संवादं करुत। एक होकर उत्तम रीति से प्रश्नोत्तर विधि से संवाद करो।

(वः मनांसि) तुम सबके मन- चित्त बुद्धि विचार (संजानताम्) उत्तम ज्ञान से युक्त हो, उत्तम संस्कार युक्त हो। येन युष्माकं मनांसि सदा ज्ञानवन्ति भवेयुः तथा प्रयतध्वम्। (यथा पूर्वे संजानाना देवाः) यथा पूर्वे ये सम्यग्ज्ञानवन्तो दैवा विद्वांसः, जिस प्रकार पूर्व कालीन उत्तम ज्ञानी लोग विद्वान् अथवा धर्मात्मा आप्त पुरुष।

(भागं उपासते) भजनीय परमेश्वर की उपासना करते आये हैं। उसी प्रकार तुम लोग भी अपने कर्त्तव्य = धर्म का पालन करते हुए सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की ही उपासना किया करो।

भावार्थ—परमेश्वर आदेश देते हैं। हे मनुष्यो ! तुम सब लोग एक होकर आपस में मिलकर चलो। उन्नति करो, एक होकर आपस में प्रेमपूर्वक भाषण करो। तुम्हारे मन, बुद्धि चित्त एक होकर उत्तम ज्ञान से संयुक्त हों किस प्रकार के हों ? जैसे पूर्व काल में ज्ञानी पुरुष अपने उत्तम ज्ञान से सद् व्यवहारों से सबको सुख पहुँचाते हुए उन्नति करते थे वैसे ही तुम भी करो।

हमारे विचार और सभा एक हों

"समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥"

ऋक्. १०।१९१।३

(मन्त्रः) हे मनुष्यो ! तुम सबका विचार अथवा पूजा का मन्त्र। (समानः) समान हो अर्थात् उसमें किसी प्रकार का विरोध न हो। (समितिः) सामाजिक नियम व्यवस्था कर्मी सभा, कमेटी। (समानी) सबकी एक जैसी हो। (समानं मनः) तुम्हारा मन आपस में विरोध रहित एक विचार से युक्त हो। मनः संकल्प विकल्पात्मकम्। (एषां चित्तं सह अस्तु) इन सबका चित्त भी सबके साथ हो। दुःख सुख में सब एक समान बनो। (वः समानं मन्त्रं) तुम सबको एक समान विचार से। वेदोपदेश से, (अभिमन्त्रये) अभिमन्त्रित करता हूँ। संयुक्त करता हूँ। (वः समानेन हविषा हविर्दानं ग्रहणं च) तुम सबको एक समान अन्न और उपभोग से। भोगसामग्री। (जुहोमि) नियोजयामि। देता हूँ।

भावार्थ—परमेश्वर मनुष्यों को उपदेश करता है। हे मनुष्यो ! तुम सबका विचार चिन्तन एक हो, तुम्हारी सभा सामाजिक नियम बनाने वाली समिति एक हो, उसमें बैर विरोध आपस में न हो। सबके मन चित्त एक समान सुख दुःख मे सहायक हों। तुम सबमें खान-पान उपभोग की व्यवस्था भी एक जैसी प्रीति युक्त धर्ममय हों तभी तुम सबकी उन्नति हो सकती है।

मन्त्रः—मन्त्रः मननात्। मानाज्ज्ञानात् त्रातीति मन्त्रः। मन्तारं त्रायते रक्षतीति मन्त्रः। मन्त्रि गुप्त परिभाषणे धातु से गुप्तानां पदार्थानां भाषणं यस्मिन् वर्त्तते स मन्त्रोवेदः।

हमारे हृदय और मन एक हों

समानी व आकूतिः समानः हृदयानिवः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।

अथर्व. ६।६४।३, ऋक्. १०।१९१।४

(वः आकूतिः) हे मनुष्यो ! तुम्हारा पुरुषार्थ, उत्साह, सामर्थ्य आकूतिरध्यवसाय उत्साह आप्तरीतिर्वा। ध्येय (समानी) एक समान हो, परस्पर

विरोधी न हो। (वः हृदयानि) तुम सबके हृदय समान हों, उनमें आपस में बैर विरोध न हो। (वः मनः समानं अस्तु) तुम सबका मन एक समान हो सबके विचार एक जैसे हों। सुख दुःख में। मनसा विविच्य पुनरनुष्ठातव्यम् (यथा वः सु सह आसति) जिससे तुम सबकी सदैव सुख और उन्नति हो ऐसा प्रयत्न करते रहा करो। अथवा सहयोग से वर्ता करो।

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है—हे मनुष्यो ! तुम सबका उद्देश्य हृदय का भाव और मन का विचार सदा एक समान होवे। जिससे तुम सत्यधर्म पर चलकर सदैव सुख और उन्नति को प्राप्त हो।

शुभ गुणानामिच्छा कामः। तत्राप्यनुष्ठानेच्छा संकल्पः। पूर्व संशयं कृत्वा पुनर्निश्चय करणेच्छा संशयो विचिकित्सा, ईश्वर सत्य धर्मादि गुणाना मुपर्यत्यन्तं विश्वासः श्रद्धा। आकूतिरध्यवसायः उत्साहः। (यथा) जिससे (वः) तुम्हारी (असति) गति (सुसहा) बड़ा सहाय करने वाली होवे।

"समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम्।
समानेन वो जुहोमि समानं चेतो अभिसविशध्वम्।"

अथर्व. ६।६४।२

सं जानीध्वं सं पृच्छध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवाभागं यथापूर्वे सं जानना उपासते॥ अर्थव. ६।६४।१

हम सबका खान पान एक हो

समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो पुनज्मि।
सम्यञ्चो ऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः।

अथर्व. ३।३०।६

प्रपीयते अस्मिन् इति प्रपा। पा याने, (वः प्रपा) हे मनुष्यो ! तुम्हारा पान = पीने की सामग्री जल, दूध, शर्बत, फलों का रस इत्यादि वस्तुएँ। प्रपीयतेऽस्याम्। (समानी) एक समान, एक जैसी हो। (वः अन्नभागः सह) तुम सबका भोजन भी एक जैसा शुद्ध, सात्विक और साथ-साथ हो। (वः समाने योक्त्रे) तुम सबको मैं एक जोते में। कर्त्तव्यकर्मों में, (सह पुनज्मि) साथ-साथ जोड़ता हूँ और बन्धने स्नेह पाशे। (सञ्यञ्चः) तुम सब मिलकर एक गति वाले होकर। संगता, (अग्निं सपर्यत) अग्नि ईश्वर की पूजा किया करो, पूजयत्। (इव) जिस प्रकार प्रश्न होता है किस प्रकार पूजा करें। (आराः नाभिं अभितः) रथ के चक्र (पहिये के आरे) दण्ड नाभि के चारों ओर संयुक्त रहते हैं। लगे रहते हैं और सब मिलकर पहिये को चलाते हैं। उसी तरह तुम सब मिलकर एक ईश्वर की पूजा किया करो।

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है—हे मनुष्यो ! तुम सबका खान पान शुद्ध सात्विक एक जैसा हो। तुम सबको एक समान धर्म मार्ग पर चलने के लिए एक ही धर्म रूपी जुए में जोतता हूँ। तुम सब एक ही ईश्वर की पूजा किया करो। जैसे

रथ के पहिये के आरे सब मध्य के काष्ठ नाभि में संयुक्त होकर गति करते हैं। उसी प्रकार तुम मिलकर एक होकर उन्नति के मार्ग पर चलो।

सात्विक भोजन—आयुः सत्व बलारोग्यं सुख प्रीति विवर्धनाः रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विक प्रियाः। गीता १७।८

राजस आहार—कटूम्ल लवणात्युष्णतीक्ष्ण रुक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामय प्रदाः॥ गीता १७।९

तामस आहार—यातियामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामस प्रियम्। गीता १७।१०

हम सब प्रीति पूर्वक रहें

सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योअन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाध्न्या।
"समान हृदयानि वः" अथर्व. ३।३०।१

(स हृदय) सहृदयता, सुख दुःख में समानता का भाव। (सां मनस्यं) मन का उत्तमभाव, एक सा मन का भाव। (अविद्वेषं) निर्वैरता का भाव, बैर विरोध का त्याग, हिष् अप्रीतौ से द्वेष (वः) तुम्हारे लिए युष्मभ्यम्। (कृणोमि) मैं करता हूँ, उपदेश देता हूँ। (अन्यः अन्यं) एक दूसरे के ऊपर ऐसी परस्परम्। (अभिहर्यत) प्रीति करो, प्रीतिभाव रखो, प्रेम करो। हर्यत = हर्य गति कान्त्योः कामयध्वम्। (इव) जिस प्रकार प्रीति करो अब यह बतलाते हैं। (जातं वत्सं) उत्पन्न हुए नवीन बछड़े के ऊपर। (अघ्न्या) हनन न करने योग्य गाय प्रेम करती है। निरुक्त ११।४३

भावार्थ—दयालु जगदीश्वर उपदेश करते हैं। हे मनुष्यो ! तुम लोग आपस में बैर विरोध त्यागकर प्रेमपूर्वक मिलकर रहो। तुम्हारे मन और हृदय एक दूसरे के सुख दुःख में समान सहायक हो जैसे अपने लिए सुख चाहते हो और दुःख नहीं चाहते वैसे ही दूसरों के लिए भी समझो। जैसे गौ अपने नवीन उत्पन्न हुए बछड़ों से अत्यन्त प्रेम करती है और उसकी सब प्रकार से रक्षा करती है वैसे ही आप लोग आपस में प्रेम व्यवहार करते हुए एक दूसरे की रक्षा करो तभी आप सबका कल्याण होगा। अघ्न्या अघघ्नी भवति।

"यस्तु सर्वभूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्व भूतेषु चात्मानं यो न विजुमुप्सते। ईशोपनिषद् गीता ६
आत्मौपम्येन सर्वत्र

पारिवारिक एकता

भ्राता = भ्राजते यः सः सहोदरः।

मा भ्राता भ्रातरं विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्च सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥
संगता सहकर्माणः। अथर्व. ३।३०।३

(भ्राता भ्रातरं मा द्विक्षत्) भाई-भाई के साथ द्वेष न करे। (मा स्वसार मुत स्वसा) बहिन-बहिन के साथ द्वेष न करे। (सम्यञ्च) एकमत वाले और (सव्रताः) एक व्रत और एक कर्म वाले (भूत्वा) होकर (भद्रया वाचं वदत) कल्याणी रीति से वाणी को बोलें। कल्याण रीत्या, स्वसारं भगिनीम्।

भावार्थ—भाई-भाई और बहिन-बहिन आपस में कभी द्वेष न करें। यह आपस में मिलकर एकमत वाले एक व्रत वाले होकर एक दूसरे को शुभ वाणी से बोलते हुए सुख के भागी बनें। इस वाणी के सदुपयोग से शान्ति, प्रेम, प्रसन्नता उत्पन्न होती है।

> **"सानन्दं सदनं सुतांश्च सुधियः भार्या प्रियालापिनी।**
> **सन्मित्रं सुधनं स्वयोषिति रतिश्चाज्ञापराः सेवकाः॥**
> **आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे।**
> **साधोः संगमुपासते हि सततं धन्योगृहस्थाश्रमाः॥"**
> **"वाणी रसवती यस्य भार्या पुत्रवती सती।**
> **लक्ष्मीर्दानवती यस्य सफलं तस्य जीवितम्॥"**
> **"वाक् चैव मधुराश्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता॥"**

मनुः २।१५९

"मीठी वाणी बोलिये अपनां आपा खोय। औरहूँ कूँ शीतल करै आपुहिं शीतल होय॥"

> **"भर्त्तारं लंघयेत् या स्त्री स्वजाति गुणदर्पिता।**
> **तां श्वभिः खादयेत् राजा संस्थाने बहु संस्थित॥"**

मनुः ८।३।७६

> **अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु समनाः।**
> **जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शान्तिवाम्।** अथर्व. ३।३०।२

व्रतमिति कर्म नाम। अनुव्रतः = अनुकूल कर्मा।

(पुत्रः) पुत्र (पितुः अनुव्रतः) पिता का अनुकूल व्रती होकर पिता के अनुकूल कार्य करने वाला होकर (मात्रा) माता के साथ (संमनाः भवतु) उत्तम मन से रहने वाला होवे, (जाया) पत्नी जाया = जनयति वीरान् भार्यी पत्नी (पत्ये) पति से (मधुमती) मीठी (शान्ति वाम्) शान्ति देने वाली (वाचं) वाणी (वदतु) बोले। (मधुमती) जैसे मधु में सनी (शान्ति वाम्) शान्ति से भरी जिह्वा में मधुमत्तमा।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश देते हैं कि पुत्र माता-पिता के अनुकूल हो। स्त्री अपने पति से मधुर और शान्तिदायक वचन बोला करे। घर में पिता पुत्र का और पुत्र माता का आपस में झगड़ा न हो। भार्या पति के लिए मीठे और शान्ति दायक

वचन बोले कभी कठोर शब्द का प्रयोग न करे। ऐसे व्यवहार करने से गृहस्थाश्रम स्वर्गाश्रम बन जाता है।

वाचं वदत भद्रया। अथर्व. ३।३०।३

"अस्ति पुत्रो वशे यस्य भृत्यो भार्या तथैव च।
अभावे सति सन्तोषः स्वर्गस्थोऽसौ महीतले॥"
"यस्य भार्या शुचिर्दक्षा भर्त्तारमनुगामिनी।
नित्यं मधुर वक्त्री च सा रमा न रमा रमा॥"
"नित्यं स्नाता सुगन्धा च नित्यं च प्रिय वादिनी
अल्पभुङ् मितवक्त्री च देवता सा न मानुषी॥"

"सनाथो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च। यस्मिन्नेनकुले। सा देवी न तु मानुषी। शान्ति वाम् सुखोपेतां, शान्तियुक्ताम्॥मम ब्रते ते हृदय दधामि मम चित्तमनुकूत ते अस्तु मम वाच मेक मना जुषस्व प्रजापतिस्त्वां नियनक्तु मह्यम्॥"

"पुमांस दाहयेत् पापं शूवने तप्तआपसे।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दहयेत् पापकृत्॥" मनुः ८।३।२
"येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषत मिथः।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥" अथर्व ३।३०।४

वियन्ति = विरुद्धं गच्छन्ति। विद्विषते = विद्वेषं कुर्वते तिप् अप्रीतौ।

(येन) जिस वैदिक मार्ग से (देवाः) विद्वान् पुरुष (न वियन्ति) विरुद्ध नहीं चलते (च) और (नो) न कभी (मिथः) आपस में (विद्वषते) द्वेष करते हैं। (तत्) उस (ब्रह्म) वेदमार्ग को (वः) तुम्हारे (गृहे) घर में (पुरुषेम्यः) सब पुरुषों के लिए (संज्ञानम्) ठीक-ठाक ज्ञान का कारण (कृण्मः) हम करते हैं कुर्मः।

भावार्थ—परम दयालु परमात्मा हमें सुखी बनाने के लिए वेदमन्त्रों द्वारा अति उत्तम उपदेश देते हैं। सब विद्वानों को चाहिए कि वैदिक धर्म से विरुद्ध कभी न चलें। न कभी आपस में विद्वेष करें।

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै वा युनक्ति ? तस्मै युनक्ति
कर्मणे वां वेणाय वाम्॥ यजुः १।६

"यः प्रीणयेत् सुचरितैः पितरं स पुत्रो। यद्भर्त्तुरेवहितमिच्छति तत् कलत्रम्।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यद्। एतत् त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते। भर्त्तृ हरिः।

"वाणी रसवती यस्य भार्या पुत्रवती सती।
लक्ष्मीर्दानवती यस्य सफलं तस्य जीवितम्॥"

"धर्मार्थ काम मोक्षणां यस्यैकोपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्यैव तस्य जन्म निरर्थकम्॥"

"कुदरत को नापसन्द है सख्ती बयान में। इससे नहीं लगाई है हड्डी-जुबान में॥"

नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ मनुः "जिह्वा में मधुमत्तमा।"

जीवन सुखमय बनाने की प्रार्थना

"आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाहि अपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि, श्रोत्रं मे पाहि, वाचं मे पिन्व, मनो मे जिन्व, आत्मान मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ॥"

यजुः १४।१७

"एति जीवनं येन तत् आयुः।"

(आयुः) आयुः जीवनम्। जीविताविधि कालः। ईयते प्राप्यंते यत्तदायुजीवनम्। शरीरेन्द्रिय सत्वात्म संयोगोधारि जीवितम्।

(मे पाहि) हे दयामय जगदीश्वर ! आप मेरी आयु की रक्षा करो। या रक्षणे धातु से पाहि। अर्थात् आपकी कृपा से मैं पूर्ण सौ वर्ष की आयु प्राप्त करूँ। शतायुर्वै पुरुः। जीवेम शरदः शतम्। भूयश्च शरद, शतात्। "स देवेषु कृणुते दीर्घआयुः। स मनुष्येषु कृणुतेदीर्घआयुः।" यजुः ३४।२१

"इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषांनुगाद परो अर्थमेतत्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरुचीरन्तरमृत्युदधतां पर्वतेन॥"

यजुः ३५।१५

"आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धगतं तस्यार्धस्य परस्य
चार्धमपरं बालत्व वृद्धत्वयोः।
शेषं व्याधिवियोग दुःख सहितं सेवादिभिर्नीयते जीवे वारितरंग
चञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्॥" वैराग्यशतक ४९

"आदित्यस्य गतागतै रहरहः संक्षीयते जीवितम्।
व्यापारैर्वहु कार्यभार गुरुभिः कालोऽपि न ज्ञायते। दृष्टा जन्म जरा-विपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते, पीत्वा मोहमयीं प्रमाद मदिरामुन्मत्त-भूतं जगत्।

वैराग्यशतक ४३

शतायुर्वै पुरुषः सर्व वेदेषु वै यदा नाप्नोत्यय सर्वमायुः केनेह हेतुना महाभारत में धृतराष्ट्र ने विदुर जी से पूछा। उत्तर श्रूयतां येन दोषेण मृत्युर्विप्रान् जिधांसति

मनुः ५।३

"आयुः कल्लोल लोलं कतिपय दिवसस्थामिनी यौवन श्रीः।
अर्थाः संकल्प कल्पा घनसमय तडिद्विभ्रमा भोगपूराः॥
कण्ठाश्लेषोपगूढ़ं तदपि न चिरं यत् प्रियाभिः प्रणीतम्।
ब्रह्मण्यासक्तचिता भवत भवभयाम्मोधि पारं तरीतुम्॥"
वैराग्यशतक ३६.

आयु बृद्धि के उपाय

"त्रय उपस्तम्भाः आहार स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति। चरक.
आहार शयन ब्रह्मचर्यैर्युक्त्या प्रयोजितैः।
शरीरं धार्यते र्नित्य मागारमिव धारणैः॥" वाग्भट्ट
"ब्रह्मचर्यं मायुष्यकराणां श्रेष्ठम्।"
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत॥" अथर्व.
"कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुन त्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥"
"आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षये ह्यस्य बहून् रोगान् मरणं वाधि गच्छति॥" चरक.
"आयुस्तेजो बलंवीर्य प्रज्ञा श्रीश्च महायशः।
पुण्यञ्च प्रीतिमत्वञ्च हन्यते ब्रह्मचर्यया॥"
"आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः॥" मनुः
"आचारः प्रभवो धर्मः सन्तश्चाचार लक्षणाः।
साधूनाञ्च यथावृत्तं सदाचारः स उच्यते॥"
"अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्मादन्न दोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति॥" मनुः ५।४
आलस्य = धर्माचरण और सत्कर्मों में आलस्य करने से।
यः सदाचारवान्नरः शतं वर्षाणि जीवति। मनुः
"आचाराल्लभतेह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यंमाचारोहन्त्यलक्षणम् ॥" मनुः
"दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी सततं च व्याधितोऽल्पायुरेवच॥" मनुः
"वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमायाति एति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥"

"सर्व लक्षण हीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः।
श्रद्धानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति।।"
"यथा हि ते जीवितमात्मनः प्रियं तथा परेषामथि जीवितं प्रियम्।
संरक्षसे जीवितमात्मनो यथा तथा परेषामपि रक्ष जीवितम्।।"
"अचिन्त्य रूपो भगवन्निरंजनो विश्वम्भरो ज्ञानमयश्चिदात्मा।
न चिन्तितो येन हृदि स्थितं नो वृथागतम् तस्य नरस्य जीवितम्।।"
"इदं शरीरं परमार्थ साधनं धर्मैकहेतुं बहुपुण्यलब्धम्।
लब्धापि यो नो विदधीति भक्ति वृथागतं तस्य नरस्य जीवितम्।।"
"निद्रायत्तं सुखं, दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम्।
वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च।।"

चरक सहिता।।

तदुख संयोगा व्याधय इत्युच्यन्ते। ते चतुर्विधाः। आगन्तवः शारीराः, मानसाः स्वाभाविकाश्चेति।" सुश्रुत सूत्र स्थान "समदोषाः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनाः स्वस्थ इत्यमिधीयते। सुश्रुत।

"आदित्यस्य गतागतैः रहरहः संक्षीयते जीवितम्।
व्यापारैर्वहु कार्य भार गुरुभिः कालोऽपि न ज्ञायते।।"
दृष्टाव जन्म जरा विपत्ति मरणं त्रासश्चनोत्पद्यते।
पीत्वा मोहमयीं प्रमाद मदिरामुन्मत्तभूतं जगत्।। वैराग्य ४३
न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन दृश्यते।
यादृशं पुरुषस्येह पर-दारोपसेवनम्। मनुः ४।१३४
"यथा हान्यनुपूर्वं भवन्ति यथा ऋतवः ऋतुभिर्यान्तु साधु।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयेषाम्।"

ऋक्.

प्राण = श्वास = वाह्यस्य वायो वायोराचमनं श्वासः।
(अपान) उच्छ्वास = कोष्ठयस्म वायो निस्सारणं प्रश्वासः।

इहैवस्तं प्राणापानौमापगातमितो युवम्।
शरीर मस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः।।"
प्राणिति येन जीवन हेतुम्। अथर्व ३।११।६

(प्राणं मे पाहि) मेरे प्राण की रक्षा करो। "अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः।।"
प्राणं = नाभेरूर्ध्वगामिनं मे मम पाहि रक्ष।
अपानं = यो नाभेरर्वाग्गच्छति तम्।
व्यानं = यो विविधेषु शरीर सन्धिषु अनिति तम्।

प्राण = प्र उपसर्ग पूर्वक अण् प्राणवे धातु से घञ् प्रत्यय करके प्राण शब्द व्युत्पन्न हुआ। प्राणिति जीवति बहुकालमिति प्राणः प्राण देवा अनुप्राणान्ति मनुष्य पशवश्च ये। प्राणो हि भूतान मायुः।" तैत्तिरीयो. २।३

"प्राणिनां सर्वतो वायुः चेष्टां वर्द्धयते प्रथक्।
प्राणनाच्चैवभूतानां प्राण इत्यभिधीयते।।"

"आकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ् मनः चक्षुः श्रोत्रं च। ते प्रकाश्याभि वदन्ति। वयमेतद् वाणमवष्टभ्य विधा स्यामः। तान् वरिष्ठः प्राण उवाच। मा मोह मापद्यथाः। अहमेवै तत् पञ्चधाऽऽत्मानं प्रविभज्यैतदवाणमवष्टभ्य विधारयामीति तेऽश्रद्दधाना बभूबुः। सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रमत इव। तस्मिन्नुत्क्रम त्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते। तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठन्ते। तद्यथा मक्षिका मधुकर राजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्त। एव वाङ् मनश्चक्षुः श्रोत्रं च ते प्रीताः प्राणं स्तुवन्ति।" प्रश्नोपनिषेद् २

"प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां विधेहि नः।।" प्रश्नो. २।१३

"इन्द्रस्त्वं प्राण तेजंसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः।।" प्रश्नो. २।९

"मा मां प्राणो हासीन्मोऽअपानोऽवहाय परागात्।"
अथर्व १६।४।३

"उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्व चैव पञ्चधा।
अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते।।" प्रश्नो. ३।१२

"अथ हैनं कौशल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ। भगवन् कुत एष प्राणो जायते ? कथमात्यस्मिन् शरीरे ? आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रतिष्ठते ? केनोत्क्रमते ? कथं बाह्यमभिधत्ते ? कथमध्यात्ममिति ?

आत्मन एष प्राणो जायते। आत्मशब्दाच्च वेदाना ३-३-१५।

"अतएव प्राणः।" वेदान्तदर्शन १।१।२३

"एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी।।" मुण्डक्. २।१।३

यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्ने तदाततं मनो कृतेनायात्यस्मिन शरीरे, स प्राणस्य प्राणः
केनोप. २

"यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः।।" गीता ८।६

"शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वर।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धा निवाशयात्।।" गीता १५।८

यथा सम्राडेवाधिकृतान् विनियुङ्क्ते एतान् ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठस्वे त्येवमेवैष प्राणः इतरान् प्राणान् पृथक् पृथगेव संनिधन्ते।

पायूपस्थेऽपानं चक्षुः श्रोत्रे मुख नासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रतिष्ठते। मध्ये तु समानः, एव ह्येतद् हुतमन्नं समं नयति। तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति।

(एताः सप्त अर्चिषः) ये सात ज्वालाएँ = विषयों को प्रकाशित करने वाले ऊपर के द्वार।

"हृदि प्राणोगुदेपानः समानो नामि संस्थितः।
उदानः कण्ठदेशस्यः व्यानः सर्व शरीरमः॥" चरक.

"प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते।
प्राणो हि सत्यवादिनमुत्तमलोक आदधत॥" अथर्व. ११।४।११

तक्मा = आनन्द करने वाला जीवन है।

अब व्यान की गति का वर्णन करते हैं—

हृदि ह्येष आत्मा। अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्तति र्द्वासप्ततिः प्रतिशाखा नाडी सहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति।

इस प्रकार शरीर में कुल ७२ करोड़ नाड़ियाँ हैं। इन सबमें व्यान वायु विचरण करता है।

अथैकमोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्य लोकं।"

"शुभाशुभफलं कर्म मनो वाग्देह सम्भवम्।
कर्मजागतयोनृणामुत्तमाधम मध्यमाः॥" मनुः १२।१

तेजो ह वा उदानस्तस्मा दुपशान्त तेजाः पुनर्भवमिन्द्रियै मनसि सम्पद्यमानैः।

"यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति।"

"यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदातद्भाव भावितः॥" गीता ८।६

प्राणायाम का लक्षण

प्राण की रक्षा प्राणायाम द्वारा होती है—

"तस्मिन् सति श्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। योगदर्शन सत्यासन जये बाह्यस्य वायोराचमनं श्वसाः, कोठरयस्य वायोनि-स्सारणं प्रश्वासः तयेर्गति विच्छेद उभयाभाव प्राणायामः। रेचक-कुम्भक पूरक प्राणः प्राणवायु आयम्यते संयम्यते येन सः प्राणायामः।

"दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथामलः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥" मनुः

प्राणायाम का फल

"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।" योगदर्शन

प्राण + आयाम प्राण का विस्तार। ततः परमावश्यतेन्द्रियाम्" योगसूत्र

मनुष्य बनने का उपदेश

"तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः।
पथो रक्ष धिया कृतान्।
अनुल्वणं वयत जोगुवामयो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्।।"

ऋक्. १०।५२।६

(रजसः) संसार का (तन्तुम्) ताना बाना (तन्वन्) तनता बुनता हुआ। (भानुम्) प्रकाश के (अनु इहि) पीछे जा अनुसरण कर। (धिया) बुद्धि से (कृतान्) बनाये हुए परिष्कृत किये हुए। (ज्योतिष्मतः) ज्योतिर्मय प्रकाशयुक्त (पथः रक्ष) मार्गों की रक्षा कर। (जोगुवाम्) निरन्तर ज्ञान और कर्म का अनुष्ठान करने वालों के। (अनुल्वणम्) उलझन रहित (अपः) कर्मों को (वयत) विस्तृत करो। इन उपायों से (मनुर्भव) मनुष्य बन, मानव बन और (दैव्यम्) देवों के हितकारी (जनम्) जन को, सन्तान को (जनय) उत्पन्न कर, जन्म दे।

"हमारा जीवन एक करघा है जिस पर मन रूपी जुलाहा विचार रूपी सूत से भले बुरे कर्मों के ताने बाने करके चरित्र रूपी वस्त्र को बनाता है और उस वस्त्र में अपने को उसी प्रकार लपेट लेता है जिस प्रकार रेशम का कीड़ा।" —जेम्स एलेन

संसार को सदा जिसकी आवश्यकता रही है और रहेगी और इस समय भी जिसकी अत्यन्त आवश्यकता है। उस तत्व का इस मन्त्र में उपदेश दिया गया है। वेद कहता है मनुर्भव मनुष्य बन। निरुक्त ३।७

मनुष्य शब्द का अर्थ है। मत्वा कर्माणि सीव्यतीति मानव अर्थात् जो विचार कर कर्म करे अन्धाधुन्ध कर्म न करे। कर्म करने से पूर्व जो भली प्रकार विचार करे कि मेरे इस कर्म का क्या फल होगा ? किस-किस पर इसका क्या-क्या प्रभाव होगा ? यह कर्म प्राणियों की पीड़ा का कारण बनेगा या सबके हित का साधक होगा। मनुष्य यदि सचमुच में मनुष्य बन जाय तो संसार के सारे उपद्रव, क्लेश, कष्ट दूर हो जाय। इसीलिए वेद कहता है—मनुर्भव—मनुष्य बन।

"मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।" यजुः ३६।१८

"निर्वैरः सर्व भूतेषु यः स मामेति पाण्डव। गीता ११।५५

१. "सहृदयं सांमनस्य मविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योऽन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।" अथर्व. ३।३०।१

२. "अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जायापत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्ति वाम्।" अथर्व ३।३०।२

३. "मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षव् मा स्वसारभुत स्वसा।
सम्यञ्च सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥"

अथर्व. ३।३०।३

धार्मिक दृष्टि से विचार करें तो मनुष्य समाज के दो बड़े विभाग बन सकते हैं। एक आस्तिक अर्थात् ईश्वर वादी दूसरा नास्तिक अर्थात् अनीश्वर वादी।

धर्म = मनुष्य धर्म। मानव धर्म।

धर्मेण हीनः पशुभिः समाजः।
पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः। यजुः २९।५१
"सर्वेषां य सुहृन्नित्यं सर्वेषाञ्च हितेरतः।
कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेदनेतरः॥"
"श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥" महाभारत
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥ गीता ६।३२
"क्षित्यङ्कुरादिकं कर्त्तृजन्यं कार्यत्वात् घटवत्।" न्यायदर्शन।
"प्रवृतिञ्च निवृत्तिञ्च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥ गीता १६।७
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्पर संभूत किमन्यत् काम हैतुकम्॥ गीता १६।८
अकरुणात्व मकारण विग्रहः परधने परयोषित च स्पृहा।
सुजन बन्धु जनेष्वसहिष्णुता प्रकृति सिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्।भर्तृ.
दम्भोदर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥" गीता १६।४
यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निर्घर्षणच्छेदन ताप ताडनैः।
तथा चतुर्भि पुरुषः परीक्ष्यते श्रुतेन शीलेन गुणेन कर्मणा।

भर्तृहरि

"मांसभक्षैः सुरापानैर्मूर्खैश्चाक्षर वर्जितैः।
पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराक्रान्तास्ति मेदिनी।"
"विपदि धैर्य मथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चभिरुचि र्व्यसनं श्रुतौ प्रकृति सिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥"

नीतिशतक ६१

कल्याणकारी निर्दोष मार्ग

"अपि पन्थामगन्महि स्वस्ति गाम नेहसम्।
येन विश्वाः परिद्विषोवृणक्ति विन्दते वसु।" ऋक्. ६।५१।१६

हम सब लोग (स्वस्तिगाम्) स्वःसुखं गच्छति येन तम् कल्याण की ओर ले जाने वाले अथवा सुखपूर्वक ले जाने वाले (अनेहसम्) निर्दोष (पन्थाम्) मार्ग को (अगन्महि) प्राप्त करें। चलें। (येन) जिस पर चलने से मनुष्य (विश्वाः) सम्पूर्ण (द्विषः) द्वेष भावों को, बुराइयों को (परिवृणक्ति) सर्वथा त्याग देता है और (वसु) धन, वैभव ऐश्वर्य (अपि) भी (विन्दते) प्राप्त करता है।

भावार्थ—मनुष्य संसार में आकर भटक जाता है। किधर जायें ? किससे पूछें ? कौन-सा रास्ता अच्छा है ? किस रास्ते पर चलने से अपनी मंजिल पर पहुँचेंगे ?

कथं तरेम भवसिन्धुमेत का वा गतिर्मे कतयोऽस्त्युपायः।
जाने न किञ्चित् कृपयाव मां भो संसार दुःखक्षतिमातनुष्व॥
"प्राणाघातान्निवृत्तिः, परधन हरणे संयमः, सत्य वाक्यम्।
काले शक्त्याप्रदानं, युवति जन कथा मूकभावः परेषाम्॥"
"तृष्णास्त्रोतों विभंगो गुरुषु च विनयः, सर्वभूतानुकम्पा।
सामान्यं सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः॥"
भतृहरि नीतिशतक ६३

"निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव" गीता ११।५५

"मा हिंस्यात् सर्वभूतानि। अहिंसापरमोधर्मस्त्वधर्मं। प्राणि नां वधः। सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः।"
मनु

"आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुनः।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥" गीता ६।३२
"वेदाभ्यासः तपो दानं ज्ञानमिन्द्रियाणाञ्च संयमः।
अहिंसा गुरु-सेवा च निःश्रेयस्करं परम्।" मनुः १२।८३

"हते ह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्ष्यन्तांम् (परिवृष्याक्ति) परि + वृजी वर्जने परिवर्जयति।"

विश्वकल्याण की कामना
(सर्वोदय का मार्ग)

"स्वस्तिमात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नोऽस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्य्यम्॥"
ऋक्. १।३१।४

(स्वस्ति) क्षेमम् मंगलम्। (नः) हमारी (मात्रे) माता के लिए (उत) और (पित्रे) पालक पिता के लिए (स्वस्ति अस्तु) कल्याण हो (गोभ्यः) गौ, बैल आदि उपकारी पशुओं के लिए (जगते पुरुषेभ्यः) समस्त जगत् के पुरुषों के लिए (स्वस्ति अस्तु) भला हो कल्याण हो। (नः) हमारे लिए (विश्वं) सभी कुछ (सभूतम्) उत्तम स्थिति ऐश्वर्य वाला तथा (सुविदत्रं) उत्तम नाम (अस्तु) हो। (ज्योकऐव) निरन्तर चिरकाल तक ही हम (सूर्य्यम्) सूर्य को (दृशेम्) पश्येम देखें। सूर्य = परमात्मा। सूर्य आत्मा जगतस्थुषश्च स्वाहा।

भावार्थ—सभी मनुष्यों को सबकी कल्याण कामना करनी चाहिए। उसमें भी सबसे प्रथम माता-पिता की कल्याण कामना का संस्कार आर्यशास्त्रों में वहुत गहरा है। मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। माता-पिता सन्तान के लालन-पालन में जो कष्ट उठाते हैं उसकी निष्कृति कौन दे सकता है ? इसके लिए पितृयज्ञ है। माता-पिता के कल्याण की कामना के साथ गौ, बैल, अश्व आदि उपकारी पशुओं की मंगल कामना का आदेश है। गाय, बैल, घोड़ा आदि उपकारी पशुओं से मनुष्य के जीवन की समृद्धि तथा सम्पन्नता पूर्ण होती है।

समस्त जगत् के पुरुषों का कल्याण हो। जगत् का कल्याण या तो भगवान् करते हैं या जगतहितैषी महात्मा, महापुरुष। सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।

यं माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्त्तुं वर्ष शतैरपि॥ मनु

नौ द्वारों वाला पुण्डरीक (कमल)

"पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिगुणेभिरावृत्तम्।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्म विदो विदुः।" अथर्व. १०।८।४३

(त्रिभिः) तीन (गुणेभिः) गुणों से (आवृत्तम्) ढका हुआ (नव द्वारं) नौ द्वारों वाला (पुण्डरीकम्) कमल है। (तस्मिन्) उसमें (यद् आत्मन्वत्) जो आत्मा वाला (यक्षम्) पूजनीय है। (ब्रह्मविदः) ब्रह्म को जानने वाला (तत् वै) उसको ही (विदुः) जानते हैं। प्राप्त करते हैं। (पुण्डरीकं) पुण्य साधनं शरीरम्।

भावार्थ—इस ब्रह्मपुर में एक छोटा सा कमल समान मकान है। यह कमल समान मकान तीन गुणों से घिरा रहता है। सत्व, रजस् और तमस्। इन तीन गुणों ने उसको घेर रखा है। इस शरीर के नौ द्वार हैं। वे दो नेत्र, दो कान, दो नाक, एक मुख, एक मूत्र द्वार और एक मल द्वार ये सब मिलकर नव द्वार होते हैं। उस हृदय कमल में आत्मा (परमात्मा) का वास है। ब्रह्मवेत्ता लोग उसी यक्ष को प्राप्त करते हैं।

"नव द्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः" श्वेताश्वतर ३।१८

"हृदयं पुण्डरीकेण सदृशं स्यादधोमुखम्। जाग्रतस्तद् विकसति स्वयतस्तु निमीलति ।।" आयुर्वेद सुश्रुत

"अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म।"

छान्दोग्य ८ ।१ ।१

गुहां प्रविष्टा वात्मानौ हि तद्दर्शनात्। वेदान्तदर्शन १ ।२ ।१३

"अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्यमय: कोष: स्वर्गो ज्योतिषावृत: । तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्येरत्रिप्रतिष्ठिते । तस्मिन् यद् यक्षमात्मनवत् तद्वै ब्रह्मविदो विदु: । अथर्व.

अर्थ—देवों की न जीती जा सकने वाली नगरी के आठ चक्र तथा नौ द्वार हैं। उस नगरी में प्रकाश से घिरा हुआ सुवर्णमय आनन्द तक ले जाने वाला कोष है। उस तीन आरों वाले तीन के सहारे रहने सुवर्णमय कोश में आत्मवान् जो यक्ष है। ब्रह्म वेत्ता उसे ही प्राप्त करते हैं। मूलाधिष्ठान से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक इस शरीर में आठ चक्र हैं।

षड् रिपु दमन की प्रार्थना

"उलूक यातुं शुशुलूक यातुं जहि श्वयातुमुत कोकयांतुम्।
सुपर्णं यातु मुत गृध्र यातुं दृशदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र ।।"

अथर्व. ८ ।४ ।२२

(उलूक यातुं) उल्लू की चाल को (शुशुलूक यातु) भेड़िये की चाल को (श्वयातुं) कुत्ते की चाल को (उत) और (कोकयातु) चिड़िया की चाल को (सुपर्णयातुं) गरुड़ की चाल को (उत) और (गृध्र यातुं) गिद्ध की चाल को (जहि) त्याग दे नाशकर दे। (इन्द्र) हे ऐश्वर्यभिलाषिन्। (रक्ष:) दुर्व्यसन रूपी राक्षसों को (दृषटा इव) मानो पत्थर से (प्रमृण) मसल दे। पत्थर समान कठोर साधन से मसल दे।

भावार्थ—इस वेदमन्त्र में पशुचाल का दृष्टान्त देकर दुर्व्यसनों को त्यागने का उपदेश मानव कल्याण के लिए दिया गया है।

१. उलूक =उल्लू को अन्धकार प्रिय है। वह प्रकाश से घबराता है। इसी प्रकार जो जन अज्ञानान्धकार में ही रहना पसन्द करते हैं और ज्ञान प्रकाश से घबराते हैं। वे मानो उल्लू की चाल का अनुसरण करते हैं। शास्त्रों में ऐसे लोगों को मूढ़ या मूढ़ बुद्धि वाला कहा गया है। मोह-अज्ञान के कारण राग द्वेष उत्पन्न होता है। 'उञ्ज रागे' धातु से राग द्विष् अप्रीतौ धातु से द्वेष और क्रुधि हिंसायाम् धातु से क्रोध प्रिय पदार्थों में सुख की प्रतीति कराने वाले पदार्थों में मनुष्य को राग होता है। दु:ख का आभास कराने वाले अप्रिय पदार्थों के प्रति प्राणी को द्वेष होता है। राग और द्वेष दोनों मिलकर क्रोध को उत्पन्न करते हैं। प्राणी जिस वस्तु से

राग रखता है। यदि वह प्राप्त न हो या छिन जाय तो उसे क्रोध आता है।इसी प्रकार अप्रिय पदार्थ का यदि मेल हो जाय तभी क्रोध उत्पन्न होता है।

मोहः पापीयान्। न्याय. ४।१।६

इन्द्रियस्येन्द्रियार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेतौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥ गीता ३।३४

२. (शुशुलूकयातुं) भेड़िये की चाल। शुशुलूक = भेड़िया को कहते हैं भेड़िया बड़ा क्रूर होता है। क्रूर यानि क्रोधी। वह सिंह आदि की अपेक्षा अधिक क्रूर एवं द्वेषी होता है। द्वेषी मनुष्य को क्रोध की मात्रा बहुत होती है। क्रोध वृत्ति का त्याग।

३. (स्वयातुम्) कुत्ते की चाल। कुत्ते में द्वेष का भाव बहुत होता है। वह अपने जाति भाई से भी ईर्ष्या रखता है। स्वजाति द्रोह तो उसका प्रसिद्ध है। अतः ईर्ष्या द्वेष वृत्ति का त्याग करना योग्य है। कुत्ते में कुछ गुण भी होते हैं। उन्हें ग्रहण करना चाहिए।

"बहाशी स्वरूप सन्तुष्टः सुनिद्रो लघुचेतनः।
स्वामिभक्तश्च दूररश्च षडेते श्वानतो गुणाः॥" चाणक्य नीति

४. (कोकयातुं) कोक चिड़िया। चिड़ा बहुत कामातुर होता है। अतः कोकयातुं का अर्थ हुआ कामवासना वृत्ति। उसका त्याग करना योग्य है। काम में प्राणी अन्धा हो जाता है। कामान्धो नैव पश्यति। न कामाश्चरेत्।

नास्ति काम समो व्याधिः नास्ति क्रोधसमो रिपुः। सैरन्ध्री कथा।

५. (सुपर्णयातुं) सुपर्ण = सुन्दर परों वाला पक्षी गरुड़। गरुड़ पक्षी को अपने सौन्दर्य का बड़ा अभिमान होता है। अहंकार वृत्ति का त्याग।

६. (गृध्र यातुम्) गृध्र = गिद्ध। गिद्ध बहुत लालची लोभी होता है। मरे मुर्द्दार को भी खाने की लालसा रहती है। गृधु अभिकांक्षायाम् अतः गृध्र यातुं का अर्थ हुआ लोभवृत्ति का त्याग करना योग्य है।

"मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।" यजुः ४०।१

"कामं क्रोधं मदं मोहं मात्सर्यं लोभमेव च।
अमूनषड्वैरिणो जित्वा सर्वत्र विनयी भवेत्॥" बुद्धोपदेश

"त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथालोभ स्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥" गीता १६।२१

"शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
काम क्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥" गीता ५।२३

"अन्धी करोमि भुवनं बधिरी करोमि।" कामातुराणां न भवन लज्जा।"

"कान्ता कटाक्ष विशिखा न लुनन्ति यस्य चित्तं ।"
न निर्द्दहति कोप कृशानु तापः । कर्षन्ति भूरि विषयांश्च न लोभ पाशै र्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः ॥ भतृहरि नीति ८६

"काम क्रोध मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिनके कपट दम्भ नहि माया । तिन्ह के हृदय वसहु रघुराया ॥ रामायण

भोग्य पदार्थेषु या भोगेच्छा वेगः सकामः । कामनाएँ ।

मनः प्रक्षोभको यो द्वेष परिपाकः स क्रोधः परापकारकरण हेतु बुद्धि विशेषः ।" लुभ् विमोहने धातु से लोभ ।

"न कामाँश्चरेत् । वहवो हि कामवशमा विनष्टाः । कामशास्त्र । कीचक-सैरन्ध्री कथा महाभारत विराटपर्व में आती है । मत्स्य देश का राजा विराट् बृद्ध निस्सन्तान था । उसकी स्त्री सुदेष्णा कीचक की बड़ी बहिन थी । कीचक विराट् का सेनापति था । जब पाण्डव १२ वर्ष वनवास समाप्त करके एक वर्ष का अज्ञातवास बिताने के लिए महाराजा विराट् के यहाँ पहुँचे तब चौथे मास भीम ने जीमूतवाहन पहलवान् को मल्लयुद्ध में पछाड़ा । कामातुर-कीचक को भी भीम ने मार दिया ।

युधिष्ठिर कङ्क बन कर राजसभा में रहे ।भीम बल्लभ बनकर रसोईया का काम किया ।अर्जुन वृहन्नला बने । उत्तरा को नृत्य सिखाते थे ।नकुल ग्रंथिक बनकर अश्व विद्या सारथि बने ।सहदेव तन्तिपाल । गोवंश के अधिपति बने ।द्रोपदी ने दासी का काम सैरन्ध्री बन कर सुदेष्णा के यहाँ किया ।

"शरीर स्थिति हेतुत्त्वादाहार सधर्माणो हि कामः ।" काम सूत्र।
"धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥" गीता ७।११
"इन्द्रियाभ्यामजय्याभ्यां द्वाभ्यामेव हतं जगत् ।
अहो उपस्थ जिह्वाभ्यां ब्रहमादि ॥"
न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन दृश्यते ।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ मनुः ४।१३४

सप्त ऋषि
(हमारे शरीर में सप्त ऋषि)

"सप्तऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सद्मप्रमादम् ।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥"
यजुः ३४।५५

अन्वयः—सप्त ऋषयः प्रतिशरीरे हिताः त एव सप्त अप्रमादं यथा स्यात्तथासदं रक्षन्ति। ते स्वपतः सप्तापः लोकमीयुः तत्र अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ जाग्रतः।

(सप्त ऋषयः) पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि मनोबुद्धिश्च विषय प्रापकाः ऋ गति प्रापणयो—धातु से ऋषि शब्द बना। ऋषिर्दर्शनात्। सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः। सप्त सृप्तासंख्या। शब्दादि विषयों को प्राप्त कराने वाले पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मन और बुद्धि ये सात ऋषि।

(प्रति शरीरे) प्रत्येक शरीर में। शरीरं श्रिणातेः हिंसार्थस्य हिंस्यते हि तत् (निरुक्त २।१६) श्रृ हिंसायाम् धातु से। शरीरमिति कस्मात ? अग्नयो ह्यत्रश्रियन्ते। ज्ञानाग्निः दर्शनाग्निः कोष्ठाग्निरिति। भोक्तुर्भोगायतन शरीरम्। चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्। (न्याय)

(हिताः) निहिता। रखे हैं। जीव के हित के लिए रखे गये हैं। (सप्त रक्षन्ति) ये सात ऋषि निरन्तर रक्षा करते हैं। किसकी रक्षा करते हैं ? (सदम्) शरीरम्। सीदन्ति यास्मिंस्तत्। ठहरने के आधार शरीर की रक्षा करते हैं। किस प्रकार से रक्षा करते हैं ? (अप्रमादम्) प्रमादं यथानस्यात्तथा। प्रमाद अर्थात् भूल न हो। वैसे अर्थात् भूल न करते हुए रक्षा करते हैं। जब ये (सप्तापः) आप्नुवन्ति व्याप्नुवन्ति शरीरमित्यापः। सात नदियाँ पूर्वोक्त सात प्रवाह ही सात नदियाँ हैं। जो जाग्रत अवस्था में आत्मा से निकल कर बाहर जाती हैं और सुषुप्ति में उनका उल्टा प्रवाह होता है। अर्थात् बाहर से अन्दर आत्मा की ओर बहती हैं।

"प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्र मक्षितिश्च क्षितिश्च या।
व्यानोदानौ वाङ्मनः शरीरेण तईयत्ते॥" अथर्व.

भगवन् एतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति ? कान्यास्मिन् जाग्रति प्राणाग्नयः एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति। प्रश्नोपनिषद् ४

(लोकम्) जीवात्मानम्। जीवात्मा को। (ईयुः) यन्ति। जाती है। पहुँचती हैं।

"मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञा विधेहि नः॥" (तत्र) लोक गमनकाले। उस लोक प्राप्ति समय में। अर्थात् (अस्वप्नजौ) स्वप्नो न जायते ययोस्तौ जिनको स्वप्न निद्रा कभी नहीं होता। न सोने वाले वे। (च देवौ) दिव्य स्वरूपौ प्राणापानौ। हमको जीवन देने वाले और स्थिर उत्तम गुणों वाले प्राण श्वास और अपान उच्छास ये दो देव जो जीवन के आधार हैं वे दोनों (जाग्रतः) जागते हैं। अर्थात् वे दोनों अपनी गति करते रहते हैं। ये दोनों देव जन्म से मृत्यु पर्यन्त हमारी रक्षा करते रहते हैं। इनकी जागृति जब तक रहती है तब तक ही यह जीवन यज्ञ चलता रहता है। यदि प्राण और अपान भी सो जावें तो मरण हो जाता है।

"मा मां प्राणो हासीन्मोपानोवहाय परागात्।" अथर्व. १६।४।३

"सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः सप्त होमां:। सप्त इमे लोका।"

मुण्डक. २।१।८

भावार्थ—आकाश मण्डल की तरह हमारे शरीर में भी सप्त ऋषि विद्यमान हैं। मनुष्य का शरीर सप्त ऋषियों का पवित्र आश्रम है। यहाँ शत साँवत्सरिक सत्र चलता है। इस सत्र = यज्ञ का संरक्षण दो देव करते हैं जो प्राण अपान हैं। सात इन्द्रिय शक्तियाँ ही सात नदियाँ हैं। उनके संगम पर यह यज्ञ चल रहा है। हमको सौ वर्ष तक इनके द्वारा अपना जीवन यज्ञ चलाना चाहिए।

"इन्द्रियाणा विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद् विद्वान् यन्तेव बाजिनाम्।।"
इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयेम् संन्नियम्य तान्येव तवः सिद्धि नियच्छति। मनुः

श्रेष्ठ धन की याचना

अर्थागमोनित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
"इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमन्हाम्।।"

ऋक्. २।२१।६

(इन्द्र) हे इन्द्र ! इदि परमैश्वर्य्ये—धातु से इन्द्र शब्द बना।

यः इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमात्मा। हे सकल ऐश्वर्य सम्पन्न देव। ऐश्वर्य का स्वामी इन्द्र है।

(अस्मे) अस्मै। हमारे लिए। हम आपके भक्तों के लिए। (श्रेष्ठानि) श्रेष्ठ! उत्तम। जिससे हमारा कल्याण हो ऐसा। (द्रविणानि) धनों को। धनं द्रविणमुच्यते। यदेनमभि द्रवन्ति। अभि आभिमुख्येन तदर्थिनोऽवश्यं द्रवन्ति (निरुक्त) द्रविणोदा इन्द्रः। धन का देने वाला इन्द्र है। (निरुक् धेहि) दे। दीजिये।" यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः ..... ।

"त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीन पुत्राश्च दाराश्चसुहृज्जनाश्च।

(दक्षस्य) चतुरता के, उत्साह के, सत्कर्म के। (चित्तिम्) ज्ञान को दीजिये। चिति संज्ञाने (सुभगत्वम्) सौभाग्य को। सब प्रकार के उत्तम ऐश्वर्य को। (रयीणां पोषम्) धनों की पुष्टि। धनों की बृद्धि। (अरिष्टिं तनूनाम्) शरीर की आरोग्यता। "अस्माभवतुनस्तन्:"। अरिष्टानि मेऽगानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु। (वाचः स्वादमानम्) वाणी की मधुरता। वाणी की मिठास।

"यद् वदामि मधुमत्तद् वदामि। जिह्वा मे मधुमत्तमा।"
"वाक्चैव मधुराश्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता।" मनुः

"वाक् क्षतं न प्ररोहति। वाणी का घाव नहीं भरता। (अन्हां सुदिनत्वम्) दिनों का सुखपूर्वक बीतना। दिन अच्छे बीतें।

काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलेहन वा॥"

इस वेद मन्त्र में सात वस्तुओं (श्रेष्ठ धन) की याचना की गई है। वे हैं— (१) श्रेष्ठ धन, (२) उत्तम ज्ञान चतुराई, (३) सौभाग्य, (४) धन की स्थिरता, (५) शरीर की आरोग्यता, (६) वाणी की मधुरता, (७) सुखपूर्वक जीवन यापन।

अहानिशं भवन्तु नः शं रात्रिः प्रतिधीयताम्।
"ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक् संयमः।
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः॥" भर्तृहरि
"कागा काकौ लेत है कोयल काकौ देय।
मीठी वाणी बोलकर जग अपनो कर लेय॥"

शरीर नाशवान् है।

तव शरीरं पतयिष्णवर्वन् तव चित्तं वात इव ध्रजीमान्।
तव श्रृंगाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति॥"

ऋक्: १।१६३।११

(अर्वन्) हे वीर पुरुष ! हे जीवात्मन् ! हे घोड़े के तुल्य वर्तमान वीर पुरुष।

(तव शरीरम्) यच्छीर्यते तच्छरीरम्। तेरा शरीर। शरीर शृणातेः हिंसार्थस्य हिंस्यते हि तत्। (निरुक्त २।१६) श हिंसायाम् धातु से। भोक्तुर्भोगायतन शरीरम्। न्याय दर्शन (पतयिष्णुः) पतनशील। विनाशवान् है। अनित्य है। क्षणभङ्गुर।

"अनित्यमयुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्। गीता ९।३३

(तव चित्तं) तेरा चित्त = मन। चिति संज्ञाने धातु से चित्त। (वातः इव) वायु के समान।(ध्रजीमान्) चञ्चल है। वेगवान् है। अर्थात् शीघ्र ही दूरस्थ विषयों में जाने वाला है।

"यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति दूरङ्गमम्।
ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥"

(तव जर्भुराणा) तेरी अत्यन्त पुष्ट। भृशं पोषकाणि धारकाणि। (शृंगाणि) इन्द्रियां। शृंगवदुच्छ्रृतानि। श्रोत्र, नेत्र, घ्राण आदि। (पुरुमा) पुरुषु बहुषु। बड़े-बड़े। (अरण्येषु) जंगलेषु। जंगलों में (विषय वनों मे) (विशिष्टता) विशेषेण स्थितानि। विशेषकर स्थित। विन स्थिता (चरन्ति) गच्छन्ति। जाती हैं—विचरती हैं।

भावार्थ—शरीर पतनशील है। सदा संग रहने वाला नहीं है। मन भी चंचल है। सदा इधर-उधर भागता रहता है। अर्थात् ये दोनों विश्वास योग्य नहीं हैं। जाने कब और कहाँ संग छोड़ दें। इसलिए सदैव भगवत्भजन और धर्माचरण करना योग्य है।

संसार की अनित्यता

पञ्चमहाभूत शरीरि समवायः पुरुषः। सुश्रुत सू. अ. १

"अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इत् किलासथ यत् तन्वथ पूरुषम्।" ऋक्. १०।९७।५

(अश्वत्थे) अश्वत्थ पर। न श्वस्तिष्ठतीति। अनित्य संसार रूप यक्ष पर। श्वः स्थास्यति न स्थास्यति वा तस्मिन् अनित्ये संसारे कल तक रहेगा या नहीं ऐसे अनित्य संसार में अ नहीं, श्वः कल, त्यः स्थिति।

(वः) युष्माकं जीवानाम्। तुम्हारा, आप जीव लोगों की। (निषदनम्) नि सदनम्। निवासः, स्थिति। बैठना है। (पर्णे) युष्माकम्। जीवानां। तुम्हारा जीवों का। (वसतिः) निवसतिः। निवास "ऊर्ध्वमूलोवाक्शाख एषोश्वत्थः (कृता) किया। बना हुआ है। (यत् पुरुषम्) यदि सर्वत्र पूर्ण परमात्मानं। (किल सनवथ) अवश्य ही सेवन करो। पूजा करो और (गोभाजः इत्) वाणी, इन्द्रिय आदि से सेवन करने वाले। (असथ) भवय। होओ।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्। गीता १०।२६

वृक्षवृश्चनात्। अश्वत्थ पीपल को कहते हैं। पीपल का वृक्ष बड़ा मनोहर होता है। इसको चलदल भी कहते हैं। चलदल का अर्थ होता है चंचल पत्तों वाला। पीपल के पत्ते प्रायः हिलते रहते हैं। मानो वे अस्थिरता की घोषणा करते हैं। पीपल वृक्ष पर नाना देश के पक्षी आकर पीपली खाते हैं।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि इस अनित्य संसार में अनित्य शरीरों और पदार्थों को प्राप्त होके क्षणभंगुर जीवन में धर्माचरण के साथ नित्य परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना किया करें।

"अनित्य मसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।" गीता ९।३३

"आयुः कल्लोल लोलं कतिपय दिवस स्थायिनी यौवन श्रीः।" अर्थाः संकल्प कल्पा, यनसमयतडित् विभ्रमा भोगपूराः। कण्ठा-श्लेषोपगूढ़ं तदपि न चिरं यत् प्रियाभिः प्रणीतम्।

पाँच नदियाँ

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति स स्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत् संरित्॥ यजुः ३४।११

(पञ्च) पञ्च ज्ञानेन्द्रियवृत्तयः। पाँच ज्ञानेन्द्रियों की वृत्तियाँ। (नद्यः) नदीवत् प्रवाह रूपाः। नदी के तुल्य प्रवाह वाली (स स्रोतसः) समानं मनो रुपं स्रोतः प्रवाहो यासान्ताः। एक मन रूप प्रवाहों वाली। स्रोतों सहित। (सरस्वतीम्) सरस्वती को। सरस्वती का अर्थ है प्रवाह वाली आत्मा को (अपियन्ति) प्राप्नुवन्ति। अपि = भी यन्ति = जाती हैं। (सा ऊ) वही (सरस्वती) सरस्वती (तु) अवधारणे। भी (देशे) देश में। स्व निवासे स्थाने। शरीर में। (पञ्चधा) पञ्च प्रकाराः पाँच प्रकार की। (सरित्) नदी। या सरति गच्छति सा। सृगतौ—धातु से (अभवत्) भवति होती है।

भावार्थ—पाँच नदियाँ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी। उनके स्रोत उनके विषय हैं। जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध कहे जाते हैं। यहाँ सरस्वती सरित = सरस्वती नदी से अभिप्राय आत्मा से है। आत्मा इन पाँचों के प्रवाह का भोक्ता है। अर्थात् इन पाँचों विषयों को ग्रहण करता है। प्रवाह कभी स्वच्छ होता है कभी मलिन। कभी आत्मा में अज्ञान के कारण पाप वासनाओं का प्रवाह बहने लगता है। कभी शुभ संस्कारों के उदय होने से भव्य भावों का बहाव बहने लगता है। शरीर आत्मा का देश है।

कर्त्तव्य कर्म करते हुए जीवन बिताना
(कर्म का गौरव)

"कुर्वन्नेवेह कर्मांणि जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवं त्वपि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥" यजुः ४०।२

अन्वयः—इह कर्माणि कुर्वन्नेव शतं समाः जिर्जीविषेत्। एवं त्वथि नरे कर्म व लिप्यते। इतः अन्यथा न अस्ति। (इह) मनुष्य इस संसार में। अस्मिन् संसारे। (कर्माणि) धर्म्याणि वेदोक्तानि निष्काम कृत्यानि। वेदोक्त धर्म कार्यों को निष्काम भाव से कर्त्तव्य कर्म करना ही है। ऐसा समझ कर। (कुर्वन् एव) करते हुए ही। विधिलिङ् की क्रिया है। साथ समन्त भी है। विधि आज्ञा प्रेरणम्। (शतं समाः) सौ वर्ष तक। जीवेम शरदः शतम्। आयु पर्यन्त। (जिजीविषेत्) जीवितमिच्छेत्। जीने की इच्छा करे। जीव प्राण धारणे—धातु से। (एवं) अमुना प्रकारेण। इस प्रकार धर्म युक्त कर्म में प्रवर्त्तमान। यही एक साधन है जिसके द्वारा। (त्वयि नरे) तुझ मनुष्य में (कर्म) किये जाने वाले कर्म, कृ धातु से कर्म। क्रियतेति कर्म। क्रियमाण संचित प्रारब्ध (न लिप्यते) लिप्त नहीं होते अर्थात् बन्धन का कारण नहीं होते (इंतः अन्यथा) इससे भिन्न कोई मार्ग अर्थात् कर्मबन्धन से छूटने का दूसरा रास्ता। (न अस्ति) नहीं है। कृ धातु से कर्म शब्द बना। क्रियतेति कर्म। कर्तुरीप्सिततमं कर्म।"

कर्म चार प्रकार के होते हैं—नित्यकर्म, नैमित्तिक कर्म, काम्यकर्म और निषिद्ध कर्म।

नित्यकर्म सन्ध्या भजनादि। नैमित्तिक कर्म जातकर्म, नाम करण संस्कारादि। काम्यकर्म पुत्रेष्टियज्ञादि। निषिद्ध कर्म चोरी, व्यभिचार, हिंसादि।

"किं कर्म किमकर्मेति कवयोप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रबक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेशुभात्॥" गीता ४।१६

"कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति।
कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति कर्मेण वा वेषाय वाम्॥"
यजुः १।६

शुभकर्म—अशुभकर्म। पुण्यकर्म—पापकर्म। लौकिककर्म, वैदिककर्म कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मश्चवोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः। गीता ४।१७

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फल हेतुर्भूमातेसङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥" गीता २।४७

"कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।" गीता ४।१५

"नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म कृत्।
कार्यं ते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥" गीता ३।५

"कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥" गीता ३।६

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥ गीता ३।७

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीर यात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः॥ गीता ३।८

"कर्मजं वुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्ध विनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥" गीता २।५१

"तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥" गीता ३।१९

"ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते नस पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥"गीता ५।१०

"वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम्॥" मनुः ४।१४

"वेदाभ्यासः तपोदानमिन्द्रियाणाञ्च संयम।
अहिंसा गुरु सेवा च निः श्रेयस्करं परम्॥" मनुः १२।८३

"यत् कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात् परितोषोऽन्तरात्मनः।
तत् तत् प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्॥"मनुः ४।१६१

"नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम्।
द्वेषं दम्भं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत्॥" मनुः ४।१६३

भय, शंका, लज्जा रहित कर्म करने चाहिए।

"मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि।" "मा गृधः कस्यस्विद्धनम्" ? अक्षैर्मादीव्यः।

पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति। पुरुषकार पुरुषार्थ, दैव भाग्य, प्रारब्ध। प्रारब्ध प्र + आ - रभ कर्मणि क्त प्रारब्ध। प्रकृष्टमारब्धं स्वकार्य जननाय कृतआरम्भो येन तत् प्रारब्धम्।

इस वेद मन्त्र का भाव यह है कि मनुष्य इस संसार में सम्पूर्ण आयु वेदोक्त कर्त्तव्य कर्मों को करता हुआ ही जीने की इच्छा करे। आलसी निठल्ला बैठा रहना उचित नहीं है। जो काम इस रीति से किये जाते हैं। वे बन्धन का कारण नहीं होते प्रत्युत बन्धन से मुक्ति का कारण होते हैं। कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्। मनुष्य के शरीर को शास्त्रों में क्षेत्र कहा गया है।

"इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्याभिधीयते।" गीता १३।१

शरीर को क्षेत्र कहने का विशेष प्रयोजन है। क्षेत्र (खेत) में कृषि कर्म होते रहना चाहिए। जैसे खेत में बोये हुए बीजों का उनके अनुरूप फल समय पर प्रकट होता है वैसे ही इसमें बोये हुए कर्मों के संस्कार रूप बीजों का फल समय पर प्रकट होता है। इसीलिए इसका नाम क्षेत्र ऐसा कहा गया है। इस क्षेत्र में बोना काटना बराबर चलते रहना चाहिए। इसी से इसे कोई कोई कुरुक्षेत्र भी कहते हैं।

"आस्ते भग आसीनस्योर्ध्व तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवैति चरैवैति।" शव.

अर्थात् बैठे हुए मानव का भग भाग्य बैठा रहता है। खड़े हुए का खड़ा हो जाता है। सोने वाले का सो जाता है। गतिशील का भाग्य गति करता है। अतः परिश्रम कर।

"चरन् वै मधु विन्दति चरन्त्स्वादुमुदुम्वरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्॥" चरैव.

अर्थात् परिश्रमी को मधु मिलता है। परिश्रमी को ही स्वादु उदुम्बर मिलता है। सूर्य का परिश्रम देख चलता हुआ आलस्य नहीं करता अतः परिश्रम कर।

१. लोकैषणा, २. वित्तैषणा, ३. पुत्रैषणा। ये तीन ऐषणा अर्थात् इच्छा है। इनका त्याग कर कर्त्तव्य कर्म करते रहना चाहिए।

"उद्यमः साहसं धैर्यं शौर्यं बुद्धिः पराक्रमः।
षडेते यत्र वर्त्तन्ते तत्र देवः सहायकृत्॥

जो मन, इन्द्रिय और शरीर से जीव चेष्टा विशेष करता है। वह कर्म कहलाता है।" शुभ, अशुभ और मिश्र भेद से तीन प्रकार का है—क्रियमाण, संचित, प्रारब्ध।

पञ्चभूतों का अनादि चक्र

"पञ्चारे चक्रे परिवर्तनमाने तस्मिन्नातस्थु र्भुवनानि विश्वा।
तस्य नाक्षस्तप्यते न भूरि भारः सनादेव न शीर्यते स नाभिः ।।"

ऋक्. १ ।१६४ ।१३

(तस्मिन्) परिवर्तनमाने तस्मिन् पञ्चारे चक्रे विश्वाभुवनानि आतस्थुः। उस (पञ्चारे) पाँच अरों वाले (चक्रे) संसार चक्र के (परिवर्त्तमाने) चलने पर (विश्वा) सब, सम्पूर्ण (भुवनानि) भुवन, लोक (आतस्थु) सब ओर स्थित होते हैं। (तस्य) उसका (अक्षः) अक्ष, धुरा (न तप्यते) नहीं तपता और न (भूरिभारः) न बहुत भार वाला होता है। (सनात् एव) सनातन से ही वह बिखरता, करता, नष्ट होता है। (परिवर्त्तमाने) निरन्तर परिवर्तनशील वाले। निरन्तर गतिशील। प्रवाह से अनादि।

भावार्थ—पञ्चभूतमय निरन्तर फिरते हुए इस संसार चक्र में सब भुवन स्थित हैं। अर्थात् सारा संसार पञ्चभूतों से बना है। इन्हीं में स्थित है।

"पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशमिति पञ्चभूतानि।" न्याय.

पञ्च भूतात्मक प्रकृति ही इसका उपादन कारण है। सूर्य, चन्द्र नक्षत्र, भूमि, आकाश, पर्वत, नदी, नाले, झील, तालाब आदि सब इसी से बने हैं और इसी में रहते हैं।

रथ के पहिये का अक्ष तप जाता है और उसे विश्राम देना होता है। परिमाण से अधिक भार पड़ जाये तो वह टूट जाता है। किन्तु वह चक्र नाक्षस्तप्यते न भूरिभारः—इस चक्र का अक्ष न तपता है। न बहुत भार से टूटता है। न शीर्ण होता हैं क्योंकि सनातन से यह नाभिबन्धन युक्त है। भगवान् इसकी नाभि हैं। अतः इसके शीर्ण होने का प्रशन ही नहीं है। दिन के बाद रात्रि, रात्रि के बाद दिन पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष आते हैं तथा सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद पुनः सृष्टि इसी तरह संसार चक्र चलता है।

"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। ऋक्.
तस्मिन् ह तस्थु र्भुवनानि विश्वा।" यजुः ३१ ।१९

"यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेवस।" अथर्व. १० ।७ ।१२

"हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।"

ऋक्. १० ।१२१ ।१

"क्षित्यङ्कुरादिकं कर्त्तृजन्यं कार्यत्वात् घटवत्।" न्यायदर्शन

"जन्माद्यस्य यक्षः।" वेदान्त दर्शन १ ।१ ।२

"गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृद्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥" गीता ९।१८

"यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च, यथा पृथिव्यामौषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात् केश, लोभानि तथाक्षरात् सम्भववीह विश्वम्॥"
मुण्डकोपनिषद् १।१।७

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उतच्चिकेत।
तत्राहता स्त्रीणिशतानि शङ्कवः वष्ठिश्च खीला अवि
चाचला ये॥" अथर्व. १०।८।४

अथार्त् वर्ष के बाहर मास पुट्ठी = अरे है, पूरा वर्ष पहिया है। तीन ऋतुएँ नाभि हैं और ३६० दिन काटे हैं जो टेढ़े-टेढ़े चलते हैं

"पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्नातस्यु र्भुवनानि विश्वा।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न छिधते स नाभिः॥"
अथर्व. ९।९।११

छन्दो विद्या प्रचारक महामुनि पिंङ्गल जी ने अपने वेदाङ्ग पिंगल सूत्र में लिखा है "धी श्री स्त्रीम्।" पिंगल सूत्र १।१ अर्थात् अध्ययाद्धीर्भवति यस्य धीस्तस्य श्री बुद्धिपूर्वकत्वाह विभूतेः। यस्य श्रीस्तस्य स्त्री अर्थमूलकत्वाद् गार्हस्थ्यस्य।

इसका सम्बन्ध गृहस्थाश्रम से है।

"संसार कटुवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे।
सुभाषितं च सुस्वादु संगतिः सुजने जने॥"
हा कान्ते हा धनं पुत्राः क्रन्दमानः सुदारुणम्।
मण्डूक इव सर्पेण मृत्युना गीर्यते नरः॥

मृत्यु सब पर शासन करता है।

मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्।
तस्मात्वां मृत्योर्गोपतेरुद्धरामि स मा विभेः॥ अथर्व. ८।२।२३

(द्विपदाम्) दो पाँवों वाले मनुष्यों एवं पक्षियों में। (मृत्युः) मरणं मृत्युः। म्रियन्ते पुनः पुनः प्राणिनो यस्मात् स मृत्युः मिञ् मरणे मृङ् प्राण त्यागे—धातु से मृत्यु। दुःख प्रदं मरणं। शरीरे प्राणात्मवियोगः।" स्वर स वाही विदुषोऽपि तथा रुढोऽभिनिवेशः योगसूत्र (ईशे मृत्युः) मृत्यु रूपी ईश्वर शासन करता है (चतुष्पदाम्) चौपायों गाय, बैल, हाथी घोड़ा, बकरी आदि। (ईशे) शासन करता है। यहाँ द्विपदात् और चतुष्पदात् उपलक्षण है सर्व प्राणिमात्र का। अर्थात् मृत्यु सबको आती है।

(तस्मात् मृत्योः) उस मृत्यु से अथवा मृत्युभय से मरण दुःख से। मरणभय दुःख (त्वां गोपते) तुझ इन्द्रियों के स्वामी (जीवात्मा को) (उद्धरामि) उद्धार करता

हूँ। ऊपर उठाता हूँ। बचाता हूँ। (स: मा विभे:) ऐसा तू मत डर। मृत्यु से भय मत खा।

"काये कृतान्ता भयम्-भर्तृहरि मृत्यु से सब भय खाते हैं। चाहे कोई विद्वान् हो, बली हो या निर्बल हो मृत्यु सबको हर लेता है।

गीता में कहा है—

"मृत्युः सर्वहरश्चाहम्" गीता १० ।३४

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। गीता २।२७

"मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।
अद्य वाब्द शतान्ते वा।।

मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः। श्रीमद्भागवत। देवकी ने कंस से कहा।

जरामृत्यु हि भूतानां खादितारौ वृकाविव।
बलिनां दुर्बलानां च ह्रस्वानां महतामपि।।" महाभारत

जलमग्नि र्विषंशस्त्रं क्षुद् व्याधि पतनं गिरेः।
निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणान् विमुञ्चति।। मनुः ५।४

वेद कहता है—या पुरा जरसो मृथाः। मा विभेर्न मरिष्यसि।

मृत्यु से बचने का उपाय

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।
यजुः ३१।१८

तंवेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा। प्रश्नोप. ६।६

"ऊर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।" यजुः ३।६०

"मृत्यो र्मा अमृतं गमय।" शतपथ ब्रा.

"जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृत मश्नुते।" गीता १४।२०

मृत्यु के विषय में कठोपनिषद् में नचिकेता यम संवाद आता है। यमराज ने कहा—तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व। कठ. १।१।१९

नचिकेता ने तीसरा बर माँगा—

"ये यं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाह वराणामेष वरस्तृतीयः।।"
कठ. १।१।२०

"देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा नहि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा गोपरोत्सीरतिमा सृजैनम्।।"
कठ. १।१।२१

"शतायुषः पुत्र पौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्ति हिरण्यमश्वान्।

भूमेमहदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥"
"ये ये काया दुर्लभामर्त्य लोके सर्वान् कामान् छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः ॥"
कठ. १।१।२५

आभिःमत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं प्रानु प्राक्षीः।
"श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते॥"
"न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्वा।
जीविष्यामो यावदीष्यसि त्वं, वरस्तु मे वरणीयः स एव॥"
कठ. १।१।२७

"न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इतिभानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥"
कठ. २।६

"पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते॥"
कठ. २।१।२

"ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥" गीता ५।२२

मृत्यु दो प्रकार की होती है—कालमृत्यु, अकालमृत्यु।

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोपराणि।
गीता २।२२

"एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते।
तत्रैकः काल संज्ञस्तु शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः॥"
"नाकाले म्रियते कश्चित् विद्धः शरशतैरपि।
कालपापस्य कौन्तेय बज्रायन्ते तृणान्यपि॥"
"इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गाद परो अर्थमेतत्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युंदधतां पर्वतेन॥"
यजु: ३५।१५

(जीवेभ्यः) प्राणधारकेम्यः मनुष्येभ्यः। जीवित मनुष्यों के लिए (इमं परिधि) मर्यादां। इस सौ वर्ष की आयु मर्यादा को (दधामि) व्यवस्था पयामि। मैं व्यवस्था करता हूँ। (एषाम्) इन मनुष्यों में (अपरः) कोई दुर्बलेन्द्रिय मनुष्य। (एतं अर्थम्) इस जीवन रूप धन को (नु) सद्यः शीघ्र (मा अगात्) न छोड़े। अर्थात् सौ वर्ष से कम कोई न जीवे। सब मनुष्य (पुरूची) बहुत वर्षों सम्बन्धी (शतं शरदः) सौ शरद ऋतु

पर्यन्त (जीवन्तु) जीते रहें। जीवें (अन्तः मृत्युं) अपमृत्यु या अकालमृत्यु को (पर्वतेन) धर्माचरण और ब्रह्मचर्यादि कठोर नियमों से (दधताम्) दवादें।

"मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आप्यायमानः प्रजया धनेन शुद्धाः पूताभवत यज्ञियासः ।।"

ऋक्. १० ।१८ ।२

(मृत्योः पदम्) मृत्यु के पाँव को (योपयन्तः) अपने पुरुषार्थ से परे हटाते हुए (द्राघीयः आयुः) लम्बी आयु को (प्रतरं) अधिक दीर्घ लम्बी बनाकर (दधानाः) धारण करते हुए (यदा एत) जब तुम चलो तब (प्रजया धनेन) प्रजा से और धन से (आप्यायमानः) वृद्धि को प्राप्त होते हुए (शुद्धाः) शरीर से शुद्ध (पूतः) मन से पवित्र (यज्ञियासः) पूजनीय (भवत) होओ, बनोगे।

"शरीर प्राणयोरेव संयोगादायु रुच्यते।
कालेन तद् वियोगाच्च पञ्चत्वं कथ्यते बुधैः ।।" (सुश्रुत)
आयुः जीवितावधि कालः।
ईयते प्राप्यते यत्तदायुर्जीवनम्।
शरीर जीवयोर्योगो जीवनं तेनावच्छिन्नः काल आयुः।
"आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धगतं तस्यार्द्धस्य
परस्यचार्द्धगतं बालत्व वृद्धत्वयोः।
शेषं व्याधि वियोग दुःख सहितं सेवादिभिर्नीयते।

अपमृत्यु का कारण—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्यु विप्राञ्जियांसति।। मनुः ५ ।४
जीवे वारितरंग चंचलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्।।

वैराग्य शतक ४९

आयु वृद्धि के उपाय

"अग्न आयुँ षि पवस आसुवोर्ज मिषञ्चनः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम्।।" यजुर्वेद ३५ ।१६

हे (अग्ने) हे परमेश्वर ! ज्ञान स्वरूप सर्वव्यापक परमात्मन्। आप अपनी कृपा से (आयूंषि) जीवनानि। हमारे जीवनों को आयुः जीवितावधिः कालः। ईयते प्राप्यते यत्तदायुर्जीवनम्। दुच्छुनाम रोग के जीवाणु।

"शरीरेन्द्रियसत्वात्म संयोगोधारि जीवितम् नित्यगश्चानुबन्धश्च
पर्यायैरायुरायुरुच्यते।"

चरक सूत्र अ. १

(पवसे) पवित्री करोषि। पवित्र करने वाले हैं। (नः ऊर्जम्) हमको बल शक्ति। शारीरिक आत्मिक और सामाजिक बल (च इषम्) अभिलषित अन्न, फल,

ऐश्वर्य आदि को (आसुव) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिए। प्रदान कीजिए। (दुच्छुतां) द्रुतो दुष्टोः श्वान् इव वर्त्तमानाः तान् हिंस्यान् प्राणिनः।

कुत्तों के तुल्य दुष्ट हिंसक प्राणियों को हमसे (आरे) दूरे निकटे वा। हमारे समीप के अथवा दूर के रहने वालों को (बाधस्व) पीड़ित कीजिये। नष्ट कर दीजिये। आरे वाधस्व = दूरे गमय।

भावार्थ—जो मनुष्य दुष्टों का आचरण और संग छोड़कर परमेश्वर अथवा सत्यवादी विद्वान् महात्माओं का सङ्ग करते हैं। वे धन-धान्य से युक्त होकर दीर्घ अवस्था वाले होते हैं।

"यावत्स्वथमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयोनायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् संदीप्ते भवने तु
कूप खननं प्रत्युद्यम कीदृशः॥" वैराग्य शतक ७५

परद्रोही परदाररत परधन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय देह धरे मनुजाद॥"

"अकरुणत्वमकारण विग्रहः, परधन परयोषिति च स्पृहा।
सुजन बन्धु जनेष्वसहिष्णुता प्रकृति सिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्॥"
नीति. ५०

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धगतं। वैराग्य. ४९

बुराई मत कर

यश्चकार न शशाक कर्त्तु शश्रेपाद मङ्गुरिम्।
चकार भद्र मस्मभ्य मात्मने तपनं तु सः॥" अथर्व. ८।१८।६
यश्चकार न शशाक कर्त्तुं शश्रेपादमङ्गुरिम्।
चकारभद्रमस्मभ्यं मभगोभगवदभ्यः। अथर्व. ५।३१।११

(यः) जो दुष्ट बुद्धि या दुर्बुद्धि वाला मनुष्य। आसुरी वृत्ति वाला (चकार) हिंसा करता है। अर्थात् बुराई करता है। कृञ् हिंसायां चकार। (कर्त्तुं न शशाक) नहीं कर सका। बुराई करने में समर्थ न हुआ। (पादं अङ्गुरिम्) अपने पाँव और अंगुली का (शश्रे) नाश करता है। अर्थात् अपने हाथों अपने पैर और अंगुली का नाश करता है। अपने पाँवों पर कुल्हाड़ी मारता है। शृ हिंसायाम् धातु से शश्रे बना। हिंसित करता है। (अस्मभ्यम्) हमारे लिए। उसने हमारे लिए। (भद्रं चकार) भला किया, अच्छा किया। (तु आत्मने) किन्तु, परन्तु अपने लिए। (सः) वह, उसने, उस अभागे पुरुष ने (तपनम्) सन्ताप, दुःख किया। अनिष्ट कर बैठा।

भावार्थ—संसार में मनुष्य समाज में दो प्रकार के प्राणी हैं—एक भले आदमी कहलाते हैं दूसरे को बुरा कहते हैं। छान्दग्योपनिषद् में आया

है—"द्वथयाह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च।" भले आदमियों की देव संज्ञा है और बुरों को असुर कहते हैं। बुरे मनुष्यों का यह स्वभाव होता है कि चाहे उनका कोई प्रयोजन सिद्ध हो या न हो वह दूसरों को (भले मनुष्यों को) दुःख देते हैं। दूसरों को दुःखं देने का उनका व्यसन होता है। इससे उनको एक प्रकार का आनन्द आता है। वेद कहता है—यश्चकार न शशक कर्तुम्" बुराई करने वाला बुराई नहीं कर सका। शश्रे पादमङ्गरिम्"। उसने दूसरे की बुराई करने से पहले अपने पाँव में आप ही कुल्हाड़ी मार ली। कैसे ?

"अकरुणत्वमकारण विग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजन बन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृति सिद्धिमिदं हि दुरात्मनाम्॥"
नीति श.

"अमित्रं कुरुते मित्रं मित्र द्वेष्टि हिनस्ति च।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहु मूढ़ चेतसम्॥" विदुरनीतिः

बुरा कर्म करने से पहले उसने अपने मन में बुराभाव पैदा किया। अर्थात् बुराई करने से पूर्व वह अपने मन में बुराई के बीज बो बैठा। दूसरे का अनिष्ट अब होगा तब होगा, उसका तो अनिष्ट हो गया। मन मैला हो गया। आगे वेद कहता है "चकारभद्रमस्मभ्यम्" उसने हमारे लिए भला ही किया। मनुष्य को दुःख अपने किसी पाप कर्म के कारण मिलता है। उसको प्रसन्नतापूर्वक सहन करने से उसकी सहनशीलता धैर्य का पता लगता है। युधिष्ठिर (पाण्डव) जब वन में थे वहाँ भी दुर्योधन उनको दुःख देने का यतन किया करता था किन्तु युधिष्ठिर धैर्य रखते थे। वे व्याकुल नहीं होते थे। इससे संसार को युधिष्ठिर की धृति, धैर्य का ज्ञान हुआ। उनके गुणों का प्रकाश हुआ। इसी बात को लेकर महर्षि व्यास ने युधिष्ठिर से कहा—"प्रकाशितस्त्वन्मति शीलसाराः कृतोपकारा इव विद्विषस्ते"। तेरे शत्रु तेरे बड़े उपकारी हैं। क्योंकि उन्होंने संसार में तुम्हारी बुद्धि और चरित्र के बल को प्रकाशित कर दिया है। इस तरह धैर्य से विरोधी के विरोध और उसकी बुराई को सहन करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है। इससे हमारा भला ही होता है। आगे वेद कहता है—"आत्मने तपनं तु सः" वह अपने लिए सन्ताप, जलन ही करता है। जब दुष्ट देखता है कि मेरे दुर्व्यवहार से दूसरा विचलित नहीं होता तब वह और जलता है। इस तरह दूसरों का अनिष्ठ करने से अपने लिए जलन ही होती है। उसके लिए उसका फल उसे भोगना पड़ता है। कहा है—"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृत कर्म शुभाशुभम्।" आत्मापराध वृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम् दारिद्रय रोग दुःखानि बन्धन व्यसनानि च॥" चाणक्यनीतिः। एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान् परित्यज्यते। सामान्यास्तु परार्थमुभयतः स्वार्थाविरोधेन ये। तेमी मानुष राक्षसा परहितं स्वार्थाय।

पर सुख सम्पत्ति देखि सुनि जरहिं जे जड बिनु आगि। तुलसी तिनके भाग ते चलै भलाई भागि।

प्रभु के दर्शन

"अन्ति सन्तं न जहाति अन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥"

अथर्व. १०।८।३२

(अन्ति सन्तं) पास रहने वाले उपासक, भक्त को ईश्वर (न जहाति) नहीं छोड़ता अर्थात् उसका सदैव ध्यान रखते हैं। "न मे भक्तः प्रणश्यति।" यो मां पश्यति सर्वत्र। गीता. ६।३०

(अन्ति सन्तं) पास रहने वाले भगवान् को जीव नास्तिक लोग (न पश्यति) नहीं देखता। अनुभव नहीं करता। नहीं मानता (देवस्य) परमात्मा के। सब सुखों के दाता परमेश्वर के। (काव्यं) वेद रूप काव्य को। काव्य का अर्थ है शब्दमय ज्ञान वेद ईश्वर प्रदत्त शब्दमय ज्ञान है। (पश्य) देखो, समझो। वह काव्य कैसा है ? (न ममार) नहीं नष्ट होता और (न जीर्यति) वह बूढ़ा नहीं होता है।

"तस्माम ज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दाँसि जज्ञिरे तस्मात्।

यजुः ३१

भावार्थ—जो ईश्वर का भक्त ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करता है वह परमेश्वर के समीप है। उस पर परमेश्वर सदा कृपा दृष्टि रखते हैं। यही उनका न छोड़ना है। अज्ञानी नास्तिक लोग जो ईश्वर की भक्ति से हीन हैं वे परमात्मा के सर्वव्यापक होने से सदा समीप वर्तमान को भी नहीं जान सकते हैं। यह परमात्मा अजर अमर है और उसका काव्य वेद भी सदा अजर अमर है। तद् दूरे तदन्तिके। तदन्तरस्य— यजुः ५

"दूरात् सुदूरे तदि हान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्।"

मुण्डक्.

"सूक्ष्मत्वा तदविज्ञेयं दूरस्थ चान्तिके च यत्।"
"विमूढ़ाः नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः॥" गीता १५।१०
"यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्य व स्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्य चेतसः॥" गीता १५।११
"दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः।
यो मस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः॥"

"समोऽहं सर्व भूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।" गीता ९।२९
"यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।" गीता ६।३०
"नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
ना शान्त मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।" कठ. १।२२
"न मां दुष्कृतिनोमूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भाव माश्रिताः।।" गीता ७।१५
"चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।" गीता ७।१६
"तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।।" गीता ७।१७
"अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।" गीता ९।३०
"क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।" गीता ९।३१
"मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।" गीता ९।३२
"किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्याः भक्त राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।।" गीता ९।३३
"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्यैवमात्मानं मत्परायणः।।" गीता ९।३४
"सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीण दोषाः।।"
मुण्डक.
"एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।"
श्वेताश्व ६।१७
"ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति।" गीता १८।६१
"सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहन च।"
गीता १५।१५
"गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्।" वेदान्तसूत्र १।२।७
महर्षि वाल्मीकि कथा। अंगुलिमाल डाकू की कथा। हिरण्याक्ष कथा।

समाज का संगठन
(सच्चा समाजवाद)

(दश निर्देश)

ज्यायस्वन्तश्चिन्तिनो मा वियौष्ठ संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः अन्यो अन्यस्मै वल्गुवदन्त एत सध्रीचीनान्व। ऋक्.

संमनसा कृणोमि सधुराश्चरन्तः इति पाठान्तरम्।

(ज्यायस्वन्तः) बड़ों का सम्मान करने वाले। माता-पिता, आचार्य अतिथि का मान करने वाले। बड़ों का मान रखने वाले। (चिन्तिनः) विचारशील। ज्ञानपूर्वक कार्य करने वाले। चिति संज्ञाने" (संराधयन्तः) कार्य सिद्धि करने वाले। "राधसाध संसिद्धौ—धातु से" (सधुराः चरन्तः) एक धुरा के नीचे होकर चलने वाले चरन्तः चलते हुए तुम लोग "चर गाते भक्षणयो—धातु से" (मा वियौष्टा) मत अलग होओ। आपस में विरोध न करो। धर्म से या सिद्धान्त से, (अन्यः अन्यस्मै) एक दूसरे के साथ। (वल्गुवदन्तः) मनोहर सत्य भाषण करते हुए। वाक् चैव मधुराश्लक्ष्णा-प्रयोज्या धर्ममिच्छता। मनुः, (वः) तुमको। तुम सबको मिलकर पुरुषार्थ करने वाले, संघशक्ति वाले। (सध्रीचीनान्) एक मार्ग से चलने वाले। एक मार्ग से बढ़ने वाले। ध्रज् गतौ" (संमनसः) उत्तम मन वाले। समान विचार वाले। (कृणोमि) करता हूँ। उपदेश करता हूँ।

भावार्थ—ईश्वर का उपदेश है हे मनुष्यो ! तुम लोग बड़ों का सम्मान करो। सोचकर कार्य करो, कार्यसिद्धि होने तक प्रयत्न करो। एक कार्य में दत्तचित्त होओ। आपस में बैर विरोध न करो। परस्पर प्रेमपूर्वक व्यवहार करो। सत्य भाषण करो। एक मन वाले होकर उन्नति = गतिमान् बनो।

"अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्॥" मनुः
"सहृदयं सांमनस्यभविद्वेष कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाध्न्या॥" अथर्व. ३।३०।१
"आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥" गीता ६।३२
"आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।" चाणक्यनीतिः।

समज और समाज

ये दो भिन्न शब्द हैं—भेड़, बकरी आदि पशु समुदाय को "समज" कहते हैं। मनुष्यों के समुदाय को "समाज" शब्द से कहा जाता है। समाज में तीन शब्द हैं—सम् + आ + अज्। सम् का अर्थ है एक साथ मिलकर, एक ही तरह से, समानता से, अच्छी तरह से। आ का अर्थ है आङ्मर्यादा अभिविध्योः" पाणिनि सूत्र २।१।१३ आङ्मर्यादा बचने—अष्टाध्यायी १।४।८९

आ का अर्थ है मर्यादा, विध्यनुसार, ढंग से, अज् का अर्थ है अज् गति क्षेपणयो:" धातु से। गति करना या फेंकना। यहाँ गति, प्रगति करना अर्थ है। सम् उपसर्ग है। समाज का अर्थ हुआ जिस समुदाय के लोग एक साथ मिलकर विध्यनुसार गति उन्नति करते हैं। उसको समाज कहते हैं। आर्य समाज = आर्य कहते हैं श्रेष्ठ मनुष्य को और समाज का अर्थ है उन्नति करने वाला समुदाय। अर्थात् उन्नतिशील श्रेष्ठ मनुष्यों का समुदाय इसीलिए स्वामी जी ने आर्य समाज का नियम बनाया। प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए। किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

(ज्यायस्) Superior, Excellent, Greater, Larger, Stronger ज्यायांसो प्रशस्या बृद्धा: ।(चित्तित:) विवेकी, ज्ञानवान्। Intellegent, सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, हित-अहित का ज्ञान। (मा वियौष्ठ) कभी अलग मत होवो। किससे ? समाज से। धर्म से। (संराधयन्त:) To, Succeed, To be Successful (सध्रीचीनान्) Directed to one aim एक लक्ष्य वाले। संघ शक्ति वाले। आर्य समाज का धुरा वेद है। उसको जोड़ने वाली श्रद्धा है।

"पशूनां समजोऽन्येषां समाजोऽथ सधर्मिणाम्।" अमर तथा जड़ समुदाय को राशि कहते हैं।

पति पत्नी को उपदेश
(आशीर्वाद)

"इहैवस्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतमा क्रीडन्तौ पुत्रै र्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे॥" ऋग्वेद १० ।८५ ।४२

विवाहं कृत्वा परस्परं स्त्री पुरुषौ कीदृशं वर्तमानौ भवेतमेतदर्थं ईश्वर आज्ञापयति—(इहैवस्तं) इह + एव। हे स्त्री पुरुषौ ! युवां द्वाविहास्मिन् लोके गृहाश्रमे सुखेनैव सदावसतम्। निवासं कुर्यातम्। हे स्त्री पुरुष: ! मैं परमेश्वर आज्ञा देता हूँ कि जो तुम्हारे लिए पूर्व विवाह में प्रतिज्ञा हो चुकी है जिसको तुम दोनों ने स्वीकार किया है। इहैव, इसी में स्तम्, तत्पर रहो, दृढ़ रहो। (मा वियौष्ट) कदाचिद् विरोधेन देशान्तर गमनेन वा वियुक्तौ वियोगं प्राप्तौ मा भवेताम्। एवं मदाशीर्वादिन धर्मं कुर्वाणौ सर्वोपकारिणौ मद्भक्ति माचरन्तौ। विरोध करके कभी अलग मत होओ (विश्वमायुर्व्यश्नुतम्) सम्पूर्ण सौ वर्ष की आयु को सुख से भोगो। (स्वे गृहे) स्वकीये गृहे। अपने घर में। (पुत्रै: नप्तृभि:) पुत्र और पोतों के साथ (मोदमानौ) सर्वानन्दं प्राप्नुवन्तौ। आनन्दित होते हुए। (क्रीडन्तौस्तम्) सद्धर्म क्रिया कुर्वन्तौ सदैव भवतम्। क्रीड़ा करते हुए सदा मेरी आज्ञा में वर्तमान रहो।

वैदिक धर्म में पतिव्रत धर्म तथा पत्निव्रत धर्म पर बहुत बल दिया गया है। वेद में विवाह का प्रयोजन सन्तान उत्पादन है। न कि भोग विलास। "तावेव विवाह है, सह रेतो दधावहै, प्रजां प्रजनयावहै। पुत्रान् विन्दावहै वहून्", अर्थात् ऐसे हम

दोनों विवाह करें, वीर्याधान करें, सन्तान उत्पन्न करें और बहुत से पुत्रों को प्राप्त करें उसके लिए पति-पत्नी दोनों को कुछ नियम पालन करने होते हैं।

"कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम।
त्वद् विधानां तु नारीणां सुदुःखा स सपत्रता॥"

वाल्मीकि रामायण, अरण्य काण्ड सर्ग १७

'जब श्री रामचन्द्र महाराज से शूर्पणखा ने कहा कि मुझसे आप विवाह करें तब श्री रामचन्द्र जी ने उत्तर दिया कि मैंने विवाह कर लिया है देख यह मेरे साथ सीता है। एक स्त्री के होने पर पुनः दूसरा विवाह करने से स्त्री के दुःख से पुरुष दुःखी होता है।

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हाः गृह दीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोस्ति कश्चन॥ मनुः ९।२६
"उत्पादन मपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोक यात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्॥" मनुः ९।२७
"अपत्यं धर्म कार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह॥" मनुः ९।२८
"सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥" मनुः ३।६०
"यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजननं न प्रवर्त्तते॥" मनुः ३।६१
"स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वमेव न रोचते।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्॥" मनुः ३।६२
"पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याण मीप्सुभिः॥" मनुः ३।५५
"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥" मनुः ३।५६
"शोचन्ति जामयो यत्र विनश्याशु तत् कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा॥" मनुः ३।५७
"जामयो यानि मेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिता।
तानि कृत्या हतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥" मनुः ३।५८
"तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूति कामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च॥" मनुः ३।५९

"सदा प्रहृष्टयाभाव्य गृह कार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृपोस्करया व्यये चामुक्त हस्तया॥" मनुः ५।१५०

"हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन दृश्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्॥" मनुः ४।१३४

मोक्ष प्राप्ति का साधन
(मृत्यु से बचने का उपाय)

"वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥"

यजुः ३१।१८

जिज्ञासु पुरुष को विद्वान् कहता है कि हे जिज्ञासे (अहम्) मैं (एतम्) पूर्वोक्तं परमात्मानं, इस (महान्तम्) महागुणविशिष्टं। बड़े गुणों से युक्त। महान् (आदित्यवर्णम्) आदित्यवर्णः स्वरूपमिव स्वरूप यस्य तं स्व प्रकाशम्। सूर्य के तुल्य प्रकाश स्वरूप। (तमसः) अज्ञानान्धकाराद्वा, अज्ञान अन्धकार से। (परस्तात्) परस्मिन् वर्तमानम्। पृथक् वर्तमान। (पुरुषम्) स्वस्वरूपेण पूर्णम्। पूर्णं परमात्मा को। (वेद) जानामि। जानता हूँ। (तं एव विदित्वा) उसको ही जानकर मनुष्य विदित्वा विज्ञाय (मृत्युम्) दुःखप्रदं मरणम्। मृत्यु को, दुःखदायी मरण को।

म्रियन्ते पुनः पुनः प्राणिनो यस्मात् स मृत्युः।
मिञ् मरणे, मृङ् प्राणत्यागे—धातु से मृत्यु।

(अति एति) उल्लङ्ध्य गच्छति। उल्लंघन कर जाते हैं। मृत्युञ्जयतीत्यर्थः। (अन्यः) इससे भिन्न। इससे अन्य दूसरा (पन्थाः) मार्गः। रास्ता। उपाय (अयनाय) अभीष्ट स्थानाय, मोक्षाय। अभीष्ट स्थान मोक्ष के लिए सद्गति के लिए, मुक्ति के लिए। (न विद्यते) विद्यमान नहीं है।

भावार्थ—ज्ञानी महापुरुष कहता है कि इस महान् से भी महान् महापुरुष परमात्मा को मैं जानता हूँ। वे अविद्या रूप अन्धकार से सर्वथा अतीत हैं तथा सूर्य की भाँति स्वप्रकाश स्वरूप हैं। उनको जानकर ही मनुष्य मृत्यु का उल्लंघन करने में इस जन्म-मृत्यु के बन्धन से सदा के लिए छुटकारा पाने में समर्थ होता है। परमपद की प्राप्ति के लिए इसके सिवाय दूसरा कोई मार्ग अर्थात् उपाय नहीं है।

पुरि संसारे शेते सर्वमभि व्याप्य वर्त्तते स पुरुषः परमेश्वरः।

पुरुषः = सर्वत्र पूर्णो जगदीश्वरः। पूर्णात् पुरुषः।

"यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोस्मिकश्चित् वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्।"

श्वेताश्वतरोपनिषद् अध्याय मन्त्र ३।९

"पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वं मिदं ततम्।।" गीता ८।२२

"तद् बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत् परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूत कल्मषाः।।" गीता ५।१७

"जन्मबन्ध विनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।" गीता २।५१

"जन्ममृत्यु जरा दुःखैर्विमुक्तोमृतमश्नुते।" गीता १४।२०

"येषां छन्दे पराऽऽसक्ति रहंकार पराश्च ये।
उदय प्रलयौ तेषां न तेषां ये त्वतोऽन्यथा।।" चरक संहिता

"तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः।" न्यायदर्शन

त्रिविध दुःखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।" सांख्य

"मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्।
तस्मात्त्वां मृत्योर्गोपते रुद्धरामि स मा विभेः।।" अथर्व. ८।२।२२

"त्रयम्बकं य जामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्। ऊर्वारुकमिव
बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।" यजुः ३।६०

"अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः।
तै वेद्यं पुरुषं वेदः यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा।।"
प्रश्नोपनिषद् ६।६

"जलमग्निर्विषंशस्त्रं क्षुद् व्याधि पतनं गिरेः।
निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणान् विमुञ्चति।।"

मृत्योर्मा अमृतं गमय
(मृत्युञ्जय मन्त्र)

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्।
ऊर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।"
ऋक्. ७।५९।१३, यजुः ३।६०

अन्वयः—वयं सुगन्धिं पुष्टिबर्धनं त्र्यम्बकं देवं यजामहे नित्यं पूजयेमहि। एतस्य कृपया अहं बन्धनात् ऊर्वारुकमिव मृत्योर्मुक्षीय मुक्तो भूयासम्। अमृतान्मामुक्षीमहि।

(सुगन्धिं) हम लोग शुद्ध गन्धयुक्त। शोभनः शुद्धो गन्धो यस्मात्तम्। (पुष्टिवर्द्धनं) पुष्टेः शरीरमात्मबलस्य वर्धनस्तम्। शरीर आत्मा और समाज के बल को बढ़ाने वाले। (त्र्यम्बकम्) त्रि + अम्बकं। अमिति येन ज्ञानेन तदम्बं त्रिणु कालेष्वेक रसं ज्ञानं यस्य तं त्र्यम्बकम् जगदीश्वरं अथवा त्र्यम्बको रुद्रस्तं त्र्यम्बकम्। त्रिकालज्ञ परमेश्वर की अथवा त्रिकालदर्शी परमात्मा की। (यजामहे)

नित्यं पूजयेमहि। नित्य पूजा करे। यज् देवपूजा संगति करण दानेषु-धातु से। इसकी कृपा से मैं। (ऊर्वारुकं इव) यथोर्वारुक फलं खरबूजा पक्वं भूत्वा अमृतात्मकं भवति तदवत्। जैसे खरबूजा फल पक कर सुस्वादु हो जाता है। (बन्धनात्) लता सम्बन्धात्। आरोधनात्। लता के सम्बन्ध से छूटकर अमृत तुल्य हो जाता है। वैसे हम लोग (मृत्योः) मरणं मृत्युः तस्मात्। प्राणशरीरात्मवियोगात्। म्रियन्ते पुनः पुनः प्राणिनो यस्मात् स मृत्युः। मृञ् मरणे मृङ् प्राणत्यागे—धातु से मृत्युः। मृत्युरूप महान् दुःख से। (मुक्षीय) अहं मुक्तो भूयासम्। मैं मुक्त हो जाऊँ छूट जाऊँ। (मा अमृतात्) मोक्ष सुखात् मा इति निषेधे। मोक्ष रूप सुख से हम लोग कर्म श्रद्धा रहित न होवें। परमात्मा से कभी अलग न होवें। इस महा मृत्युञ्जय मन्त्र का जप करने का विधान है। "तज्जपस्तदर्थभावनम्"। अर्थ की भावना के साथ उसका जप करना चाहिए। मृत्युञ्जय मन्त्र के जप का मनन ध्यान और निदिध्यासन करना जिससे मृत्यु दुःख से प्राणी को छुटकारा मिले हमारा छोटी (कच्ची) आयु में ही जीवन देवि से वियोग न हो। अपितु परिपक्व अवस्था में हो। जिसमें सुगन्ध और मिठास हो। हम यहाँ से हँसते खुश होते खिलते हुए जावें।

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि त्र्यम्बक अर्थात् तीनों कालों में एक रस से वर्तमान रहने वाले अथवा त्रिकालज्ञ जगदीश्वर की पूजा किया करें। उसी की कृपा से मनुष्य धर्म मार्ग पर चलता हुआ और अपने कर्त्तव्य कर्मों का पालन करता हुआ यश रूप सुगन्धि को पाता तथा शारीरिक आत्मिक और सामाजिक शक्ति को प्राप्त करता है। जैसे पका हुआ खरबूजा लताबन्धन से अपने आप पृथक् हो जाता है। वैसे ही हम लोग पूर्ण आयु को भोगकर शरीर को छोड़कर मुक्ति को प्राप्त होवे। कभी भी मोक्ष सुख से, ईश्वर से अलग न होवें। न कभी नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर करें।

"यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूरात् गन्धो वाति एवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद् गन्धो वाति।" नारायणोपनिषद्।

"तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। यजुः ३१।१८

"जन्ममृत्युजरा दुःखै र्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।" गीता १४।२०

"जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनाभयम्॥" गीता २।५१

"तद् बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञान निर्धूत कल्मषाः॥" गीता ५।१७

"मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्।
तस्मात्त्वामृत्योर्गोपतेरुद्धरामि स मा विभेः॥ अथर्व. ८।२।२३

"अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठता।
तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा॥" प्रश्नो. ६।६

सदाचार से आयु की वृद्धि और दुराचार से अल्पायु होती है।

"अशब्दमस्पर्शमरूपभव्ययं, तथा रसं नित्यमगन्धवच्चयत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निच्चाय तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ।।"
कठ. ३।१५

दुष्ट राक्षसों से बचाने की प्रार्थना

"साक्षरा विपरीतत्वे भवन्ति राक्षसाः ध्रुवम्।"
"पहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्त्ते रराव्णः पाहि रीषत उत वा
जिघांसतो बृहाद् भानो यविष्ठय।।" ऋक्. १।३६।१५

हे अग्ने ! हे बृहद् भानो ! हे यविष्ठयः नः रक्षसः पाहि नः धूर्त्तेः अराव्णः पाहि ! रीषत उत वा जिघांसतः नः पाहि।

(अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप प्रभो ! हे अग्रणी प्रभो ! (बृहद्भानोः) हे सबसे बड़े तेजस्विन् !(यविष्ठय) हे महाबलिन् परमात्मन् (नः) हमें। आपके भक्तों को। (रक्षसः) राक्षसों से। दुष्ट दुरात्माओं से।अत्याचारियों आततायियों से, हिंसाशील दुष्ट स्वभाव वालों से। (पाहि) बचाओ रक्षा करो। (धूर्त्तेः अराव्णः) धूर्त्त, ठग, कृपण, स्वार्थियों से। रा दाने।" (नः पाहि) हमें बचाओ। हमारी रक्षा करो। (रीषतः) पीड़ा देने वाले। आपके भक्तों को सताने वाले।"रिषि हिंसायाम् धातु से" (उत) और, अथवा (जिघांसतः) हनन करने की इच्छा करने वालों से (नः पाहि) हमारी रक्षा करो। हमें बचाओ।

भावार्थ—हे ज्ञान स्वरूप, तेजस्वि, महाबली परमात्मन्। राक्षस, धूर्त्त, कृपण, कंजूस, स्वार्थान्ध, अन्यायी, अत्याचारी पुरुषों से हमारी रक्षा कीजिये। जो दुष्ट शत्रु हमें पीड़ा देने तथा हमारा नाश करने की इच्छा करने वाले हैं। ऐसे पापी लोगों से हमें सदा बचाओ। हम आपकी कृपा से सुरक्षित होकर अपना और जगत् का कुछ भला कर सकें ऐसी कपादृष्टि सदा हम पर रखें यही विनय है।

"न में भक्तः प्रणश्यति" गीता ९।३१

"अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणि र्धनापह।
क्षेत्र दारापहर्त्ता च षडेते ह्याततायिनः।।" मनुः
आततायिमायन्तं हन्यादेवाविचारयन्।
नाततायी बधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।। मनुः ८।३५
"पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः। यजुः २९।५१

देव असुर। देव दानव। सुर असुर। मानव दानव।

द्वाह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च ततः कानीयसा एव देवा ज्यायसा आसुराः।"

बृहदारण्यकोपनिषद् ३

"द्वौ भूतसर्गौ लोकेस्मिन् दैव आसुर एव च"। गीता १६।४

"प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥" गीता १६।७

"असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत् काम हैतुकम्॥" गीता १६।८

"कामोपभोग परमा एतावदिति निश्चिताः।" गीता १६।११

काम एवैकः पुरुषार्थः। वार्हस्पत्यसूत्रम्

Eat drink & be Marry that is the way to be Happy & gay.

ईहन्ते कामभोगार्थ मन्यायेनार्थ सञ्चयान्।" गीता १६।१२

"अनेक चित्तविभ्रान्ता मोह जाल समावृताः।
प्रसक्ताः काम भोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥" गीता १६।१६

"यावज्जीवेत् सुखी जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥" चार्वाक मत

"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृत्ताः।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्म हनो जनाः॥" यजुः ४०।३

"दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पद्यासुरीम्॥" गीता १६।४

"अकरुणत्वमकारण विग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धु जनेष्वसहिष्णुता प्रकृति सिद्ध मिदं हि दुरात्मनाम्॥"

भर्त्तृहरि नीतिः

पर द्रोही पर दार रत परधन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय देह धरे मनुजाद॥ तुलसी

"न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया विभजन्ति तम्॥
यस्मै देवा प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽर्वाचीनानि पश्यति॥"

महाभारत उद्योग पर्व।

ईश्वर कैसा है ?

"प्रजापति स्वरति गर्भे अन्तरजायमानो वहुधा विजायते तस्य।
योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थु र्भुवनानि विश्वा ॥"

यजुः ३१।१९

हे मनष्यो ! (अजायमानः) स्वस्वरूपेणानुत्पन्नः सन्। अपने स्वरूप से उत्पन्न नहीं होने वाला। जन्म न लेता हुआ (प्रजापतिः) प्रजापालको जगदीश्वरः। प्रजातयाः सृष्टेः पतिः पालको जगदीश्वरः। प्रजापालक जगदीश्वर। (गर्मे) गर्भस्थे जीवात्मानि। गर्भस्थ जीवात्मा और (अन्तः चरति) अन्तः सबके हृदय में, चरति विचरता है। (बहुधा) बहु प्रकारैः। बहुत प्रकारों से। (विजायते) विशेषेण प्रकटो भवति। विशेष प्रकट होता है। (तस्य) प्रजापतेः। उस प्रजापति के (योनि) स्वरूपम्। स्वरूप को "अशब्दमस्पर्शमरूपमत्य इत्यादि (धीराः) ध्यानवन्तः। ध्यान शील महात्मा गण। (परिपश्यन्ति) सर्वतः प्रेक्षन्ते। सब ओर से देखते हैं। सर्वत्र देखते हैं। (तस्मिन्) जगदीश्वरे। उस जगदीश्वर में। (ह) प्रसिद्धं। ही। निश्चय से। (विश्वा भुवनानि) विश्वा सर्वाणि, सब। भुवनानि भवन्ति येषु तानि लोकजातानि। लोक लोकान्तर। (तस्थुः) तिष्ठन्ति। स्थित हैं। ठहरे हैं।

भावार्थ—सर्वपालक परमेश्वर आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उसमें प्रविष्ट होकर सर्वत्र विचरता है। अर्थात् सर्वत्र अन्तर्यामी रूप से विराजमान है। उस जगदीश्वर के स्वरूप को विवेकी महात्मा लोग हीं जानते हें। उस सर्वाधार परमात्मा के आश्रित ही सब लोक लोकान्तर स्थित हो रहे हैं। इसे सर्वशक्तिमान् सर्वनियन्ता, सर्वाधार सर्वान्तर्यामी प्रभु को ज्ञानकर ही हम सुखी हो सकते हैं।

इयं विसृष्टिर्यत् आवभूव यदि वा.

"यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्य चेतसः ॥"
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः। गीता
तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा। ऋक् १।१६४।१२
"अंगुष्ठमात्रः पुरुषो सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।"

श्वेताश्वतर ३।१३

"एषो ह देवा प्रदिशोनुसर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥"

यजुः ३२।४

"तस्मिन्निदं सञ्चविचैति सर्वं स ओत प्रोतश्च विभूः प्रजासु।"

यजुः ३२।८

"सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।" श्वेताश्वतर ३।१६

"सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं वृहत्।।" श्वेताश्वतर ३।१७

"विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमि जनयन्देव एकः।।"
यजुः १७।१९

"पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्व मिदं ततम्।।" गीता ८।२२

"करण वच्चेन्न भोगादिभ्यः।" वेदान्तदर्शन २।२।४०

"अन्तवत्वमसर्वज्ञता वा।" वेदान्त सूत्र २।२।४१

"उत्पत्य सम्भवात्।" वेदान्त सूत्र २।२।४२

संसार को उत्पन्न करने वाला कहाँ रहता है ? कोई चौथे आसमान पर कोई सातवें आसमान पर बतलाता है। वेद कहता है—प्रजापतिश्चरति गर्भे अतन्तः" प्रजापति सबके अन्दर विद्यमान है। सारी सृष्टि को रचकर उसके अन्दर रहता है। क्या वह जन्म लेता है ? इस पर कहते हैं "अजायमानः" जन्म न लेता हुआ। इससे अवतारवाद का खण्डन हुआ। फिर उसका ज्ञान कैसे हो ? "वहुधा विजायते"—विविध प्रकार की सृष्टि रचना को देखकर। "क्षित्यङ्कुरादिकं कर्त्तृजन्यं कार्यत्वात् घटवत्।"
न्यायदर्शन

"यथोर्णनाभिः सृजते गृहणते च यथा पृथिव्यामौषधयं।"

उसके स्वरूप का ज्ञान ध्यानावस्थित योगी जन करते हैं। उसी के आश्रय आकर्षण में सब लोक स्थित हैं।

मुझे पवित्र करें

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसाधियः।
पुनन्तु विश्वाभूतानि जातवेदः पुनीहि मा।। यजुः १९।३९

(देव जनाः) देवाः विद्वासः। परमेश्वर के प्यारे विद्वान् महात्मा सन्त जन जो देव कहलाने योग्य हैं, वे (मा पुनन्तु) मुझे पवित्र करें। किससे पवित्र करें ? पवित्रं कुर्वन्तु (मनसा) मनन से, विचार से और (धियः) बुद्धि से, ज्ञान से, सदविचारों से, उपदेशों से (पुनन्तु) पवित्र करें। शोधयन्तु। (विश्वा भूतानि) सब प्राणि गण और सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, जल वायु, अग्नि और भौतिक देव। (पुनन्तु) पवित्र करें। पवित्र व्यवहारकारिणं कुर्वन्तु। (जातवेदः) जातः वेदो यस्मात् स जातवेदः। जातानि वेद इति जातवेदः। जाते जाते विद्यत इति जातवेदः। निरुक्त। वेदों को संसार में प्रकट करने वाला अन्तर्यामी प्रभु (मा पुनीहि) मुझे पवित्र करें।" पूञ् पवने धातु से। पवित्र

करना वाचं ते शुन्धामि, प्राणं ते शुन्धामि, चक्षुस्ते शुन्धामि, श्रोत्रंते शुन्धामि, नाभिं ते शुन्धामि, मेढ्रंते शुन्धामि, पायुं ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि ॥" यजुः ६ ।१४

शुन्ध शौच कर्मणि" धातु से शुन्धामि = निर्मली करोमि।

"अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥" गीता ९ ।३०

"क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥" गीता ९ ।३१

"माँ हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियों वैश्यास्तथाशूद्रा स्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥"गीता ९ ।३२

मुझे पवित्र करें = अर्थात् मेरे शरीर को, मेरी इन्द्रियों को मेरे मन को मेरी बुद्धि को तथा मेरी आत्मा को पवित्र करें।

"किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्याः भक्ताः राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमियं प्राप्य भजस्व माम् ॥" गीता ९ ।३३

"मन्मना भव मद्भक्तों मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैमात्मानं मत्परायणः ॥" गीता ९ ।३४

"अमेध्यपूर्णं कृमिजाल संकुलं स्वभाव दुर्गन्धमशौचमध्रुवम्।
कलेवरं मूत्र पुरीश भाजनं रमन्ति मूढाः न रमन्ति पण्डिताः ॥"

भावार्थ—हे पतित पावन भगवन् आपकी कृपा से आपके प्यारे महात्मा, सन्त जन, विद्वद्गण हमें उपदेश देकर पवित्र करें। हमारे विचारपूर्वक किये कर्म भी हमें पवित्र करें। भगवन्। प्रकृति और इसके कार्य जो चर और अचर भूत हैं ये सब आपके अधीन हैं। आपकी कृपा से हमें पवित्र होने में वे अनुकूल हों। आपने हमें सांसारिक पारमार्थिक सुख देने के लिए चार वेद प्रकट किये हैं। उनका स्वाध्याय करते हुए और उनकी शिक्षा का पालन करते हुए हम अपना लोक और परलोक सुधारें। यह तभी हो सकता है जब आप हमको पवित्र करें। क्योंकि मलिन हृदय से न तो आपकी भक्ति हो सकती है और न ही वेदों का स्वाध्याय इसीलिए हमारी बार बार यही प्रार्थना है कि हमें पवित्र कीजिये।

"उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च।
मा पुनीहि विध्वतः ॥" यजुः १९ ।४३

हे पतित पावन प्रभु ! (सविता देव) हे सबके उत्पादक प्रकाश स्वरूप, सब सुखों के दाता परमात्मन् आप (पवित्रेण) पवित्र आचरण और ज्ञान से (च पवित्रेण सवेन) और पवित्र स्तुति प्रार्थना उपासना अथवा पुरुषार्थ प्रेरणा से (उभाभ्यां) दोनों से तन-मन से (विश्वतः) सब प्रकार से (मां पुनीहिं) मुझे पवित्र कीजिये।

"तन पवित्र सेवाकिये, धन पवित्र कर दान।
मन हरिभजन कर, होत त्रिविध कल्याण ॥" तुलसी

आलंकारिक गाड़ी

पञ्चवाही पाँच तत्वों को ले चलने वाला परमेश्वर। (परं नेदीयः) परब्रह्म परमात्मा विद्वानों के अधिक निकट है। अविद्वानों से अधिक दूर है। अतिशयेन निकटः।"

"विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः ॥" गीता

पञ्चवाही वहत्यग्रमेषा पृष्ठेयो युक्ता अनुसंवहन्ति।
अयातमस्य ददृशेन यातं परं ने दीये अवरं दवीयः ॥

अथर्व. २० ।८ ।८

एषां अग्रं पंचवाही वहति पृष्ठयो युक्ता अनुसंवहा अस्य यातं न ददृशे परं नेदीयः अवरं दवीयः ।(एषाम्) इन गाड़ियों में से (अग्रम्) प्रधान इंजन रूप गाड़ी अग्र-शब्द; प्रधान वाची (पञ्चवाही वहति) पाँच शक्तियों के समुदाय रूप गाड़ी को लिए जा रही है। (पृष्ठयो युक्ताः) पीछे चलने वाली जुड़ी हुई (अनु संवहन्ति) इसके पीछे 2 भार लिए जा रही हैं। (अस्य यातं) इस गाड़ी का चलना और (अयातं न ददृशे) न चलना दिखाई नहीं देता, परन्तु इतना अवश्य है कि (पर नेदीयः) जो परे था वह नजदीक आ रहा है। (अवरं दवीयः) जो समीप था वह दूर हो रहा है।

हमारा अन्तःकरण (मन) रूप इंजन पाँच ज्ञानेन्द्रियों को ले जा रहा है। कर्मेन्द्रियाँ और पाँच प्राण रूप गाड़ियाँ इसके पीछे जुड़ी हुई पीछे-पीछे चल रही हैं। इसके चलने न चलने का कुछ भी पता नहीं चल रहा। इतना अवश्य है कि जो दूर था वह समीप आ रहा है। जो समीप था वह दूर जा रहा है। या यों कहो दूर के पदार्थ समीप आ रहे हैं। समीप वाले दूर जा रहे हैं।

हमारी यह आलंकारिक गाड़ी आध्यात्मिक गाड़ी है इसलिए यह आँखों से दिखाई नहीं देती क्योंकि आँखों का काम तो भौतिक पदार्थों को देखना है आध्यात्मिक पदार्थों का देखना उसका काम नहीं। हमारी आन्तरिक आँखें अन्तःकरण (मन-बुद्धि) की आँखें हैं। जब ज्ञान की आँखों से हम देखते हैं तब पता लगता है कि यह अल्पज्ञ जीव प्रकृति के भोग्य पदार्थों में फंसकर अज्ञानी बना हुआ है। प्रकृति जड़ है, इसलिए जड़ पदार्थों में फँसने से यह अज्ञान रूप अन्धकार में जड़वत् हो जाता है। वाह्य पदार्थों को (दूर की वस्तुओं को) अपने अत्यन्त निकट मानता है। परन्तु जो इसके सबसे निकट पदार्थ (ब्रह्म) है, जो इसके अन्तःकरण में ही विद्यमान है, उसको अज्ञान के पर्दे से भूल जाता है। इसलिए वह इससे दूर होता चला जाता है। इसी बात को मन्त्र का यह वाक्य "परं नेदीयो अवरं दवीयः" बतला रहा है कि दूर के समीप आ रहे हैं और समीप के दूर जा रहे हैं। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।" तैतरीय पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्

कठ. ६ ।१

ब्रह्म ज्ञान का भण्डार है और जीव अल्प ज्ञान वाला है ज्ञान की शक्ति उसे ब्रह्म से ही मिल सकती है। प्रकृति से नहीं। जीव की वास्तविक गति है उसका ब्रह्म की ओर जाना अर्थात् मोक्ष प्राप्ति। उसका शरीर, मन, इन्द्रियाँ और प्राण यदि उसको ब्रह्म की ओर ले जा रहे हैं तब तो समझो कि उसकी गाड़ी चल रही है। परन्तु जब प्रकृति का पर्दा ज्ञान की आँखों पर पड़ जाता है तब अत्यन्त समीपी ब्रह्म की सत्ता हमसे ओझल हो जाती है। तब हमें अपनी ज्ञान की गाड़ी की चाल का पता नहीं लगता। जिस प्रकार हम अन्धेरे में कुछ भी नहीं देख सकते इसी प्रकार अज्ञान के अन्धकार में भी कुछ नहीं देख सकते हैं। इसलिए हमें अपनी गति को देखने के लिए प्रकृति के प्रभाव को दूर करके ब्रह्म के प्रभाव की छाप अन्तः करण पर लगानी होगी तभी हम ब्रह्म को प्राप्त कर सकेंगे। "इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि"।

"श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी।
पायूपस्थ हस्त पादंवाक् चैव दशमी स्मृता:।
एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्।"
यस्मिन् जिते जितावेतौ भवत: पञ्चकौ गणौ। मनु: २
"श्रोत्रं चक्षु: स्पर्शनं च रसनं घ्राण मेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।" गीता १५।९

"यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च ...... यस्मान्नऋते किंचन् कर्म क्रियते तन्मे मन: शिव संकल्पमस्तु।"

"सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्या न्नेनीयते अभीषिमुर्वाजिन इव हृतप्रतिष्ठं।"

यज्ञ में मन्त्र बोलें

उप्त प्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये।
आरे अस्मे चं श्रृण्वते॥" ऋक्. १।७४।१

(अध्वरं) अ + ध्वर। ध्वरति हिंसा कर्मा तत् प्रतिषेधो-उध्वर:। अहिंसनीय: यज्ञ:। हिंसा रहित यज्ञ, अध्वर इति। (उप प्रयन्त:) समीप जाते हुए हम लोग। उपासना करते हुए हम (आरे + च) निकटे दूरे वा। दूर अथवा समीप के, दूर से भी। आर इति दूर नाम- निघण्टौ (अस्मे) अस्मै। हमें। (श्रृणवते) सुनने वाले। यथार्थतया श्रृणोति तस्मै। श्रवणमानाय। (अग्नये) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर के लिए। सबकी उन्नति करने वाले भगवान् के प्रति। विज्ञान स्वरूपाय जगदीश्वराय। (मन्त्रं) मन्त्रों कों। स्तुति रूप वेदमन्त्रों को मन्त्र: मननात्। मानाज्ज्ञानात् त्रातीति मन्त्र:। मन्तारं त्रायते रक्षतीति मन्त्र:। "समानो मन्त्र:" समानं मन्त्रं अभिमन्त्रमेव:। (वोचेम) बोलें। उच्चारण करें।

भावार्थ—भगवान् की आराधना कैसे करनी चाहिए ? इसका एक आभास इस मन्त्र में है। भगवान् की आराधना का एक साधन यज्ञ भी है। जैसा कि वेद में कहा गया है—

"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः" यजु: ३१।१६ अर्थात् विद्वान् लोग यज्ञ के द्वारा पूजनीय भगवान् की पूजा करते हैं। यज्ञ शब्द से ब्रह्म यज्ञ (सन्ध्या) देवयज्ञ (अग्निहोत्र) हवन आदि सभी यज्ञ अभिप्रेत हैं। अतः सभी यज्ञों में वेदमन्त्रों से ही कार्य करने चाहिए। वेद मन्त्रों को शुद्ध स्पष्ट उच्चारण करना चाहिए जिसको समीपस्थ अथवा दूरस्थ लोग श्रवण कर लाभ उठा सकें और प्रभु भक्ति में मन लगा सकें।

"द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाश्च यतयः संशित व्रताः ॥" गीता ४।२८

विश्व कल्याण कामना
(सर्वोदय का मार्ग)
"गावो विश्वस्य मातरः"

"स्वस्तिमात्र उत पित्रे नो अस्तु, स्वस्ति गोभ्यो जगत पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु, ज्योगेव दृशेम सूर्यमन।"
अथर्व. १।३१।४

(नः मात्रे) हमारी माता के लिए (उत पित्रे) और पिता के लिए (स्वस्ति अस्तु) कल्याण होवे। (गोभ्यः) गौओं के लिए सब उपकारी पशुओं के लिए (जगते) समस्त जगत के लिए तथा (पुरुषेभ्यः) पुरुषों के लिए (स्वस्ति) भला हो, कल्याण हो। (नः) हमारे लिए (विश्वं) सम्पूर्ण (सुभूतं) उत्तम ऐश्वर्य और (सुविदत्रं) उत्तम ज्ञान (अस्तु) होवे। हम (ज्योक) निरन्तर बहुत काल तक (सूर्यं एव) सूर्य को (दृशेम) देखें।

भावार्थ—माता-पिता की कल्याण कामना के लालन पालन में जो कष्ट उठाते हैं उसकी निष्कृति कौन दे सकता है ? कौन उसका बदला चुका सकता है ? माता-पिता के कल्याण की कामना पर ही अपने कर्तव्य की इति श्री नहीं समझ लेनी चाहिए वरन् प्रतिदिन उनकी सेवा भी करनी चाहिए। इसी भावना की पुष्टि के लिए आर्यों के पञ्चयज्ञों में पितृयज्ञ का विधान किया गया है। माता-पिता के कल्याण कामना के साथ गौओं के मंगल का आदेश है। गौ से दुग्ध, दधि घृत आदि मिलते हैं। गौ से कृषि होती है। बैलों द्वारा कृषि कार्य और शकट खींचने का काम सम्पन्न होता है मनुष्य जीवन की समृद्धि और सम्पन्नता में गौ का बड़ा हाथ है। जगत् के समस्त पुरुषों का कल्याण या तो भगवान् करते हैं या भगवदभक्त महात्मा, महापुरुष करते हैं। हम लोग बहुत काल तक प्रभु की ज्ञान ज्योति को प्राप्त करते रहें।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत्।"
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योर्जुन।
सुखं वा यदि दुःखं स योगी परमो मतः॥ गीता ६।३२

तैंतीस देव हमारे रक्षक

"यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा।
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ॥"अथर्व. का १० सूत्र ७

त्रयः च त्रिशत् च = त्रयस्त्रिंशत्।(त्रयः त्रिंशत् देवाः) तैंतीस देव।(यस्य निधिं) जिसका कोष। निधिः शेवधिरिति सुखनिधानमित्यर्थः निरुक्ते २।४ जिस परमेश्वर के खजाने को संसार को (सर्वदा रक्षन्ति) सर्वदा रक्षण करते हैं। देवाः दिव्य पदार्थ (देवाः यं अभिरक्षथ) हे देवो। जिसका तुम सदा रक्षण करते हो (तं निधिं) उस निधि (कोश) को, सुख के खजाने को। (अद्य कः वेद) आज कौन जानता है।

भावार्थ—परमेश्वर की जो शक्ति है उसका रक्षण और प्रकाशन इन तैंतीस देवों द्वारा ही होता है। यह बात जानना विशेष मननशील को ही शक्य है। अर्थात् ब्रह्मज्ञानी ही इसको जान सकते हैं। दूसरे साधारण व्यक्ति इसको नहीं जान सकते।

"देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानोभवतीति वा।
निरुक्ते ७।१५

दीव्यतीतिं देवः (दानाद्वा) यत् स्व स्वत्व निवृत्तिपूर्वकं पर सत्वोत्पादनं भवति तद्दानम्। दानं चाणुनग्रहणाय भवति। ददाति ह्यसौ ऐश्वर्याणि।

(दीपनाद्वा) दीपनं प्रकाशनम्। दीपयति ह्यसौ तेजोमयत्वाद् (द्योतनाद्वा) अन्येषां प्रकाशनम् द्योतनम्। (द्युस्थानो) सामान्यं हि द्यौः स्थानं देवतानाम्। देवताओं का उच्च स्थान। यो देवः सा देवता। देवता दो प्रकार के १. चैतन्य देवता २. जड़ देवता।

१. चैतन्य देव = परमात्मा, माता-पिता, आचार्य, अतिथि, विद्वान।

२. जड़ देवता = सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, आकाश, जल अग्नि "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विधुतो भान्ति कुतोयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्व तस्य भासा सर्वमिदं विभाति। कठ. ५।१५ "देवा देवै खन्तु मा"

"यद्देवा अकुर्वन् तदहं करवाणि।" शतपथ ब्राह्मण। अर्थात् जो देवता करते हैं वैसा मैं करूँगा अर्थात् देवताओं के समान अपने विचार व्यवहार बनाऊँगा।

"कति देवाः कतमेत आसन॥" अथर्व. १०।२।४

अष्टौ कसवः। एकादश रुद्राः। द्वादशादित्याः इन्द्रश्च-प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिशाविति।

(अष्टौ वसवः) कस् आच्छादने धातु से वसु शब्द बना। अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा, नक्षत्र इनका वसु नाम इस कारण से है सब पदार्थ इन्हीं में बसते हैं और ये ही सबके निवास करने के स्थान हैं। वसवो यद्विवसंत (एकादश रुद्राः) रुदिर अश्रु विमोचने धातु से रुद्र शब्द बना रोदनात् रुद्रः। रोदयतेर्वा रुद्रः। जो शरीर में दश प्राण हैं—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय ये दश प्राण तथा ग्यारहवाँ जीवात्मा। जब ये शरीर से निकलते हैं तब मरण होने से उसके सम्बन्धी लोग रोते हैं। ये निकलते हुए उसको भी रुलाते हैं। इससे इनका नाम रुद्र है।

(द्वादशादित्याः) चैत्राद्या फाल्गुनान्ताः द्वादशमासा आदित्याः। चैत्रादि बारह महिनों को आदित्य कहते हैं। क्योंकि ये सब जगत के पदार्थों का आदान अर्थात् सबकी आयु को ग्रहण करते चले जाते हैं।" आदते रसान् इत्यादित्यः"

निरुक्त २।१३

(इन्द्रः) परमैश्वर्य योगात् स्तनयित्नुश्शनिर्विद्युत इति। (प्रजापतिः) यज्ञः प्रजापतिरिति, यज्ञ को प्रजापति इसलिए कहते हैं कि उससे वायु, हेतुत्वात् प्रजापतिरिति संज्ञा। प्रजायाः पालन हेतुत्वात् यज्ञस्य पशूनाञ्च प्रजापासरिति।

"गौणिकी संज्ञा कृतास्ति।
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे सर्वे समहिताः स्कम्भं तं ब्रूहिकतमः स्विदेवसः॥"

अथर्व. १०।७।१३

मुझे सबका मित्र बनाओ

"हते हूँ ह मा मित्रस्म मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुवा समीक्षामहे॥"

यजुः ३६।१८

(दृते) हे सर्वदुःखविनाशकेश्वर। हे सब दुःखों के नाश करने वाले परमेश्वर। अविद्यान्धकार निवारक जगदीश्वर। (मा हंह) मा माम्। हंह दृढ़ीकुरु। मुझे दृढ़ कीजिए। मदुपरि कृपां विधेहि यतोहं सत्येधर्मं यथावद् विजानीयाम्।

सत्यसुखैः शुभगुणैश्च सह सदा वर्धय। मुझे शक्ति दो। (मा मित्रस्य चक्षुषा) मुझे मित्र की दृष्टि से। सुहृद्चक्षुवा प्रेम भावेन। (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणिमात्र संर्वे प्राणिनः। (समीक्षन्ताम्) सम् सम्यक्, ईक्षन्ताम् प्रेक्षन्ताम् पश्यन्तु। अर्थात् मम मित्राणि भवन्तु। ईक्षदर्शने धातु से। (अहं सर्वाणि भूतानि) मैं सब प्राणियों को अहं च सर्वप्राणिभ्यो (मित्रस्य चक्षुषा समीक्षे) स्वात्मवत् प्रेमबुद्धया सम्यक् पश्यामि। मित्र की दृष्टि से देखता हूँ। (मित्रस्य चक्षुषा) इत्थमेव मित्रस्य चक्षुषा निर्वैराभूत्वा वयं अन्योन्यम्। हम सब मित्र की दृष्टि से। (समीक्षामहे) सुख सम्पादनार्थं सदा वर्त्तामहे। देखें।

भावार्थ—हे सब दुःखों के नाश करने वाले जगदीश्वर हे अविद्या रूपी अन्धकार के निवारक परमेश्वर। हे समर्थ ईश्वर—(१) मुझे बलवान् बनाओ, शक्तिमान करो। (२) सब प्राणिमात्र मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। (३) मैं सबको मित्र की दृष्टि से देखता हूँ। (४) हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें।

मित्र = त्रिमिदा स्नेहने" धातु से औणादिकक्त प्रत्यय होकर मित्र शब्द व्युत्पन्न होता है। मेद्यति स्निह्यति स्निह्यते वा स मित्रः।

"अभयं मित्रादभयं अमित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मममित्रं भवन्तु॥"

अथर्व. १९।१५।६

A Friend in need is a Friend indeed.

"शोकाराति भयत्राणं प्रीति विश्रम्भ भाजनम्।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षर ह्यम्॥"
"माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितमं हितम्।
कार्य कारण तश्चान्ये भवन्ति हित बुद्धयः॥"
"कराविव शरीरस्य नेत्रयोरिव पक्ष्मणी।
अविचार्यं प्रियं कुर्यात्तन्मित्रं मित्रमुच्यते॥"

"आरम्भ गुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वी पुरा बृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्ध परार्द्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जानानाम्॥"
"यः प्रीणयेत् सुचरितैः पितरं स पुत्रो यद्भर्त्तुरेव हित मिच्छति तत् कलत्रम्।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यत् एतत् त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते॥" नीतिशतक

"परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृयं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्॥" चाणक्य

"मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥" चाणक्य.

"आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥" गीता ६।३२

"सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।" गीता ५।२९

"निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।" गीता ११।५५

"सर्वेषां या सुहृन्नित्यं सर्वेषाञ्च हिते रतः।
कर्मणा मनसा वाचा सधर्म वेद नेतरः॥"
"सुखी स्यामिति विज्ञाय परपीड़ां विवर्जयेत्।" मनुः

श्रद्धा और अश्रद्धा
(सत्य-असत्य)

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ।।" यजुः १९।७७

(प्रजापतिः) प्रजायाः पालकः जगदीश्वरः। प्रजातायाः सृष्टेः पतिः पालको जगदीश्वरः। प्रजा का रक्षक परमेश्वर ने (सत्यानृते) सत्यं च अनृतं च ते सत्यानृते। धर्माधर्मौ। सत्य जो धर्म और असत्य जो अधर्म है, उसको (रुपे दृष्ट्वा) रूप, स्वरूप है उसको ज्ञान दृष्टि से देखकर विचारकर (व्याकरोत्) वि + आ + करोत्। सर्वज्ञया स्वया विदया विभक्तौ कृतवानस्ति। अपनी सर्वज्ञता से सत्य और झूठ को अलग २ किया है। कथमित्यत्राह (अनृते) अन् + ऋते न ऋतं यथार्थामाचरणं यस्मिन् तदनृतं तस्मिन्। जिसमें यथार्थ न हो उस असत्य, अधर्म, अन्याय में मिथ्या भाषणादि में (अश्रद्धां) अप्रीतिम्। अप्रीति अर्थात् अप्रसन्नता को (अदधात्) धारण करता है। अर्थात् अनृत, झूठ मिथ्याभाषण, अधर्माचरण में अप्रीति करने का उपदेश करता है। (सत्ये) सम्यक् परीक्ष्य निश्चीयते तत् सत्य तस्मिन् सत्ये अर्थात् वेद शास्त्रोक्त, प्रत्यक्षादि प्रमाणो से सुपरीक्षित सत्य में। पक्षपात रहित धर्मन्यायाचरण में (श्रद्धाम्) सत्यधारिका क्रियाम्। श्रत् + धा = श्रद्धा, श्रद्धानात् श्रत् इति सत्यनाम, तत् सत्यमस्यांधीयत इति श्रद्धा। श्रत्, सत्य, धा, धारण करना। सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा। आस्तिक्यबुद्धिर्हि श्रद्धा। दृढ़ विश्वास। शुभकर्मं में प्रवृत्त कराने वाली निश्चयात्मिका बुद्धिः। ईश्वर सत्यधर्मादि गुणानामुपर्यत्यन्तं विश्वासः श्रद्धा। (प्रजापतिः) परमात्मा सत्ये श्रद्धां कर्त्तु मुपदिति। अर्थात् परमेश्वर सत्य में श्रद्धा और असत्य में अश्रद्धा करने की आज्ञा देता है।

प्रजायाः पालन हेतुत्वात् प्रजापति रिति संज्ञास्ति।
प्रजातायाः सृष्टेः पतिः पालकः।

तान् ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया सम्वत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छथ यदि विज्ञास्यामः सर्वंह वो वक्ष्यामः इति।" प्रश्नोपनिषद् १।२

"नाश्रद्धधानाय हविर्जुवन्ति देवाः।
श्रद्धयादेयम् अश्रद्धयाऽदेयम्।।" तैतिरीय

भावार्थ—प्रजापति परमात्मा जो सब जगत का स्वामी और पालन करने वाला है वह सब मनुष्यों को उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोग सदैव सत्य में श्रद्धा (प्रीति) और असत्य में अश्रद्धा (अप्रीति) रखो। जो लोग ईश्वर के आज्ञा

किये धर्म, सत्य का आचरण करते और असत्य अर्थात् अधर्म का त्याग करते हैं वे सदा सुख को प्राप्त होते हैं।

सत्यमिति कस्मात्। सत्सु तायते सत्प्रभवं भवतीति वा।
निरुक्ते "श्रद्धया सत्य माप्यते।" यजुः १९।३०

(सत्यम्) ईश्वर, मोक्षादिकं प्राप्यते।

"श्रद्धायाग्निः समिध्यते।" ऋक्. अग्निः = ज्ञानाग्निः।

"अश्रद्धा परमं पापं श्रद्धा पाप प्रमोचिनी।
जहाति पापं श्रद्धावान् सर्वो जीर्णामिव त्वचम्।।"

"त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां श्रृणु।।" गीता १७।२

"सत्वानुरुपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।" गीता १७।३

"अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतञ्च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत् प्रेत्य नो इह।।" गीता ११।२८

"श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।" गीता ४।३९

"अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मन।।" गीता ४।४०

"सुकेशाचभारद्वाजः, शैव्यश्चसत्यकामः, सौर्य्यायणी च गार्ग्यः कौशल्यश्चाश्वलायनः, भार्गवोवैदर्भिः कबन्धीच कात्यायन रते हैते ब्रहम पराः। ब्रहमनिष्ठाः परं ब्रहमान्बेषमाणा एषह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित् पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्ना ॥"

सृष्टि के उत्पन्न और प्रलय के विषय में

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका वेदोत्पत्ति विषय) (प्रश्न) सृष्टि को उत्पन्न हुए कितना समय हुआ और कब तक रहेगी ? (उत्तर) कल संख्याने "कलपति संख्याति सर्वान् पदार्थान् इति कालः।" इस धातु से काल शब्द बना है।

"कालः कलयितामहम्" गीता १०।३०

आर्यों ने ज्योतिष और स्थूल संज्ञा बाँधी है। उसके अनुसार ६० विपल का १ पल, ६० पल की एक १ घड़ी, ६० घड़ी का १ अहोरात्र ३० अहोरात्र का १ मास, १२ मास का १ वर्ष (३६५ अहोरात्र का एक सौर वर्ष) और (३५४ अहोरात्र का एक चान्द्रवर्ष होता है।)

"अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुष दैविके।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥" मनुः १।६४-६५

कृत युग (सतयुग), त्रेता, द्वापर और कलियुग के प्रमाणादि के लिए देखो मनुस्मृतिः अध्याय १ के श्लोक ६८ से ७३ तक

४,३२,००० सौर वर्ष का कलियुग माना गया है।

८,६४,००० सौर वर्ष का द्वापर युग माना गया है।

१२,९६,००० सौर वर्ष का त्रेता युग माना गया है।

१२,२८,००० सौर वर्ष का सतयुग माना गया है।

योग ४३,२०,००० सौर वर्ष की एक चतुर्युगी मानी गई है।

ऐसी ७१ चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है।

योग-३०,६७,२०,००० वर्षों का एक मन्वन्तर होता है।

ऐसे ६ मन्वन्तर स्वायम्भुव स्वारोचिष, औत्तमि, तामस, रैवत और चाक्षुष यें ६ मन्वन्तरं बीत चुके हैं।

योग-१,८४,०३,२०,०००

१ अरब, ८४ करोड़ ३ लाख, २० हजार वर्ष बीत चुके हैं।

"मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम।" गीता ९।१०

"पिताहमस्य जागतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोकार ऋक् साम यजुरेव च॥" गीता ९।१७

अब सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। इस सातवें वैवस्वत मन्वन्तर की २८वीं चतुर्युगी में भी सतयुग त्रेता द्वापर युग बीत चुके हैं। वर्त्तमान कलियुग के ५०६० वर्ष भी व्यतीत हो गये हैं। अब ४,२६,९४० (चार लाख छब्बीस हजार नौ सौ चालीस) वर्ष कलियुग के भोग के शेष हैं। अभी ४३ चतुर्युगी और होंगी तब सातवाँ मन्वन्तर पूरा होगा। कुल १४ मन्वन्तर तक सृष्टि रहती है। सौवर्णि आदि सात मन्वन्तर आगे भोगेंगे। ये सब मिलकर १४ मन्वन्तर होते हैं। इन १४ मन्वन्तरों का योग कुल =४,३०,४०,८०,००० वर्ष (चार अरब, तीस करोड़, चालीस लाख अस्सी हजार वर्ष होता है।) अब तक सृष्टि को हुए १,९६,०८,५३,०६० = (एक अरब, छियानवे करोड़, आठ लाख, तिरपन हजार, साठ) वर्ष व्यतीत हो गये। तथा अभी २,३४,३२,२६,९४० (दो अरब, चौंतीस करोड़, बत्तीस लाख, छब्बीस हजार नौ सौ चालीस) वर्ष सृष्टि और भोग होनी शेष है तब प्रलय होगी।

ब्राह्म दिन और ब्राह्म रात्रि

जो पूर्व ४३ लाख २० हजार वर्ष की एक चतुर्युगी लिखी है उन एक हजार चतुर्युगियों की ब्राहमदिन संज्ञा रखी गई है और उतनी ही चतुर्युगियों की ब्राह्मरात्रि संज्ञा जाननी चाहिए। सो सृष्टि की उत्पत्ति करके हजार चतुर्युगी पर्यन्त ईश्वर इसको बनाये रखता है। इसी का नाम 'ब्राह्म दिन' रखा है। औरं हजार चतुर्युगी पर्यन्त सृष्टि को मिटाके प्रलय अर्थात् कारण में लीन रखता है। उसका नाम "ब्राह्मरात्रि" रखा है। अर्थात् सृष्टि के वर्त्तमान होने का नाम दिन और प्रलय होने का नाम रात्रि है। देखो मनुस्मृतिः १ ।६८ से १३ तक।

"सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां तेऽहो रात्राविदो जनाः ॥
अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके॥" गीता ८।१७-१८

सम्वत् २०२९ में गत कलिः ५०७३ वर्ष। भोग्यकालि ४,२६,९,२७ वर्षाणि सन्ति।

प्रभु की भक्ति कैसे करें ?
(उपासना विषय)

"युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवेः।
स्वर्ग्याय शक्त्या॥" यजुः ११।२

"प्रीति प्रतीति सुरीति सों राम राम कहि राम।
तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिनाम॥" तुलसी.

(वयम्) हम लोग। भगवद्भक्तजन। आपके भक्त। (सवितुः) सकल जगदुत्पादकस्य जगदीश्वरस्य। षङ् प्राणि प्रसवे धातु से। यश्चराचरं जगदुत्पादयति स सविता तस्य सवितुः। सकल संसार को उत्पन्न करने वाले। (देवस्य) सब सुखों के देने वाले परमदेव परमेश्वर की, (सवे) आराधना रूप भक्ति में, स्तुति-प्रार्थना उपासना द्वारा। (युक्तेन मनसा) मनसा, मननात्मिकान्तः करण वृत्या। लगे हुए मन के द्वारा। युक्तेन समाहितेन निरुद्धेन वा मनसां। (स्वर्ग्याय) स्वः सुखं गच्छति येन तद्भावाय। सुख प्राप्ति के लिए (शक्त्या) सामर्थ्येन। अपनी पूरी सामर्थ्य से। (प्रयतामहै) प्रयत्न करें। "चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः स. कृतिनोऽर्जुनं।

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि सकल जगत् को उत्पन्न करने हारे, सब सुखों के देने वाले परमदेव परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना एकाग्र चित्त होकर नित्य प्रति किया करें। इसी में हम सबका कल्याण है।

"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।" योगदर्शन १।१।२

युज् योगे, युज् समाधौ धातु से योग शब्द बना है।

मनो नाम संकल्पविकान्ताः करणं वृत्तिः।

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्॥"

मन बड़ा चंचल है उसका निरोध कैसे हो ? अर्जुन ने कृष्ण से पूछा।

"चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवदृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥" गीता ६।३४

श्रीकृष्ण का उत्तर—

असंशयं महावाहो मनोदुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ गीता ६।३५

"यज्जाग्रतोदूरमुदैतिदैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति दूरङ्गमम्।
ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥"
यजुः ३४।१

"ध्यान धारणाभ्यास वैराग्यादिभि स्तन्निरोधः।" सांख्यसूत्र ६।२९

"अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।" योगसूत्र समाधिपाद १२

"तत्र स्थितौ यत्नोभ्यासः।" योग सूत्र समाधिपाद

"दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्यवशीकार संज्ञा वैराग्यम्।"

"अभ्यसनमभ्यासः। विरागस्य भावो वैराग्यम्।" योगसूत्र

"चेतसः स्थापनं भूयो भूयोभ्यासः स उच्यते।"

"यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।
तत स्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥" गीता ६।२६

"अभ्यास योग युक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥" गीता ८।८

"सर्व द्वाराणि संयम्य मनोहृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥" गीता ८।१२

"प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिब्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥" गीता ६।१४

उपासना कथं रीत्या कर्त्तव्या ? (देखो ऋग्वेदादि भा.) उपासनाविषय "तत्र शुद्धे एकान्तेभीष्टे देशे शुद्ध मानसः समाहितों भूत्वा सर्वाणीन्द्रियाणि मनश्चैकाग्रीकृत्य, सच्चिदानन्द स्वरूपमन्तर्यामिनं न्यायकारिणं परमात्मानं सञ्चिन्त्य, तत्रात्मानं नियोज्य च, तस्यैव स्तुति, प्रार्थनानुष्ठाने सम्यक् कृत्वोपासनयेश्वरे पुनः पुनः स्वात्मानं संलग्नयेत्।" (उपासना विषय ऋग्वेद) पृष्ठ १८४

"शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासन मात्मनः।"

इत्यादि गीता के श्लोक अध्याय ६, श्लोक ११ से १५ देखो।

"त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संन्निवेश्य।"

श्वेताश्वतर २।८

जो नियम से आहार विहार करने वाले जितेन्द्रिय पुरुष एकान्त देश में परमात्मा के साथ अपनी आत्मा को श्रद्धा से युक्त करते हैं वे तत्व ज्ञान को प्राप्त होकर नित्य ही सुख भोगते हैं। ऋषिभाष्य ११।४

उपासना का स्थान

उपह्वरे गिरीणा सङ्गमे च नदीनाम् धिया विप्रो अजायत॥"

यजुः २६।१५

(गिरीणां) शैलानाम्। पर्वतों की, पहाड़ों की, पर्वतानां, ऋक् ८।६।२८

(उपह्वरे) निकटे। अत्यन्त गुह्य स्थाने। गुफाओं में। (च) और, एकान्त शुद्धपवित्र स्थान में, (नदीनां संगमे) सम् गमे = मेलने। नदियों के संगम पर बैठकर। (धिया) धारणायुक्त बुद्धि से। ध्यान करने से मनुष्य। (विप्रः) मेधावी। विप्र इति मेधावि नाम-निघण्टु ३।१५

बुद्धिमान्। ज्ञानवान् (अजायत) जायते। होता है।

भावार्थ—जो मनुष्य पर्वतों की गुफाओं में अथवा पहाड़ों के सुन्दर स्थानों में और नदियों के मनोहर संगम पर एकान्त देश में बैठकर ध्यान, धारणा, अभ्यास से प्रभु भक्ति करते हैं, वे ज्ञानी हो जाते हैं।

"समे शुचौ शर्करावन्हि बालुका विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोनुकूले न तु चक्षु पीडने, गुहनिबातां श्रयणे प्रयोजयेत्॥"

"श्वेताश्वतर उपनिषद् २।१०

"यत्रैकागता तत्राविशेषात्।" वेदान्तसूत्र ४।१।११

"न स्थाननियमश्चित्त प्रसादात्।" सांख्यसूत्र ६।३१

"आसीनः सम्भवात्। अचलत्वं चापेक्ष्य।
ध्यानाच्च।यत्रेकाग्रता तत्राविशेषात्।"

वेदान्तसूत्राणि ४।१।७-८-९-११

"तस्य वाचकः प्रणवः।"
तज्जपस्तदर्थभावनम्।" योग.
"एकान्ते विजने देशे पवित्रे निरुपद्रवे।
काम्बलाजिन वस्त्राणामुपर्यासनमभ्यसेत्।।"आस्यतेस्मिन्नित्यासनम्।
"स्थिर सुखभासनम्।" योगसूत्र, साधनपाद सूत्र ४६
सिद्धासन, स्वस्तिकासन, पद्मानस, बद्धपद्मासन, बज्रासन आदि।
वाहमेनम् शरीर रथम्।"
"रथः शरीरं पुरुषस्य राजन् आत्मानियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वः।।"
"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।" कठ.
इन्द्रियाणि हयानाहुः
"प्राणान् प्रपीयेह स युक्त चेष्टा, क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं, विद्वान् मनो धारयेता प्रमत्तः।।"

स युक्त चेष्टा स प्राणाभ्यासी योगी युक्ता नियता शान्ता चेष्टा देह क्रिया यस्य। प्राणान् प्रपीड्य विधिवत् प्राणायामं कृत्वा। क्षीणे प्राणे स्थिर दशा मापन्ने प्राणे। प्राण के सूक्ष्म हो जाने पर। नासिकयैवोच्छ्वसीत न तु मुखेन। दुष्टा अश्वा युक्ता अस्मिन् तादृश वाहन मिवैनं शरीर रथम्।

"शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासन मात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।।" गीता ६।११
"तत्रै काग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये।।" गीता ६।११
"समं काय शिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।" गीता- ६।११-१३

ईश्वर का स्वरूप

परमात्मा के यथार्थ स्वरूप को हम जानें।
उसका स्वरूप कैसा है ? (ईश्वर का स्वरूप)
"क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः"।
योग दर्शन १।२४ समाधिपाद

अविद्यादयः क्लेशाः। कुशलाकुशलानि कर्माणि। तत्फलं विपाकः। तदनुगुणा वासनाआशयास्तेचमनसि वर्त्तमानाः पुरुषे व्यपदिश्यन्ते, स हि तत्फलस्य भोक्तेति।

अर्थ = क्लेश, कर्म, विपाक, फल, आशय, वासना से, असंबद्ध पुरुष विशेष ईश्वर है। (क्लेश) क्लिश्नन्तीति क्लेशाः। क्लिश् उपतापे" धातु से जो दुःख देते हैं, वे क्लेश कहलाते हैं। अविद्यालयः क्लेशाः।

"अविद्यास्मिता रागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः।"

योग सूत्र, साधनपाद ३।९

(१) अविद्या, "अनित्याशुचि दुःखानात्मसु नित्यशुचि सुखात्मख्याति रविद्या। योग साधन सू. ५ (२) अस्मिता दृक्दर्शन शक्त्यौरकात्मतेवास्मिता। २।६ (३) राग सुखानुशयी रागः। साधनपाद सूत्र ६ रञ्जरागे धातु से राग। रञ्ज्यते विषयेषु पुरुषोऽनेनेति रागः। सुख की प्रतीति के पीछे रहने वाला क्लेश राग कहलाता है। (४) द्वेष "दुःखानुशयी द्वेषः।" "द्विष् अप्रीतौ"—धातु से द्वेष। (५) अभिनिवेश स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः।" योग सूत्र साधन. पाद, सूत्र ९

अभि उपसर्ग है, नि उपसर्ग है। विश् धातु विश् प्रवेशने-से बना अभिनिवेश शब्द। अभि सब ओर से, नि निश्चय से, वेश प्रविष्ट हुआ मरण भय रूप क्लेश मरणत्रास। मरणं मृत्युः। म्रियन्ते पुनः पुनः प्राणिनो यस्मात् स मृत्युः। मृञ् मरणे। मृङ् प्राण त्यागे॥ तं वेद्य पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथाः इति। प्रश्नोप. ६

जलमग्निर्विषशस्त्रंक्षुद् व्याधिः पतनं गिरेः।
निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणान् विमुञ्चति॥

रागः अर्थात् जो-जो सुख संसार में साक्षात् भोगने में आते हैं उनके संस्कार की स्मृति से जो तृष्णा के लोभ सागर में बहना है उसका नाम राग है।

(कर्म) कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविध मितरेषाम्।" ४।७

क्रियतेऽति कर्म, कृ धातु से कर्म। कुशलाकुशलानि कर्माणि। विहित प्रतिषिद्धि व्यामिश्ररूपाणि कर्माणि। नित्य नैमित्तिक काम्य और निषिद्ध चार प्रकार के कर्म। पुण्य पाप रूप कर्म। लौकिक और वैदिक कर्म। धर्म शुभ, अधर्म अशुभ और इनसे मिश्रित ये तीन प्रकार के कर्म।

"वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।" मनुः ४।१४
"किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।" गीता ४।१६
"कर्मणोह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।" गीता ४।१७
"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।" यजुः ४०।२
"वेदप्रतिपादितो धर्मः अधर्मस्तद् विपर्ययः।"

(विपाक) विपच्यन्त इति विपाका: । तत् फलं विपाक: । अर्थात् जो परिपक्व हो जाते हैं वे विपाक फल कहलाते हैं । विपाका: कर्मफलानि ।

"अतिमूले तद्विपाको नात्यायुर्भोगा: ।"

योगसूत्र, साधनपाद, सूत्र १३

"कर्मण: सुकृतस्याहु: सात्विकं निर्मलं फलम् । गीता

(आशय) आफल विपाकच्चित्तमभौशेरत इत्याशया: वासनाख्या: । अर्थात् कर्मों के संस्कारों का नाम आशय है ।"

क्लेशमूल: कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीय: ।"

साधनपाद, सूत्र १२

"ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिर्व्यक्तिर्वासनानाम् ।" कैवल्य ८

वासनामभोगजन्य संस्कार: । (अपरामृष्ट:) असम्बद्ध: । सम्बन्ध रहित: । इन क्लेश, कर्म, विपाक और आशय वासना से रहित है । अर्थात् सम्बन्ध रहित हैं । क्लेशाश्च कर्माणि च विपाकाश्च आशयाश्च क्लेशकर्म विपाकाशया: तै: क्लेश कर्म विपाकाशयै: अपरामृष्ट: असम्बद्ध: सम्बन्ध रहित: अनेभ्यो पुरुषेभ्यो विशिष्यत इति पुरुष विशेष: ईश्वर: ईशनशील: । (पुरुष विशेष:) अन्येभ्य: पुरुषेभ्यो विशिष्यत इति पुरुषविशेष: पुरि सर्वस्मिन् संसारे शेते सर्वामभि व्याप्य वर्त्तते स पुरुष: परमात्मा पूर्णत्वात् पुरुष: । पुरि देहे अभि व्याप्य वर्त्तते स पुरुष: जीवात्मा अर्थात् जीवात्मा से भिन्न जो विशेष पुरुष उत्तम पुरुष है ।

"उत्तम: पुरुषस्त्वन्य: परमात्मेत्युदाहृत: ।
यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वर: ।।" गीता १५ ।१७

परमात्मा परश्चासौ आत्मा, परमात्मा । अव्यय: निर्विकार: । ईश्वर: ईशनशील: ।"पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परागति:— कठ. । (ईश्वर:) ईश ऐश्वर्ये धातु से ईश्वर शब्द सिद्ध हुआ है । यत्र काष्ठाप्राप्ति रैश्वर्यस्य स ईश्वर: । ईशनशील: ।

"यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोस्ति कश्चित् ।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ।।"

श्वेताश्वतर ३ ।९

अर्थात् पूर्णात् परमेश्वरात् परं प्रकृष्टमुत्तमं किञ्चिदपि वस्तुनास्त्येव, यस्मात् परं द्वितीयं तत्तुल्यमुत्तमं वा किञ्चिदपि वस्तुनास्त्येव । (वृक्ष इव) यथा वृक्ष: शाखा पत्र पुष्प फलादिकं धारयन् तिष्ठति, तथैव पृथिवी सूर्यादिकं सर्वं जगद्धारयन् परमेश्वरोभि व्याप्य स्थिततोऽस्ति ।"न तत् समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते" श्वेताश्वतर ६ ।८ अणीयो सूक्ष्मतरं । ज्यायो महत्तरम् ।

"नकि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायोऽस्ति वृत्रहन्। नक्येव यथा त्वम्॥"
साम. ३।१।१।१०

"अचिन्त्यरूपोभगवान्निरञ्जनो विश्वम्भरो ज्ञानमयश्चिदात्मा।
न चिन्तितो येन हृदि स्थितो नो बृथागतं तस्य नरस्य जीवितम्॥"

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासना विषय में विशेष दृष्टव्य)

(१) "तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्।" समाधिपाद. सूत्र २५

तत्र उस पूर्वोक्त ईश्वर में, निरतिशयं अतिशय रहित। सर्वज्ञ बीजम् सर्वज्ञता अर्थात् ज्ञान का बीज कारण है। जिससे बढ़कर कोई दूसरी वस्तु हो वह सातिशय है और जिससे बढ़कर कोई अन्य न हो वह निरतिशय कहलाती है।

यत्र काष्ठा प्राप्तिर्ज्ञानस्य स सर्वज्ञः, स च पुरुष विशेषः ईश्वरः।

(२) "स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।" १।२६

सः वह ईश्वर, पूर्वेषामपि पूर्व उत्पन्न ब्राह्मादिकों का भी, गुरुः गुरु उपदेष्टा है। कालेनानवच्छेदात् क्योंकि उसका काल से अवच्छेद नहीं है। अवच्छेद नाश, परिमित, परिच्छिन्न, काल की सीमा से सर्वथा रहित।

"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै।"
श्वेताश्वतर ६।१८

"अहमादिर्हि देवानां महर्षीणाञ्च सर्वशः।" गीता १०।२

(३) "तस्य वाचकः प्रणवः।" योगसमाधि सूत्र २७

तस्य उस ईश्वर का वाचकः बोधक शब्द, नाम, प्रणवः प्रणव अर्थात् ओ३म् है। प्रकर्षेणनूयते स्तूयतेऽनेनेति प्रणवः ओंकारः प्र + णूस्तवने - धातु से।

"ओ३म् क्रतो स्मर, क्लिवेस्मर कृतँ स्मर।" यजु: ४०।१८

"सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति, तपाँसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रहमचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

"ओमिति ब्रह्म"— कठ. २।१५; तैत्तिरीयो १।८

"प्रणवः सर्ववेदेषु।" गीता ७।८

"वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् साम यजुरेव च।" गीता ९।१७

"ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् माननुस्मरन्।" गीता ८।१३

"ओ३म् तत्सदिति निर्देषो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः। गीता १७।२३

"प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन बेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥" मुण्डक. २।४

"स्वदेह मरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्यान निर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढ़वत्॥" श्वेताश्वतर। १।१४

"ओमित्येवंध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराम तमसः। परस्तात्।"
मुण्डक. २।२।६

प्रणवस्य जपः, प्रणवाभिधेयस्य चेश्वरस्य भावना कार्या।

(४) तज्जपस्तदर्थभावनम्। योगसूत्र समाधि सू. २८

तज्जपः उस प्रणव (ओंकार) का जप, तदर्थ उस प्रणव के अर्थभूत ईश्वर का, भावनम् बार बार चिन्तन करना चाहिए।

"एतद्धद्धयेवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम्।
एतद्धद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥"
"एतदालम्बनं श्रेष्ठ मेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रहमलोके महीयते॥"
कठ. १।२।१६-१७

"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय।"
यजुः ३१।१८

"प्रीति प्रतीति सुरीति सों राम नाम कहि राम।
तुलसी तेरो है भलो, आदि मध्य परिणाम॥" दोहावली
"बिगरी जनम अनेक की, सुधरै अबही आजु।
होहिं राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥" दोहावली
"प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्।" मनुः १२।१२

प्रश्न—किसकी पूजा करें ? किसलिये करें ?

उत्तर—

"हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये। स चेत्ता देवता पदम्॥"
यजुः २२।९

(हिरण्यपाणिं) हिरण्यानि सूर्यादीनि तेजांसि पाणौ स्तवने यस्य तम्।
जिसकी स्तुति करने में सूर्यादि तेज है।"

न तत्र सूर्योभाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽय मग्निः।
तयेवभान्तमनुभाति सर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥
कठ. २।२।१५ मुण्डक, २।२।१० श्वेताश्व. ६।१४

सूर्याचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्।" ऋक्. १०।१९०।३

"यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धिमामकम्॥" गीता १५।१२

(अतये) रक्षणाद्याय। रक्षा आदि के लिए। जन्म मरण के दुःख से रक्षा करें। (सवितारं) सकलैश्वर्य प्रापकम्। समस्त ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले जगदीश्वर की। यः सुवत्युत्पादयति चराचरं जगत् स सविता जगदीश्वरः तम्। षूङ् प्राणि प्रसवे। षूङ् प्राणि गर्भ विमोचने धातु से षू प्रेरणे धातु। उत्तम गुण कर्म स्वभावेषु प्रेरक ष् प्रसवैश्वर्य से। (उपह्वये) ध्यानयोगेनाह्वये। ध्यान के योग से बुलाता है।

"ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मनः।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥" गीता १३।२४

(सः चेता) स जगदीश्वरः। चेता सम्यक् ज्ञान स्वरूपत्वेन सत्यासत्यज्ञापकः। अच्छे ज्ञान स्वरूप होने से सत्य और मिथ्या का जानने वाला। "चिति संज्ञाने धातु से। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।" तैत्तिरीयोप. ब्रह्मानन्द बल्ली ज्ञानान्मुक्तिः। बन्धोविपर्ययात्।

"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विधते।"
"आयुष्यं वर्चस्वं रायस्पोष मौद्भिदम्।
इदं हिरण्यं वर्च्चस्वज्जैत्राय विशतादुमाम्॥" यजुः ३४।५०

हिरण्य मिति कस्मात् ? हितरमणं भवति। हृदय रमणं भवति, ह्रियते जन्मज्जनमिति वा। हर्यते वा स्यात् प्रेप्सा कर्मणा। निरुक्ते यो देवः स देवता। देवोदानाद्वा द्योतनाद्वा। (देवता) उपासनीय इष्टदेव एक। उपासना करने योग्य वही इष्टदेव है। यह तुम सब जानो। (पदम्) प्राप्तुमर्हम्। प्राप्त करने योग्य वही इष्टदेव है। उसी की उपासना करनी चाहिए।

भावार्थ—सर्वैर्मनुष्यैः सच्चिदानन्द स्वरूपस्य परमात्मनः उपासनां विहाय कस्याप्यन्यस्य जड़स्थोपासना कदापि नैव कार्या। नहि जड़मुपासितं सद्धानिलाभ कारकं रक्षकं च भवति। तस्माच्चेतनै सर्वैः जीवैश्चेतनो जगदीश्वरे वोपासनीयो ने तरो जड़त्वादि गुणयुक्तः पदार्थः।

"तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।"
यजुः ३१।१८

तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथाः।"
प्रश्नो. ६।८

"हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।
यजुः १३।४

"हिरण्यानां सूर्यादितेजस्विपदार्थानां गर्भो अधिष्ठानम्।उत्पत्ति स्थानं स हिरण्यगर्भः हिरण्यं गर्भे मध्ये यस्य स हिरण्यगर्भः। ज्योतिर्वै हिरण्यम्। अग्रे सृष्टेः प्राक्। समवर्त्तत सं सम्यक् अवर्त्तत वर्तमान आसीत्। (हिरण्यपाणिम) सूर्यादि प्रकाश करने हारे लोक जिसके हाथ मे, अधिकार में हैं। अर्थात् जो स्वर्णादि धन का देने वाला है। त्वं विश्वस्य धनदा असि।"मया दस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। कठ् । भय नियम, आज्ञा अनुशासन।"

"अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य ऊ सम्भूत्याँ रताः॥" यजुः ४०।९

अर्थात् जो असम्भूति कारण प्रकृति की ब्रह्म के स्थान पर उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं। जो सम्भूति कारण से उत्पन्न हुए कार्य रूप पृथिवी आदि भूत, पाषाण, वृक्ष, मनुष्य आदि की ब्रह्म के स्थान पर उपासना करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरक में गिर कर महाक्लेश भोगते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी शंकराचार्य परापूजा में कहते हैं—

"पूर्णस्यावाहनं कुत्र, सर्वाधारस्य चासनम्।
स्वच्छस्य पाद्यमर्ध्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः ?"

जो सर्वव्यापक है उसे घंटा घड़ियाल बजाकर बुलाना कैसा ? जो समस्त भूमण्डल का आधार है उसे आसन देना कैसा ? जो स्वच्छ है उसे पाद्य अर्घ्य देना कैसा ? जो शुद्ध पवित्र है उसे आचमन देकर पवित्र करना कैसा ?

उसी परापूजा में स्वामी शंकराचार्य मूर्तिपूजकों को उपालम्भ देकर प्रश्न करते हैं—

"पाषाणैशलयं बध्वा, देवाः पाषाण एव च।
ब्रूहि पण्डित देवस्तु कस्मिन् स्थाने स तिष्ठति॥"

अर्थात् पत्थर का मन्दिर बनाया। पत्थर का ही उसमें देवता बैठाया। कहिये पण्डित देवता दोनों ही पत्थर के बने होने से तुम्हारा भगवान कौन है ?

श्रीमद्भागवत में कहा है—

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके, स्वधीः कलत्रादिषु भौग इज्यधीः।
यस्तीर्थबुद्धिः सलिलेषु कर्हिचित् जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोरवरः॥

अर्थात् जो वात, पित्त, कफ इन तीन मलों से बने हुए शरीर में आत्मबुद्धि करता है, स्त्री आदि में स्वबुद्धि, पृथ्वी से बनी हुई मूर्तियों में पूज्य बुद्धि और जो जल में तीर्थ बुद्धि कभी भी करता है वह गोरवर अर्थात् गौओं का चारा ढोने वाला गधा है।

"कलेवरं मूत्र, पुरीषभाजनं रमन्ति मूढ़ाः न रमन्ति पण्डिताः।" नीतिः। नरकं न्यरकं नीचैर्गमनम्। निरुक्त। पापभोग स्थान। (ध्यानेन) धारणा ध्यान समाधिना। देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्। रागोपहतिर्ध्यानम्। तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः। स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चेत्तरारणिम्। ध्यान निर्मथनाभ्यासादेव पश्येन्निगूढ़वत्। श्वेताश्वतर १।१४

अथवा अष्टाङ्गयोग-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रात्याहार, धारणा, ध्यान समाधिना। (आत्मानि) स्वहृद्देशे (आत्मानं) परमात्मानं, परमात्म स्वरूपम्। (आत्मनः) ध्यान संस्कृतेनान्तः करणेन (पयन्ति) साक्षात् कुर्वन्ति (केचित्) उत्तमा योगिनः। (अन्ये) मध्यमाः (सांख्येन योगेन) प्रकृति पुरुष वैलक्षण्यालोचनेन (अपरे च कर्म योगेन) ईश्वरार्पण बुद्धया क्रियमाणेन फलाभिसन्धिरहितेन तत्तदवर्णाश्रमोचितेन वेदविहितेन कर्मकलापेन आत्मनि देहे आत्मानं परमात्मानं पश्यन्ति॥"

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"
"कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।"
"वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
तद्धि कुर्वन् यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम्॥" मनुः ४।१४

प्रभु से सुख की प्रार्थना

"इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्युराचके स्वाहा॥" ऋक्. १।२५।१९

(वरुण) हे वरणीय उपास्य इष्टदेव। उत्तमविद्वान्। सर्वव्यापक प्रभो (मे) मेरी, आपके उपासक की, यजमान की, (इमं हवं) इस प्रार्थना को, इस पुकार को, इस स्तुति को। (अद्य) आज, अभी, इसी समय, अस्मिन्महनि। (श्रुधी) श्रवण करो, सुनो। (प्रश्न) क्या ईश्वर के कान हैं जो सुनेगा ? करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः। अन्तवत्त्वमसर्वज्ञता वा।" वेदान्तसूत्र २।२।४०-४१

उत्तर—वह जगदीश्वर हस्त, पाद, चक्षु श्रोत्रादि इन्द्रियों से रहित है, फिर भी इन इन्द्रियों के कर्मों को करता है। "सर्वतः पाणिपादं तत्-सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्॥"

श्वेताश्वतर ३।१६-१७

"अपाणिपादो जवनोगृहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहु रग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥"

श्वेताश्वतर ३।१९

"बिनु पग चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु वाणी वक्ता बड़ जोगी॥

तुलसी रामायण.

इसी भाव से भक्त ने प्रार्थना की हे प्रभो ! मेरी पुकार को सुनो मुझ भवबन्धनों से पीड़ित की पुकार सुनो। सुनकर क्या करो ? (च) और सुनने के पश्चात् (आमृडय) भलीभाँति सुखी करो। मृड् सुखने धातु से। आसमन्तात् मृडय सुखयुक्तं कुर्यात। सत्-चित्-आनन्द से ब्रह्म का स्वरूप है। "आनन्दो ब्राह्मेति व्यजानात्। आनन्दाध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति।

आनन्दं प्रत्यन्त्यभि संविशन्ति इति।" तैत्तिरीय. ३।६

"रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति।"

"सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः।" मनुः ४

(अवस्युः) आत्मनोऽय इच्छुः। अपनी रक्षा चाहने वाला मैं अवरक्षणे धातु से। (त्वाम्) आपको, आनन्द स्वरूप आपको (आचके) आपकी ओर भलीभाँति निहारता हूँ। आपसे याचना करता हूँ। चक् तृप्तौ-धातु से। कामये। (स्वाहा) यह मेरी वाणी सत्य हो। इसी भावना से मैं यह आहुति देता हूँ। स्वाहा सत्यया वाचा।

"चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासु रर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥"
"अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः। गीता ७।१६, ९।३०

पीड़ित की पुकार को सुनो। सुनकर क्या करो ? (च) और सुनने के पश्चात् सुखमिति कस्मात् ? सुहितं खेभ्यः। खं पुनः खनतेः। निरुक्ता आप आनन्द स्वरूप हैं। सुख स्वरूप हैं। मुझे भी आनन्दी और सुखी कीजिये। सुख दो प्रकार का है—(१) सांसारिक लौकिक सुख, अनित्य सुख, (२) शाश्वत सुख, नित्य सुख, पारलौकिक सुख, मोक्ष सुख। जन्ममरण रूप महान् कष्ट से मुक्ति पाना।"

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।" गीता ६।२२

(१) सांसारिक लौकिक सुख। "अर्थागमोनित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च। वंश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्याषड्जीवलोकस्य सुखानि राजन्।"

(२) शाश्वत सुख। शाश्वतद्भव शाश्वतम् सदा स्थायी रहने वाला सुख। अर्थात् मोक्ष सुख मुक्ति सुख। "तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः।"

"जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।" गीता १४।२०

"एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति धीरा स्तेषां सुखं शाश्वत नेतरेषाम्॥"
कठोप. २।१।१२

अन्न की याचना
आहार कैसे करें ?

(भक्ष्याभक्ष्य देखो सत्यार्थ प्रकाश समु. 10)

ओ३म् अन्नपतेऽन्नस्य नोदेह्य नमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नोधेहि द्विपदे चतुष्पदे॥" यजुः ११।८३

"तच्च नित्यं प्रयुंजीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते।
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत्॥"

भावार्थ—मनुष्यैः सदैवारोग्य बलकारकमन्नं भोक्तव्यम्। अन्येभ्यश्च प्रदातव्यम्। मनुष्याणां पशूनाञ्च सुख बले संवर्धनीये।

अहं दाशुषे विभजामि भोजनम्। ऋक्. १०।४८।१

(अन्नपते) अन्नानां पतिः पालकः तत्सम्बुद्धौ। हे अन्न के स्वामी परमात्मन्! (नः) अस्मभ्यं। हमारे लिए। हमें याचकों को, आपके पुत्रों को।(अनमीवस्य) रोग रहितस्य सुखकस्य। रोगरहित और सुख को बढ़ाने वाले। आरोग्यता प्रदान करने वाले। (शुष्मिणः) बहु शुष्मं बलं भवति यस्मात् तस्य। जिससे बहुत बल बढ़े उस अर्थात् बलकारक, शक्तिवर्द्धक। (अन्नस्य) अन्न गेहूँ, जौ, चावल, उड़द, मूँग, मसूर आदि अन्न को अन्न अद्‌भक्षणे - धातु से अन्न शब्द बना।

"अद्यतेत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते।" तैत्तिरीयो.

(प्रदेहि) प्रकृष्टतया देहि। प्रदान कीजिये। पुष्कल मात्रा में हमें दीजिये और इस अन्न के (प्रदातारं) अन्नस्य प्रकर्षेण दातारम्। अन्न के देने हारे, भूखे दीन, दुःखी, पीड़ित और निराश्रय को देने वालों को, (प्रतारिष) संतर। तृप्त करो। बढ़ाओ (नः ऊर्जं) अस्मभ्यं हमारे लिए, ऊर्जं बलं पराक्रमं। हमको तेज बल पराक्रम दीजिंये और हमारे (द्विपदे) द्वौ पादौ यस्य तस्मै द्विपदे। दो पैर वाले मनुष्य भृत्यादि को।(चतुष्पदे) चत्वारः पादाः यस्य तस्मै गवादेः। चार पाँव वाले गौ, बैल, घोड़ा, बकरी आदि उपकारी पशुओं के लिए भी (धेहि) जीवन धारण करने को बलकारक अन्न दीजिये।

"अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः। अन्नेन जातानि जीवन्ति।"

"अन्नं बहु कुर्वीत तद् ब्रतम्।" तैत्तिरीयोपनिषद्

"अन्नं न निन्द्यात् तद् ब्रतम्।" तैत्तिरीयोपनिषद्

"अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते, याः काश्च पृथिवी श्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपि यन्त्यन्ततः। अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठं तस्मात् सर्वौषधमुच्यते। अन्नाद् भूतानि जायन्ते। जातान्यन्नेन वर्धन्ते।

अद्यतेऽन्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते।

तैत्तिरीयोप. ब्रह्मानन्द वल्ली २

"अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः॥" गीता ३।१४
"मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥"
ऋक्.
"त्रय उपस्तम्भाः आहारः स्वप्नो ब्रहमचर्यमिति।" चरक सं.
"आहार शयन ब्रह्मचर्यैयुक्त्या प्रयोजितैः।
शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव धारणैः।" बाग्भट्टस्य
"आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारणः।
स्मृत्यायुः शक्ति वर्णोजः सत्वशोभा विवर्धनः॥" चरक संहिता
"हिताशी स्यात् मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः।
पश्यन् रोगान् बहून् कष्टान् बुद्धिमान् विषमाशनात्॥" चरक.
उष्णं स्निग्धं मात्रावज्जीर्णे वीर्याविरुद्ध इष्टे देशे इष्ट सर्वोपकरणं नातिमुक्तं नातिविलम्बित अजल्पन् अहसन् तन्मना भुञ्जीत आत्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक्।"
चरक. विमान
आहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्द्यं आहारञ्च प्राणसंधारणार्थम्।
प्राणाधार्याः तत्व जिज्ञासनार्थं, तत्वं ज्ञेयं येन भूयो न दुःखम्॥"
गाय और बकरी के उपकार देखो सत्यार्थ प्रकाश समु. १० वाँ
मद्य मांस निषेध। न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने। अनुमत्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी। संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति धातकाः। दोषी हैं।
"अप्राप्त काले भुञ्जानः शरीरे ह्यलघौनरः तथा।
ताँस्तान् व्याधीनवाप्नोति मरणं वा नियच्छति। सुश्रुत सू. अ. ४६
अधर्म्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चाति भोजनम्।" मनुः।
"सुखी स्यामिति विज्ञाय परपीडां विवर्जयेत्।" मनुः
"मांसभक्षैः सुरापानैः मूर्खैश्चाक्षर वर्जितैः।
पुरुषाकारैर्भारेक्रान्तास्ति मेदिनी॥"
"मांसभक्षयिताऽमुत्र यस्यमांस मिहाद्भ्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः॥" मनुः ५।५५
"नाऽकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांस मुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधस्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥" मनुः ५।४८
"न मांस तृणात् काष्ठादुपलाद्वापि जायते।
हत्वा जन्तुं ततो मांसं तस्मादोषस्तु भक्षणे॥"

"यदात्मसंमित मन्नं तदवति तन्न हिनस्ति।
यद् भूयो हिनस्ति तद्यत् कनीयो न तदवाति ।।" शतपथ ब्रा.

आत्मसंमितं स्वोदर परिमाणमनुकूलं च यदन्नं भुज्यते तदन्नंभोक्तारभवति धर्मनिर्वाहाय च भवतिः। तन्न हिनस्ति धातु वैषम्यं सम्पाद्य पुरुषं न हन्ति न पीडयति च, यद्भूयः स्वोदरपरिमाणादतिरिक्त मन्नं भुज्यते तत् हिनस्ति शूलादिक मुत्पाद्य पुरुषं हन्ति धर्मं च नाशयति। यत् कनीयः यत् कनीयोऽत्यल्पमन्नं भुज्यते न तत् पुरुष भवति क्षुन्निवृत्यै धर्म निर्वाहाय च न क्षमं भवति। अतः परिमितमेव भोक्तव्यमिति सिद्धम्।

"नात्यश्नतस्तु योगोस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।" गीता ६।१६

"युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।" गीता ६।१७

"कुक्षेरन्नस्य द्वावशौ पानेनैकं प्रपूरयेत्।
आश्रयं पवनादीनां चतुर्थमवशेषयेत्।।" वाग्भट्टस्य

"तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्त्तते।
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत्।।" चरक.

"अन्नाद् बलं च तेजश्च प्राणिनां वर्द्धते सदा।"

"विधि विहितमन्नपानं प्राणिनां प्राणसंज्ञकानां प्राणमाचक्षते कुशलाः।

अन्नं न निन्द्यात् तद् व्रतम्।
अन्नं वहु कुर्वीत तद् व्रतम्।।" तैत्तिरीय.

"पञ्चभूतात्मके देहे आहारः पाञ्चभौतिकः।
विपक्वः पञ्चधा सम्यक् गुणान् स्वान् स्वान् विवर्धयेत्।।" सुश्रुत

भवसागर पार करने वाली अद्भुत नौका

"कथं तरेम भवसिन्धुमेतं ? का वा गतिर्मे कतमोस्त्युपायः ?

सुनावमित्यस्य गयप्लात ऋषिः स्वर्ग्यानौर्देवता। गायत्री छन्दः।

"सुनावमारुहेयमस्त्रवन्ती मनागसम्।
शतरित्रा स्वस्तये।।" यजु. २१।७

अहं स्वस्तयेऽस्त्रवन्तीमनागसंशतारित्रां सुननावमारुहेयम्।

(स्वस्तये) हे जगदीश्वर आपकी कृपा से मैं कल्याण के लिए अथवा सुख प्राप्ति के लिए। सुखाय ।(अस्त्रवनतीं) छिद्रादि दोषरहिता । छिद्रादि दोषों से रहित। (अनागस) निर्माण दोषरहितां। बनावट दोषों से रहित। (शतारित्रां) शतमरित्राणि यस्यास्ताम्। अनेकों यन्त्रों से युक्त। (सुनावं) शोभनां सुनिर्मितां नावम्। अच्छी बनी नाव पर। (आरुहेयं) अधितिष्ठेयम्। आरोहण करूँ। चढूँ। शतान्यरित्राणि रक्षा साधनानि यस्यास्ताम्।

भावार्थ—दयालु जगदीश्वर ने भवसागर से पार होने के लिए हम लोगों को यह मनुष्य देह रूपी नाव दी है। इस नाव से मनुष्य सांसारिक सुख और मोक्ष सुख प्राप्त कर सकता है। मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिए भवसागर को पार इसी के द्वारा किया जाता है।

"नैय्या मेरी तनक सी बोझी पाथर भार, चहुँ दिसि अति भौंरे उठत केवट है मतमार। केवट है मतमार नाव मँझधारहिं आनी, आँधी उठी प्रचण्ड तेहुँ पर बरसत पानी। कह गिरिधर कविराय नाव के तुमहिं खिवैय्या, उठे दया को हाथ किनारे आवे नैय्या।"

"सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवी नावं स्वरित्रामनागसमस्त्रवन्तीमारुहेम स्वस्तये।।"

अथर्व. ७।६।३, यजुः २१।६, ऋग्वेद. मण्डू १०, सूक्त ६३, मन्त्र १०

हे प्रभो ! हे दयालु जगदीश्वर। हे सर्वदुःख निवारक जगत् स्वामी। आपके द्वारा प्रदान की गई यह मानव देह रूपी नौका कैसी है ? हमको कैसा सुख प्रदान करती है ?

(सु त्रामाणं) सु सुष्ठु अच्छी तरह से, भली प्रकार से, त्रामाण सुरक्षा के सब साधनों से युक्त। सुरक्षित्रीम्। रक्षा करने वाली, अर्थात् हमको सब संकटों से बचाने वाली पार करने वाली। रोग-शोक से बचाने वाली "काये कृतान्ताद् भयम्।"

"रोगाः हरन्ति सततं प्रबला शरीरं कामादयोप्यनुदिनं प्रदहन्ति चित्तम्।
मृत्युश्च नृत्यति सदा कलयन् दिनानि तस्मात्वमद्य शरणं मम दीनबन्धोः।।"

(पृथिवीं) विस्तीर्ण, लम्बी, चौड़ी, पृथु विस्तारे-धातु से। (द्याम्) प्रकाश से युक्त। नेत्रों से प्रकाश तथा ज्ञान का प्रकाश देने वाली (अनेहसं) त्रुटि रहित, निर्दोष, सर्व दोषों से रहित, बाह्य दोषों से शून्य। (सुशर्माणं) सु अच्छा शर्म सुख। अच्छा सुख देने वाली सर्वोत्तम सुख मोक्ष सुख देने वाली, इन्द्रिय सुख।

"बड़े भाग मानुष तन पावा। सुरदुर्लभ सद् ग्रन्थनि गावा।।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाय न जेहि परलोक सँवारा।।"
सो परम दुःख पावहिं शिर धुनि धुनि पछिताय।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाय।।

तुलसी रामायण उत्तरकाण्ड

सुशर्माणं आरामदेह। बहु सुखवतीम्। शर्म सुख दो प्रकार के हैं—
(१) नित्यसुख, शाश्वत सुख मोक्ष। (२) नैमित्तिक सुख।

"यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥"

गीता ६।२२

"काकभुशुण्डि जी से गरुड़जी ने तीन प्रश्न पूछे"—
प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सबसे दुर्लभ कवन शरीरा॥
बड़ दुःख कवन कवन सुख भारी। सो संक्षेपहुँ कहहु विचारी॥
इन तीन प्रश्नों के उत्तर—
"नर तनु सम नहिं कबनिऊ देही। जीव चराचर जाचत जेही॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग नसैनी। ज्ञान विराग भक्ति सुख दैनी॥
सो तनुधरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषयरत मन्द मन्दत्तर॥"
"कंचन काँच बदल शठ लेहीं। कर ते डारि परसमनि देहीं॥
नहिं दरिद्र सम दुःख जग माहीं। संत मिलन सम सुख कछु नाहीं॥"
शठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥

"संत संग अपवर्ग कर कामी भवकर पंथ।"
कहहिं सन्त कवि .... तुलसी रामायण उत्तर काण्ड

(अदितिं) न दिति अदिति। दो अब खण्डने-धातु से दिति शब्द। जो न टूट सके। अकस्मात् नष्ट न होने वाली सुदृढ़ (सुप्रणीतिम्) सु सुष्ठु रीत्या प्रणीतिं निर्माण की हुई, जो अच्छी तरह से बनाई गई हो। बड़े सोच समझकर बनाई गई। (स्वरित्राम्) सु + अरित्राम्। सुन्दर यन्त्रों से युक्त। सुन्दर पतवारों से युक्त। हृदय, मस्तिष्क, फुफ्फुस, आँतें। यकृत् प्लीहा, वृक्क, जननेन्द्रियाँ। दो पाँव जो गति देते हैं। दो हाथ जो कार्यों की सिद्धि को करने वाले हैं। इन यन्त्रों से युक्त। (अनागसम्) आभ्यन्तर दोष। अपराध रहित। निर्दोष मन बुद्धि शरीर वाली। (अस्रवन्तीम्) न चूने वाली। छिद्र रहित। नाव में यदि छिद्र हो जावे तो पानी भर जाय और डूब जाय। "इस शरीर में ९ छिद्र हैं। "इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येक क्षरतीन्द्रियम्।" मनुः

(दैवी नावम्) दिव्य गुणों से युक्त नाव। देव द्वारा निर्मित नाव। अथवा दिव्य गुणों वाले अग्नि, जल, पृथिवी, वायु और आकाश इन पाँच तत्वों से बनी नाव पर हम लोग। (आरुहेम) आरोहण करें। चढ़ें। किसलिए आरोहरण करें ? (स्वस्तये) क्षेमाय। कल्याण के लिए। सुखपूर्वक भवसागर से पार होने के लिए। दैवी नावम् विद्वद्भिः निर्मिताम्। आरुहेम आरुढा भूयास्म। अस्रवन्तीम् स्रवण रहिताम्। जन्ममरण रूप दुःख से छुटकारा प्राप्ति के लिए।

"जन्ममृत्यु जरा दुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।" गीता १४।२०

"तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्यु संसार सागरात्।
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशित चेतसाम्।।" गीता १२।७

"मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्।
तस्मात्त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्धरामि समा विभेः।।" अथर्व.

"आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितम्।
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालोपि न ज्ञायते।।"
"दृष्ट्वा जन्म जरा विपत्ति मरणं त्रासश्च नोत्पद्यते।
पीत्वा मोहमयीं प्रमाद मदिरा मन्मत्त भूतं जगत्।।"

भर्तृहरि वैराग्यशतक ४३

"यावत् स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो।
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयो नायुषः।।"
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्।
संदीप्त भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।। भर्तृहरिः।

"पानी बाढ़ै नाव में घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये यही सयानो काम।।"

इस मन्त्र में ऐसी दैवी नौका का वर्णन है जिसमें रक्षा का सुन्दर प्रबन्ध हो, जो समय आने पर बड़ी की जा सके जो जल में चलने के अलावा आकाश में भी उड़ सकती हो। अच्छी निर्दोष सामग्री से बनी एवं सुख के साधनों से सुसज्जित हो न टूटने वाली हो दूर-दूर तक ले जा सकने वाली, आकस्मिक दुर्घटना अथवा शत्रुकृत संकट से बचाने में समर्थ हो। आन्तरिक एवं बाह्य दोषों से रहित हो। ऐसी दिव्य नौका पर हम सुखपूर्वक भव सागर से पार होने के लिए सवार हों।

"सर्वमन्यत परिव्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तद्भावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्।।"

चरक. निदान. अ. ६

केवल एक चेतनस्वरूप परमात्मा की उपासना

(यत्र काष्ठाप्राप्तिरैश्वर्यस्य स ईश्वरः। इन्द्रः)

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः।।"

साम. उ. ८।१।२।१, ऋक्. १।७।१०, अथर्व. २०।१०।१६

(विश्वतः) सब पदार्थों वा (जनेभ्यः) सब प्राणियों से (परि) उत्तम गुणों के कारण श्रेष्ठतर। सम्पूर्ण पदार्थ अथवा सब प्राणियों से सर्वश्रेष्ठ अथवा सबसे अधिक सूक्ष्म (इन्द्रं) 'इदि परमैश्वर्ये' से। परम ऐश्वर्य युक्त परमेश्वर को। य इन्दति परमैश्वर्यमान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः। (हवामहे) हम लोग बारंबार अपने हृदय में स्मरण करते हैं। पूजा करते हैं। (वः अस्माकं) वह ईश्वर आपके और हमारे सब लोगों के लिए (केवलः) चेतन मात्र स्वरूप, सर्वथा शुद्ध, ही इष्टदेव और पूजनीय (अस्तु) हो।

अर्थात् हम सब लोग चेतन स्वरूप, परमैश्वर्यशाली एकमात्र प्रभु की ही उपासना करें। उससे भिन्न किसी जड़ वस्तु अथवा चेतन मनुष्य प्राणी की उपासना नहीं करें। हमारा इष्टदेव पूजनीय सब देवों का देव केवल वही सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर ही होना चाहिए। अन्य कोई नहीं, उसी की उपासना से हमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति हो सकती है। अन्य देवी देवताओं में मन को लगाने से हमारा यह दुर्लभ मनुष्य देह व्यर्थ चला जायेगा और हम संसार में भटकते ही रहेंगे।

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषा नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥" गीता ९।२२

"अनेक चित्तविभ्रान्ता मोह जाल समावृताः।
प्रसक्ताः काम भोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥" गीता १६।१६

"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
सर्वाध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥"
श्वेताश्वतर ६।११

एको देव इत्यादि सगुणोपासनं निर्गुणश्चेति वचनान्नि गुर्णोपासनम्।
यो सर्वज्ञादिगुणैः सह वर्त्तमानः स सगुणः तभा अविद्यादि क्लेश परिमाण द्वित्वादि संख्या शब्द स्पर्श रूप रस गन्धादि गुणेम्यो निर्गम त्वान्निर्गुणः॥

"भया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।" गीता ९।४

"न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायोस्तिवृत्रहन्। न क्येव यथात्वम्।"
सामवेद ३।१।१।१०

"न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकःकुतोन्यो, लोकत्रयेऽप्य प्रतिमप्रभावः॥"
गीता ११।४३

"एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेक बीजं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं ने तरेषाम्॥"
श्वेताश्वतर ६।१२

एकोऽद्वितीयोऽसहायः। वशी, वशे स्थापयिता। निष्क्रियाणां बहूनां, क्रिया रहितानां अग्नि जल पृथिव्यादीनां। एकं बीजं, प्रकृत्याख्य कारणं। बहुधा यः करोति, नाना कार्य रूपं करोति विस्तारयति तं आत्मस्थं, उस व्यापक परमात्मा को व्याप्य जीवात्मा के अन्दर स्थित को। ये धीराः, ध्यानशीलाः। अनुपश्यन्ति, साक्षात् करते हैं। निरन्तर ध्यान करते हुए। शाश्वतं, शश्वद्भवं शाश्वतम्। नित्य सदा रहने वाला। स्थायी सुखं, मोक्षसुखं भवति।

"इन्द्रं मित्रं वरुण मग्निमाहुरथो दिव्यः ससुपर्णो गरुत्मान्।"
"एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः।"
ऋक्. १।१६४।४६

"न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।" यजु: ३२।२

"यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षुँषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते। केन. १।१६

"यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्। तदेव ब्रह्म .. ।" ७

"यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राण: प्रणीयते।तदेव ब्रह्म त्वं .... ।८

"न द्वितीयो न तृतीयश्चुर्थो नाप्युच्यते। न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते। नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते। तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव। सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति॥" अथर्व कां. १३ अनु. ४

स खल्वेक एव वर्त्तते न कश्चिद् द्वितीयस्तदधिकस्तत्तुल्योवास्ति। एक शब्दस्य त्रिर्ग्रहणात्। अत: सजातीय विजातीयस्वगतभेदराहित्यमीश्वरे वर्त्तत एव द्वितीयेश्वरस्यात्यन्तनिषेधात्। अत एकम द्वितीयमीश्वर विहाय कस्याप्युपास नं कदाचिन्नैव कार्यम्॥

आनन्ददायक जगदीश्वर की उपासना

"एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम् इन्द्रमेकेऽपरे प्राण मपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥" मनुः १२।१२३

"मन्द्रँ होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम्।
अग्नि मीड़े स उ श्रवत्॥" साम. ७।२।३।३

(मन्द्रं) हर्षदायक, आनन्ददायक। मदि हर्षे—धातु से। जो स्वयं आनन्द स्वरूप है सच्चिदानन्द है। अपने प्रेमी भक्तों को सुख और आनन्द का दाता है। रसो वै स: रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति। जीव सत्-चित् है पर आनन्द स्वरूप नहीं है। आनन्द प्राप्त करना चाहता है।

"एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं ने तरेषाम्॥"
कठ. ५।१२

(होतारं) ह्वातारम्। पूजने योग्य। स्तुति प्रार्थना उपासना करने योग्य हू दानादानयो: आदाने चेत्येके। धातु से। (ऋत्विजं) प्रत्येक ऋतु में यजनीय पूजनीय। (चित्रभानुं) चित्र-विचित्र प्रकाशों वाले। सूर्य चन्द्र आदि प्रकाशकों के प्रकाशक "भा दीप्तौ" (विभावसुं) विविध प्रकार के प्रकाश के धनी।

"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भात्ति
कुतोऽयमग्निः।
तमेव भात्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्व मिदं विभाति।"
श्वेताश्वतर. ६।१४, कठ. २।२।१५, मुण्डक. २।२।१०

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥ गीता १५।१२

(अग्नि) तेज स्वरूप परमात्मा की, ज्ञान स्वरूप जगदीश्वर की (ईडे) मैं स्तुति करता हूँ। ईड स्तुतौ-धातु से। क्यों स्तुति करता हूँ ? (स उ श्रवत्) वह आनन्द देने वाला, सर्व सुख प्रदाता, सर्वव्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप प्रभु, निश्चय से मेरी पुकार को, मेरी की गई स्तुति प्रार्थना को सुनता है। मेरी विनती को सुनेगा।

स श्रृणोत्यकर्णः बिनु पग चलै सुनै बिनु काना।

"चतुर्विद्या भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥" गीता ७।१६

हम किस देव की उपासना करें ? "कस्मै देवाय हविषा विधेम्।"

अमर प्रभु की उपासना

अध्वनो वै यज्ञः। शतपथ

"तमध्वरेष्वीडते देवं मर्त्ता अमर्त्यम्।
यजिष्ठं मा॒नुषे जने॥" ऋक्. ५।१४।२

(मर्त्ता) मरणधर्मा मनुष्यः। जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।"
गीता २।२७

(मानुषे जने) मानुषे जने वर्तमानम्। प्रत्येक मनुष्य मात्र के अन्दर वर्तमान।
"सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।" कठ. ६।१७

"हृदि सर्वस्य विष्ठितम्" ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
गीता १८।६१

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
श्वेताश्वतर ४।१७

(अमर्त्य) मरण जन्म से रहित अमर देव की। "न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।" यजुः ३२।३ अव्यक्तं व्यक्ति मापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः। गीता ७।२४

क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टं पुरुष विशेष ईश्वरः।" योगदर्शन

"मृत्योः समृत्युमाप्नोति य इहनानेव पश्यति।"

(यजिष्ठं) पूजनीयम्। यज्ञादि शुभकर्मों में। (तं देवं) उस सर्व सुखदाता देव की। देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा। (अध्वरेषु) यज्ञादि उत्तम कर्मों में। ध्वरित हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेधोऽध्वरः। (ईडते) स्तुति करता है। स्तुति, प्रार्थना, उपासना करनी चाहिए, ईड् स्तुतौ-धातु से। ईडति स्तुति कर्मा।अमर्त्यं जन्म मरण शरीर धारण रहित होने से। सपर्यमाच्छुकमकाय मव्रणमस्नाविर शुद्धमपापविद्धमित्यादि।"

"इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते।" ऋक्. १०।१३५।७

इयमस्य धम्यते नाडीरयं गोर्मिः परिष्कृतः॥" इदं हृदयम् "हृदयं चेतना स्थान मुक्तसुश्रुत देहिनाम्।" सुश्रुत सं. शरीर स्थान "अचिन्त्यरूपो भगवन्निरंजनो

विश्वम्भरो ज्ञानमयश्चिदात्मा। न चिन्तितो येन हृदि स्थितो नो वृथागतं तस्य नरस्य जीवितम्॥" "अध्वरो वै यज्ञः।" शतपथ ब्रा. वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजायो वयं त्वां जगत् साक्षिरूपं नमामः।

सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को हम जानें

"स ओत प्रोतश्च विभूः प्रजासु।"
"तदन्तरस्य सर्वस्य तदसर्वस्यास्य बाह्यतः।" ईशो.
"पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते।
उतो तदद्य विधाय यतस्तत् परिषिच्यते॥" अथर्व. १०।८।२९
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते।"

(पूर्णात्) पूर्ण ब्रह्म से, सर्वत्र व्यापक परमात्मा से। "सर्वं वै पूर्ण स्वाहा।" (पूर्णम्) सम्पूर्ण जगत्। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड। सारा विश्व परिपूर्ण है। और उसी से। (उदचति) उदय होता है। उत्पन्न होता है। "जन्माद्यस्य यतः।" उत् + अचति। अचि गतौ। अचु इत्येके-धातु से। वेदान्त अञ्चु गतौ याचने च। भ्वादि "उच्छिष्टात् जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिवि श्रिताः।" (उत्) और केवल उत्पन्न ही नहीं होता किन्तु। (पूर्णेन) पूर्ण ब्रह्म से। पूर्ण परमात्मा से अथवा पूर्ण ब्रह्म द्वारा, उसकी पूर्ण कृपा से। (पूर्णं) सम्पूर्ण जगत्। यह सम्पूर्ण संसार। पोषण और वृद्धि को प्राप्त होता है। (सिच्यते) सींचा जाता है। "षच् सेचने सेवने च।" धातु से भ्वादि।(तत्) उस ब्रह्म जिससे यह जगत् उत्पन्न होता और सींचा जाता है। उस कारण रूप ब्रह्म को। जन्माद्यस्य यतः।"
वेदान्त १।१।२

(अद्य) आज। इस जन्म में। इस क्षणभंगुर अनित्य जीवन में। शीघ्र ही (विद्याम) हम जानें। ज्ञानियों के उपदेश द्वारा ज्ञान प्राप्त करें। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।" मुण्डक. १।२।१२ तत् चेतन ब्रह्म "तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानि नस्तत्वदर्शिनः॥" गीता ४।३६ ज्ञेयं यत्तत् प्रवक्ष्यामि...... ।

"श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥" गीता ४।३९-४०

(यतः) जिस परमात्मा पूर्ण ब्रह्म से। "इयं विसृष्टिर्यत आबभूव।" (तत्) वह सम्पूर्ण जगत्। दृश्य अदृश्य सम्पूर्ण जगत्। (परिसिच्यते) सब प्रकार से सींचा जाता है। बृद्धि और पुष्टि को प्राप्त होता है।

"अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वे अस्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतै स्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा॥"
मुण्डक.

भावार्थ—सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा से यह सारा संसार पूर्ण तया उत्पन्न हुआ है। उस पूर्ण परमात्मा ने इस जगत् रूपी वृक्ष का सिंचन किया है। उस जगत् के कारण ब्रह्म को जानने में हमें सदा तत्पर रहना चाहिए। यदि हमने उसको नहीं

जाना तो यह हमारा मानव जीवन व्यर्थ ही जायेगा। अतः उसके जानने में हमें विलम्ब नहीं करना चाहिए। क्योंकि हम सबके यह शरीर क्षणभंगुर हैं। ऐसा न हो कि हमारे मन की मन में ही रह जाय। हमारा यह अनित्य शरीर नष्ट हो जाय। इसीलिए वेद ने उपदेश किया "तदद्य विद्याम।" उस परमात्मा को आज ही हम जान लेवें जिससे हमारा मनुष्य जीवन सफल हो जाय।

"दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः।"

"सन्तसंग अपवर्ग कर कामी भवकर पन्थ।
कहहिं सन्त कवि कोविद् श्रुति पुरान सद्ग्रन्थ॥"

तुलसी. दोहावली

"प्रीति प्रतीति सुरीति सो राम नाम जपु राम।
तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिणाम॥"

"बिगरी जनम अनेक की सुधरै अब ही आजु।
होंहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥"

"इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन् महती विनष्टिः।"

केनोपनिषद्. २।२।५

"इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते॥" कठोप. २।३।४

"काल करै सो आज कर, आज करै सौ अब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगो कब॥" कबीर

"श्वः कार्यमद्य कुर्वीत, पूर्वाण्हे चापराण्हिकम्।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्॥" महाभारत.

"अनित्यमसुखं लोकमित्रं प्राप्य भजस्व माम्।" गीता ९।३३

"क्षणभंगुर जीवन की कलिका कल होत प्रभात खिली न खिली।
मलयाचल की शुचि शीतल मन्द सुगन्ध समीर मिली न मिली।
कलिकाल कुठार लिये फिरता तन नम्र से चोट झिली न झिली।
भज ले हरिनाम अरी रसना पुनि अन्त समय पै हिली न हिली॥"

"रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं, भास्वानुदेश्यति हसिस्यति पंकजश्री।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे, हा हन्तहन्तः नलिनीं गज उज्जहार॥"

"तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथाः।"

प्रश्नो. ६।६

"संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।"

गृहस्थाश्रमी को उपदेश

"उपहूताः भूरिधनाः सखाय स्वादु संमुदः।
अक्षुध्यो अतृष्यास्त गृहामास्मद् विभीत न॥"

"सुनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः।
अतृष्या अक्षुध्यास्त गृहामास्मद् विभीत न॥" अथर्व. ७।६०।४-६

(गृहाः) हे गृहाश्रम मिच्छन्तो मनुष्याः। हे गृहस्थाश्रम की इच्छा करने वाले मनुष्य लोगो। (भूरिधनाः) बहुत धन वाले। बड़े धनी। धनवान् लोग। (स्वादु संमुदः) स्वादिष्ट पदार्थों से आनन्द करने वाले। (सखायः) मित्र स्नेही लोग। (उपहूताः) सम्यक् प्राप्ता भवन्तु। अच्छी प्रकार से प्राप्त होवें अथवा उप समीप आवें बुलाये जावें। स्वागत किये जावें। (अक्षुध्या अतृष्याः स्त) तुम लोग भूखे प्यासे मत रहो। (अस्मद्) हमसे, संन्यासियों अथवा अतिथियों से।(मा विभीत न) भय मत करो। मत डरो। (सुनृतावन्तः) प्रिय सत्य वचन बोलने वाले। (सुभगाः) उत्तम ऐश्वर्य वाले, बड़े ऐश्वर्य वाले। (इरावन्तः) उत्तम भोजन, खानपान वाले। (हसामुदाः) हँस-हँस कर प्रसन्न करने वाले। (तृष्याः अक्षुध्याः स्त) प्यासे भूखे मत रहो।

भावार्थ—परम दयालु परमात्मा उपदेश देते हैं—हे गृहस्थियो ! तुम लोग अपने पुरुषार्थ से खूब धन-धान्य सम्पन्न होवो। जो तुम्हारे मित्र, स्नेही, सम्बन्धी अतिथि, याजक तुम्हारे पास आवें वे कभी तुम्हारे, घर से भूखे प्यासे न जावें, उनका उत्तम अन्न, जल पान से प्रेमपूर्वक सत्कार किया करो। सदा सबसे प्रिय बचन बोलो और धर्म पूर्वक अर्थ—काम का उपभोग करते हुए निर्भय रहो।

"सत्यं प्रियं मृदुवाक्यं धीरो हितकरं वदेत्।
आत्मोत्कर्षं तथा निन्दां परेषां न समाचरेत्॥" मनुः ४

एक चक्र (पहिये) वाला रथ

"सप्त युञ्जन्ति रथमेक चक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः॥"
अथर्व. ९।९।२, ऋक्. १।१६४।२

(एकं चक्रं रथं सप्त युञ्जन्ति एकः सप्तनामा अश्वः त्रिनाभि-अजरं अतर्वं चक्रं वहति यत्र इमा विश्वा भुवना अधितस्थुः।) (एक चक्रं) एक चक्र पहिये वाले, जिसमें एक पहिया लगा है ऐसे एक पहिये के समान काम करने वाले जीवात्मा से युक्त। (रथं) रथ को शरीर को। रथः रंहतेर्गतिकर्मणः। रमणीय।

"रथः शरीरं पुरुषस्य राजन् आत्मानियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः।
तैरप्रमत्तःकुशली सदश्वैर्दान्तैर्सुखं याति रथीव धीरः॥"
विदुरनीति

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।"

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रह मेव च। इन्द्रियाणि ह्यानाहु बिंषयास्तेषु गोचरान्। आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः कठ. ३।३-४

रथ, रथी, सारथि। रथः रममाणोस्मिंस्तिष्ठतीत्यर्थः। रहणंशीलं रथरूपं वा शरीरम्। (सप्त) सात इन्द्रियाँ श्रोत्र, चक्षु, नासिका, त्वचा, जिह्वा, मन और बुद्धि ये

सात इन्द्रियाँ। सप्त सृप्ता संख्या। सृं गतौ। (युञ्जन्ति) सात नाम वाला। आत्मा अतते र्वा आप्तेर्वा। (एकः अश्वः) अकेला एक घोड़ा। अश्व रूपो व्यापक जीवात्मा। अश्वः कस्मादश्नुतेध्वानम्। अशूङ् व्याप्तौ। धातु से। जो इस शरीर में व्यापक रूप से है और सब इन्द्रियों को गति देता है वह जीवात्मा। जीवस्य जीवनस्य आत्मा अधिष्ठता। (त्रिनाभिः) सत्व, रज और तमोगुण रूप तीन नाभि बन्धन वाले नाभिः मध्यकाष्ठ। (अजरं) जीर्णता रहित। जरावस्था रहित। अजरणधर्माणम्। (अनर्व) न टूटने वाले, कभी नष्ट न होने वाले। अक्षीणम्। (चक्रं) चक्र को, पहिये को, चक्र के समान काम करने वाले जीवात्मा को। उस परमात्मा को। चरतेर्वा क्रामतेवी। (वहति) ले जाता है। प्राप्त करता है। वह प्रापणे - धातु से परमात्मा की ओर ले चलता है। प्रापयति। निरुक्त. ४।२७

"साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाय न जेहिं परलोक सँवारा॥"
सो परम दुःख पावहिं शिर धुनि धुनि पछिताय॥
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाय॥
तुलसी रामायण

कहाँ ले जाता है ? अब इसका उत्तर देते हैं—

(यत्र) जिस परमात्मा में। यस्मिन् परमात्मनि तस्मिन्। (इमाः) यह सब दृश्य और अदृश्यमान्। (विश्वाः) विश्वानि सम्पूर्ण, सब सर्वाणि। (भुवना) भुवनानि लोक लोकान्तर। लोकाः। (अधि तस्थुः) अधि मध्ये तस्थुः ठहरे हैं स्थित हैं। जिसमें स्थित हैं, ठहरे हुए हैं। तिष्ठन्ति।

भावार्थ—एक पहिये वाला यह रथ (हमारा शरीर है) इस रथ के पहिये में सात अरे जुड़े हुए हैं। अरे दण्ड दण्डे। वे सात कौन से हैं ? श्रोत्र, नेत्र, रसना, त्वचा, घ्राण, मन और बुद्धि ये सात हमारे रथ रूप शरीर में ये सात इन्द्रियाँ जुड़ी हुई हैं। जैसे रथ में पहिया गति करता है और उसी के सहारे रथ चलता है। वैसे ही हमारा शरीर गति करता है। इसलिए इसको "रथ" अर्थात् गति करने वाला कहा गया है। पहिये में अरे लगे हुए हैं। वैसे ही हमारे शरीर में सात इन्द्रिय रूपी अरे जुड़े हुए हैं। जैसे अरे लगे हुए पहिये को घोड़ा चलाता है वैसे ही हमारे शरीर रूपी रथ के पहिये को जीवात्मा गति देता है। चलाता है। रथ के पहिये में एक नाभि (मध्यकाष्ठ) होती है परन्तु हमारे शरीर रूपी रथ के पहिये में सत्व, रज, तम रूपी तीन नाभि हैं। जिनमें ये सात इन्द्रिय रूपी अरे लगे रहते हैं। इस तीन नाभि वाले चक्र पहिये को एक अश्व जीवात्मा चलाता है। वह जीवात्मा कैसा है ? जो कभी बूढ़ा नहीं होता। कभी नष्ट नहीं होता है। अर्थात् जन्म मृत्यु, जरा से रहित है। वह जीवात्मा इस रथ को कहाँ ले जा रहा है ? जिस परमात्मा में यह सब दृश्य-अदृश्य लोक लोकान्तर स्थित हो रहे हैं। इसलिए इस जीवात्मा को ज्ञान वान् उन्नतिशील बनाना चाहिए तभी हमारा यह रथ मंजिल पर पहुँचेगा।

"वयं स्यामपतयो रयीणाम्।" ऋक्.

(धाता) डुधाञ् धारण पोषणयोः। धातु से।

"धाता दधातु नो रयि मीशानो जगतस्पतिः। स नः पूर्णेन यच्छतु॥"

अथर्व. ७।१७।१

धाता = धारण पोषण करने वाला। "दध् धारणपोषणयोः।" (ईशानः) ऐश्वर्यवान्। ईश ऐश्वर्ये। धातु से। सब पर शासन करने वाला प्रभु। ईश्वरः सर्व ईशानः—इत्यमरः। (जगतःपतिः) सब संसार का पालन पोषण करने वाला। स्वामी, अधिष्ठाता (धाता) सृष्टिकर्त्ता। धारणकर्त्ता। धृ धारणे-धातु से।

अथवा कर्मफल विधाता जगदीश्वर। धाताहं विश्वतोमुखः। गीता १०।३३

(नः) हमें। हम याचकों को। अपने भक्तों को। (रयिम्) धन वा ज्ञान। ऐश्वर्य वैभव राज्य लक्ष्मी। चक्रवर्ती राज्य धनमिति कस्मात् धिनोनीति सतः। धिनोतीस्तर्पयतीत्यर्थः।

लक्ष्मी लाभाद्वाऽऽलक्षणाद्वा, लाञ्छनाद्वा, लषते र्वा स्यात् प्रेप्सा
प्रेप्सा कर्मणो लज्जतेर्वा स्यात् श्लाधा कर्मणः।" निरुक्त ४।९

लाभाद्वा—लक्ष्मीवन्त एव लभन्ते नेतरे। आलक्षणाद्वा—आलक्षित एव हि लक्ष्मीवान्। लाञ्छनाद्वा—तया हि लाञ्छित एव (इव) भवति। लषतेर्वा स्यात् प्रेप्साकर्मणः—सर्वं एव हि तामभिलषति। लग्यतेर्वास्यादाश्लेष कर्मणः—आश्लिष्य इव हि सा वर्त्त ते पुरुषम्। लज्जतेर्वा स्यात् अश्लाघा कर्मणः—येहि लक्ष्मीवन्तो भवन्ति ते स्वयमात्मानं न श्लाघयन्ति।

"अग्निना रयि मश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे। यशसं वीरवत्तमम्॥"

ऋक्. १।१।३

"यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति॥"
"त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं, पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च।
तमर्थवन्तं पुनराश्रयन्ति ह्यर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः॥"
"अर्थस्य पुरुषो दासः दासत्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्य महाराज बद्धोस्यर्थेन कौरवैः॥"

महाभारत भीष्म.

भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कहा। अध्याय ४३ श्लोक ४१

"यावत् वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्निज परिवारो रक्तः।
पश्चात् जर्जर भूते देहे वार्त्ता पृच्छति कोपि न गेहे॥"

"इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि देहि। ऋक्। द्रविणोदा इन्द्रः।"

"धनं द्रविणमुच्यते। यदेनमभि द्रवन्ति। अभि आभिमुख्येन।" (दधातु) देवे। धारण करावे। पूर्ण करे। दध् धारणे।प्रदान करे: "त्वं विश्वस्य धनदा असि।" ऋक्.

"दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुक्ते तस्य तृतीया गति र्भवति।।" मनुः
"चत्वारो धनदायदाः धर्माग्नि नृपतस्कराः।
तेषां ज्येष्ठावमानेन त्रयः कुप्यन्ति बान्धवः।।"

(सः नः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु हमें, हम सब भक्तों को, याचकों को। (पूर्णेन) सम्पूर्ण ऐश्वर्य, वैभव, धन-लक्ष्मी, चक्रवर्ती राज्य से। (यच्छतु) सुखी, धनवान् बनावें, संयुक्त करे। लक्ष्मीवान् करे।

"भूरि दा भूरि देहि नो मादभ्रं भूर्याभर।" ऋक्. ४।३२।२०
"नात्मान मवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।
आमृत्योः श्रियमन्विच्छेत् नैनां मन्येत् दुर्लभाम्।।" मनुः ४।१३७
"धनाद्धर्मं ततः सुखम्। न बन्धु मध्ये धनहीन जीवनम्।"
"विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः।
धृति र्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवन हेतवः।।"
मनुः १०।११६

भृतिः ओहदेदारी। धृतिः धरोहर रखना। कुसीदं ब्याज।

"उत्साह सम्पन्न मदीर्घसूत्रं क्रिया विधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़ सौहृदं च लक्ष्मी स्वयं याति निवास हेतोः।।"
"कुचैलिनं दन्तमलावधारिणं, वह्वाशिनं नित्य कठोर भाषिणम्।
सूर्योदये चास्तमितेशयानं, विमुञ्चति श्रीर्यदि, चक्रपाणिः।।"
"माता निन्दति, नाभिनन्दति पिता भ्राता न संभाषते।
भृत्यः कुप्यति नानुगच्छति सुतः कान्ता च ना लिङ्गते।।"
अर्थ प्रार्थन शकया न कुरुते संभाषणं वै सुहृत्।
तस्माद्द्रव्यमुपार्जय श्रृणुसखे द्रव्येण सर्वे वशाः।।"
"कबिरा सब जग निरधना, धनवन्ता नहिं कोय।
धनवन्ता सो जानिये जाकै राम नाम धन होय।।"
"केचित् वदन्ति धनहीन जनो जघन्यं, केचित् वदन्ति गुणहीन जनो जघन्यः।
व्यासो वदत्यखिल चेद् विशेष विज्ञो नारायण स्मरणहीन जनो जघन्यः।"

नेदं यदिद मुपासते
फिर किसकी उपासना करें ?

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति। तदेव ब्रह्मत्वं यन्मनसो न मनुते येनाहुर्मनो मतम्। तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि। केनोपनिषद्

"कविमग्निमुपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे। देवमवीवचातनम्॥"

ऋक्. १।१२।७ सामवेद १।१।३।१२

(कविं) सर्वज्ञ। सर्वं जानातीति सर्वज्ञः। सर्वविद्याप्रदातारम्। (सत्यधर्माणं) सत्यधर्मी। जिसके सब नियम धर्म अटल हैं। सत्य हैं। जिसके नियम में बँधे हुए सूर्य, चन्द्र, पृथिवी मंगल, शुक्र, शनि, बृहस्पति आदि ग्रह उपग्रह अपने नियम में स्थित होकर अपनी अपनी गति से घूम रहे हैं जिसके नियम को तोड़ने का किसी में भी सामर्थ्य नहीं है। ऐसे अटल नियम वाले सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सत्यधर्मी। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।" (अमीवचातनं) रोगों के विनाश करने वाले। सब प्रकार के दुःखों और रोग शोकों को नष्ट करने वाले।

"स्वाभाविकागन्तुक कायिकान्तराः रोगा भवेयुः किल कर्मदोषजाः।"

शार्ङ्गधर सं.

(अग्निं) स्वप्रकाश स्वरूप। ज्ञान स्वरूप तेजोमय परमात्मा की। (देवं) सब सुखों के देने वाले देव की। (अध्वरे) अहिंसनीय यज्ञादि शुभ कर्मों में। ध्वरति हिंसा कर्मा तत् प्रतिषेधोध्वरः। अध्वरमिति यज्ञ नाम। ध्वरति, धूर्वतीति हिंसायेंषु। (उपस्तुहि) उपासना और स्तुति कर। श्रद्धा भक्ति से प्रेम में मग्न होकर नित्य स्तुति प्रार्थना उपासना किया करें।

"भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः॥" कठोपनिषद् ६

भय = नियम, आज्ञा, अनुशासन, नियन्त्रण।

"अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥" गीता १७।२८

"अश्रद्धा ननृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः।" यजु: १९

"श्रद्धया सत्यमाप्यते।" यजु: १९

"अध्वरो वै यज्ञः।" शतपथ.

"अश्रद्धा परमं पापं श्रद्धा पाप प्रमोचिनी।
जहाति पापं श्रद्धावान् सर्पो जीर्णामिव त्वचम्॥"

"प्रीति प्रतीति सुरीति सों राम राम कहि राम।
तुलसी तेरो है भलौ, आदि मध्य परिणाम॥"

"रसना सांपिनि बदन बिल, जे न जपहिं हरि नाम।
तुलसी प्रेम न राम सों, ताहि विधाता बाम॥"

"हिम फाटहु फुटहु नयन जरहु सो तनु केहि काम।
द्रवहिं स्रवहिं पुलकहिं नहीं तुलसी सुमिरत राम॥"

"हृदय सो कुलिश समान जो न द्रवहिं हरि गुन सुनत।
करन राम गुण गान, जीह सो दादुर जीह सम॥"

(स्तुतिः) गुण कथन हि स्तुतिः। उत्तम गुणों का कथन करना स्तुति कहाती है। इसका दूसरा नाम स्मरण कहलाता है।"जो ईश्वर वा अन्य किसी के गुण ज्ञान कथन श्रवण और सत्यभाषण करना है वह स्तुति कहाती है। यथा—त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।" इत्यादि स्तुति से ईश्वर में प्रीति उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना होता है। यही स्तुति का फल है। (प्रार्थना) प्र + प्रकर्षेण विशेष उत्कण्टा से। अर्थना माँगना या याचना करना। "अपने पूर्ण सामर्थ्य के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिए परमेश्वर अथवा किसी सामर्थ्यवान् व्यक्ति से याचना करना सहायता लेने का नाम प्रार्थना है।" प्रार्थना से जीवन में निरभिमानिता आती है। उत्साह उत्पन्न होता है और सहायता की प्राप्ति होती है।

"विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव॥"

"वयं स्यामपतयो रयीणाम्। वयं भगवन्तः स्याम।" इत्यादि।

(उपासना) उप समीप, निकट। आसना बैठना, उपस्थित होना, अर्थात् परमात्मा के निकट बैठना। ईश्वर को सर्वव्यापक और अपने को व्याप्य समझकर ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है। ऐसा निश्चय कर करना। उपासना का फल ज्ञान की प्राप्ति और मोक्ष की प्राप्ति है।

हम आपको प्राप्त करें ?
कैसे करें ?

प्रभु की प्राप्ति मानव का अन्तिम लक्ष्य है। जो कैसे प्राप्त हो ?धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति।

"आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।
न त्वमिन्द्रातिरिच्यते॥" साम. पू. ३।१।१।९

यत्र काष्ठाःप्राप्तिरैश्वर्यस्य स ईश्वरः इन्द्रः।

"इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।

(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् प्रभो ! य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः। इदि परमैश्वर्ये। धातु से इन्द्र। जो सबसे अधिक ऐश्वर्यशाली हो। वह इन्द्र है। जिससे बढ़कर अन्य कोई ऐश्वर्यवान न हो। ऐश्वर्य की पराकाष्ठा हो। (इन्दवः) हमारी बुद्धि हमारा मन तथा हमारी इन्द्रियों की वृत्तियाँ हमारी वाणी ये सब इन्द्रियाँ। चन्द्र की किरणें। (त्व आविशन्तु) आपमें अच्छी तरह से लग जावें। आप में प्रवेश कर जावें। "विश् प्रवेशने" आपके ध्यान में सब ओर से लग जावें। कैसे लग जावें ? आप में कैसे प्रवेश करें ? (इव सिन्धवः समुद्रं) जिस

प्रकार जैसे नदियाँ समुद्र को प्राप्त होती हैं। समुद्र में मिल जाती हैं उसमें विलीन हो जाती हैं। उसी प्रकार हमारा मन, हमारी बुद्धि, हमारी इन्द्रियाँ आप में प्रवेश कर जावें, आपके ध्यान में लग जावें।

समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः।"

"इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूताना नमृतत्त्वाय कल्पते॥" मनुः

"इन्द्रियस्येन्द्रियार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौह्यस्य परिपन्थिनौ॥" गीता ३।३४

"यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय।
तथा विद्वान् नाम रूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥"
मुण्डक्. ३।२।८

नद्यः कस्मात्? नदनाः इमाः भवन्ति शब्दवत्यः। निरुक्त २।२४।५

समुद्रः कस्मात्? समुद्रद्रवन्त्यस्मादापः, समंमिद्रवन्त्येनमापः।

सम्मोदन्तेस्मिन् भूतानि, समुदको भवति, समुनत्तीति वा। निरुक्त २।१०

समुद्रद्रवन्त्यस्मादापः = वीचि तरंग शीकरादिभावेन।

"आपूर्यमाणमचल प्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामः यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्ति माप्नोति न काम कामी॥"
गीता २।१०

"ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःख योनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥" गीता ५।२२

"परिणाम ताप संस्कार दुःखै गुणवृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव
सर्वं विवेकिनः।" योगसूत्र १।१५

"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥" मनुः २।९४

समभिद्रवन्त्येनमापः सर्वा एव ह्यापो निम्नानुसारित्वात् समुद्र- मेवाभिमुख्येन द्रवन्ति सहि निम्नो भवति। जिमि सरिता सागर मँह जाहीं। यद्यपि ताहिं कामना नाहीं॥

सम्मोदन्ते अस्मिन् भूतानि संहृष्यन्ति जलचराणि सत्वानि। बहूदकत्वात्।
"सुखी मीन जँह नीर अगाधा। जिमि हरिशरण न एकहिं बाधा॥"

समुदको भवति उद् इत्युदक नाम, तदस्मिन् संहतमिति समुद्रः।

समुनत्तीति वा संक्लेदयतीति इत्यर्थः। उन्दी क्लेदने धातु से अतोहि प्रसृतैरम्भोभिः सर्वमिदं सक्लिथते।

आपमें क्यों लग जावें ? आपमें क्यों प्रवेश कर जावें ? अब इसका उत्तर देते हैं।

"आपूर्यमाण मचल प्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति ...... ।"

(त्वाम्) आपसे। आप परम ऐश्वर्य सम्पन्न हैं। इसलिए आपसे (न अतिरिच्यते) बढ़कर कोई नहीं है। आपसे उत्तम कोई नहीं है।

"न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायोस्ति वृत्रहन्। न क्येवं यथा त्वम्।।"

अर्थात् हे इन्द्र परमेश्वर आपसे कोई उत्तम नहीं, आपसे कोई बड़ा नहीं। हे अज्ञान अविद्यादि दोषनाशक प्रभो ! संसार भर में आपके समान दूसरा कोई नहीं है।

"न त्वत्समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते।" श्वेताश्वतर.

"पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत् समोऽस्त्यधिको कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्य प्रतिम प्रभावः ।।"
गीता ११।४३

"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।" योगदर्शन।

"त्वं हि नः पिता वसोः त्वं माता शतक्रतो बभूविथ,
अथाते सुम्नमीमहे।।"

"यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित् यस्मान्नाणीयो
न ज्यायोस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरिषेण सर्वम्।।"
अथर्व.

"ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।" गीता ९।२९

"मय्यर्पित मनोबुद्धी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।" गीता १२।१४

"अभ्यास योग युक्तेन चेतसा नान्य गामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्।।" गीता ८।८

"ब्रह्मविदाप्नोति परम्।" तैत्तरीयो. ब्रह्मानन्द.

"यस्मान्न जातः परो अन्योऽस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सरराणस्त्रीणि ज्योतींषि स चते स षोडषी।।"
यजु: ८।३६

ईर्ष्या निवारणोपदेशः। ईर्ष्या निवारण का उपदेश।

"ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम्।
अग्निं हृदय्यं शोकं तं ते निर्वापयामसि।।"
अथर्व. काण्ड ६ सू. १८।१

हे मनुष्य ! (ईर्ष्यायाः) ईर्ष्य ईर्षयाम्। डाह की। पर सम्पत्यसहनस्य मत्सरस्य। पर गुणानां सम्पत्यादीनां वा असहनं ईर्ष्या। परः गुणेषु दोषारोपण मसूया। "ईर्ष्य ईर्ष्यायाम्।" धातु से। (ध्राजिम्) "ध्रजगतौ-इञ्। गति को। ईर्ष्या की चाल को वेग को। (प्रथमाम्) पहिली। (उत) अपि च। और (प्रथमस्याः) प्रथम भाविन्यागतेः। पहिली गति को। वेग को (अपराम्) अन्तरां गतिं। दूसरी गति को। वेग को। (अग्निम्) संतापरुपमग्निम्। सन्ताप करने वाली। जलाने वाली आग को। यह पहली गति है। (हृदय्यम्) हृदय में भरी। हृदये भवम्। हृदय में होने वाली।(तं शोकम्) तं खेदम्। सताने वाले उस खेद को, यह दूसरी गति (तम्) हिसकं खेदम्। (ते) तेरे अन्दर विद्यमान। (निः वापयामसि) निः नितरां निश्शेषेण। सर्वथा। पूरी तरह से।वापयामः = छेदयामः। शमयामः। नष्ट करते हैं। ईर्ष्या मत्सरता।

भावार्थ—मनुष्य दूसरों की उन्नति देखकर कभी डाह न करें। किन्तु दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझें। "कामं क्रोधं मदं मोहं मात्सर्यं लोभमेव च। अमून् षड्वैरिणोजित्वाः सर्वत्र विजयी भवेत्॥" बुद्धोपदेशः। पर गुणानामसहनमीर्ष्या।

"उलूकयातं शुश्लूक यातुं जहि श्वयातु मुत कोक यातुम्। सुपर्णयातु मुत गृध्र यातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र॥" अथर्व.

"परोत्कर्षासहिष्णुत्वमीर्ष्यां प्राहुर्मनीषिणः।"
इति ईर्ष्या लक्षणम्।
"पर सुख सम्पत्ति देखि सुनि जरहिं जे जड़ बिनु आगि।
तुलसी तिनके भाग ते चलै भलाई भागि॥"
दोहावलिः।

"संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचेतस षोडषी।" यजुः ८।३६
"दिवा पश्यति नोलूकः काकः नक्तं न पश्यति।
अपूर्वः कोऽपि ईर्ष्यान्धः दिवा नक्तं न पश्यति॥"

ईर्ष्या करने से हानि

"यथा भूमिर्मृतमनामृतान्मृतमनस्तरा।
यथो तमम्रुषोमन एवेर्ष्यो मृतं मनः॥"
अथर्व. काण्ड ६, सूक्त १८, मन्त्र २

(यथा) येन प्रकारेण। जिस तरह। जिस प्रकार से। (भूमिः) सर्व प्राणिभिरधिष्ठिता मही। सब प्राणियों के निवास करने योग्य पृथिवी। "भवन्ति भूतानि यस्यां सा भूमिः।" (मृतमनाः) उत्पादन शक्ति हीना। ऊषरा। मरेमन वाली ऊसर होकर (मृतात्) त्यक्त प्राणात्। मृतकात्। मरे हुए से भी। (मृतमनस्तरा) अधिक मृतमनाः। अधिक मरे मन वाली है। (उत) अपि च। और भी (यथा मम्रुषः

मनः) यथा मृतवतः पुरुषस्य। जैसे मरे हुए मनुष्य का मन मनोबल नष्ट हो जाता है। मृङ् प्राणत्यागे। (एव ईर्ष्याः) एवं ईर्ष्या युक्तस्य पुरुषस्य। इसी प्रकार डाह करने वाले मनुष्य का। ईर्ष्योः मत्सरता वाले मनुष्य का। (मनः मृतं) मनः विनष्टं भवति। मन मरा होता है।

भावार्थ—जैसे भूमि ऊसर हो जाने से उपजाऊ नहीं रहती। जैसे मृतक प्राणी का मन कुछ नहीं कर सकता। वैसे ही डाह करने वाला जलभुन कर उद्योग हीन हो जाता है।

"परोत्कर्षासहिष्णुत्वमीर्ष्यां प्राहुर्मनीषिणः।" इति ईर्ष्या लक्षणम्।

"तुलसी जे कीरति चहँहि पर की कीरत खोय।
तिनके मुँह मसि लागि है मिटिहि न मरिहैं धोय॥" दोहावलिः

"तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।" यजुः ३४।१

"मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावना तश्चित्तप्रसादनम्।" योगदर्शन समाधिपांद सूत्र ३३

"परद्रोही परदाररत परधन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय देह धरे मनुजाद॥" दोहावलिः

पर गुणेषु दोषारोपण मसूया। असूया = मत्सरता। निन्दा।

ईर्ष्या दूर करने का उपाय

पर गुणानामसहनमीर्ष्याः पर गुणेषु दोषाविष्करणमसूया।

"अदो यत् ते हृदिश्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम्।
ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरुष्माणं हतेरिव॥"

अथर्व. काण्ड ६। सूत्र १८। मन्त्र ३

"योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥"

(अदः) तत् प्रसिद्धम्। वह प्रसिद्ध ईर्ष्या-डाह रूपी आग। (यत् ते) जो तेरे अन्दर। (हृदि श्रितम्) हृदये स्थितम्। हृदय में रखी हुई, स्थित। (पतयिष्णुकम्) इतस्ततः पतनशीलम्। पत् गतौ।इष्णु च कन्। (मनस्कम्) मन को पतन करने वाली है। (तत् ते) तस्मात् मनसः। ते तव। उस मन से तेरी। (ईर्ष्याम्) मत्सरताम्। डाह को। परोत्कर्षासहिष्णुत्वमीर्ष्यां प्राहुर्मनीषिणः। (मुञ्चामि) मोचयामि। मुच्लृ मोचने। छुड़ाता हूँ। (निः उष्माणम्) निः बहिर्भावे। निश्चयेन वा। निश्चय से। बाहर निकालता हूँ। उष्माणं वाष्पम्। अन्तः पूरित वायुम्। श्वास को। (दृतेः इव) चर्ममयात् पात्रादिव। भस्त्रायाः सकाशात्।

जैसे लुहार धौंकनी से हवा को बाहर निकालता है वैसे ही तेरे हृदय मन में स्थित ईर्ष्या को मैं तेरे शरीर से बाहर निकालता हूँ।

अग्ने रिवास्य दहतो दावस्य पृथक्।
एता मेतस्येर्ष्यामुन्दाग्निमिव शमय॥ अथर्व. ७।४५।२

"कामं क्रोधं मदं मोहं मात्सर्यं लोभमेव च।
अमून् षड् वैरिणो जित्वा सर्वत्र विजयी भवेत्॥"

बुद्धोपदेश। धम्मापद।

हृदय एक मन्दिर है जिसमें प्रभु का निवास है। यह पवित्र रहना चाहिए।

"इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते।" ऋक्. १०।१३५।७

"काम क्रोध मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।
जिनके कपट दम्भ नहिं माया। तिनके हृदय वसहु रघुराया॥"

तुलसी

"मूकः परापवादे परदार निरीक्षणेऽप्यन्धः।
पंगु पर धन हरणे स जयति लोकत्रये पुरुषः॥"

ईर्ष्या एक ऐसी आग है। जो पहले प्रदीप्त करने वाले को जलाती है।

क्रोधशान्त्युपदेशः। (क्रोध शान्ति का उपदेश)

"अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै॥" अथर्व. ६।४२।१

(ते हृदः) हे मनुष्य! तेरे हृदय से। तेरे हृदय में स्थित। (मन्युम्) क्रोध को। क्रुधि हिंसायाम्। हिंसा के भाव को। परापकार करण हेतु बुद्धि विशेषः क्रोधः। (अवतनोमि) मैं उतारता हूँ। क्रोध के वेग को शान्त करता हूँ। (इव) यथा, जैसे (धन्वनः) धनुषः। धनुष से। चढ़े हुए धनुष से जैसे लोग। (ज्याम्) मौर्वीम्। डोरी-चाप को उतारते हैं। उसी प्रकार से तेरे चढ़े हुए क्रोध को नीचे उतारता हूँ। शान्त करता हूँ। (यथा) जिससे। येन प्रकारेण। (संमनसौ) समान मनस्कौ परस्परानुरागिणौ। एक समान एक। (भूत्वा) होकर (दूसरे में अनुरागी-प्रेमी होकर) (सखायौ इव) सुहृदाविव। दो मित्रों के समान। (सचावहै) समवेतौ नित्यं संगतौ भवाव। हम दोनों मिले रहें। षच् समवाये-लोट्।मनः प्रक्षोभको यो द्वेष परिपाकः स क्रोधः। परापकार करण हेतु बुद्धि विशेषः।

"यस्मान्नोद्विजते लोको, लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥" गीता १२।१५

"अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः सम दुःख सुखः क्षमी॥" गीता १२।१३

"मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्।"

योग दर्शन १।३४ (समाधिपाद)

"काम क्रोध मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न दोहा।

जिनके कपट दम्भ नहिं माया। तिनके हृदय बसहु रघुराया॥" तुलसी

नास्ति काम समो व्याधिः नास्ति लोभ समो रिपुः।
नास्ति क्रोध समो वन्हिः तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥

जगदीश्वर ने संसार को कैसा रचा है ?

"इदं विष्णु विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पां सुरे स्वाहा॥"

यजुः ५।१५, साम पूर्वा. ३।१।३, ऋक्. १।२२।१७, अथर्व. ७।२६।४

(इदम्) परिदृश्यमानं जगत्। प्रत्यक्षाप्रत्यक्षं जगत्। इस प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् को। ज जायते। ग गच्छति। त तिष्ठति। इस उत्पत्ति स्थिति विनाशशील संसार को। (विष्णुः) व्यापकः परमेश्वरः। विष्लृ व्याप्तौ धातु से नुः प्रत्यय। वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स विष्णुः व्यापको जगदीश्वरः। सर्वव्यापक जगदीश्वर ने विशप्रवेशने" धातु से (विचक्रे) वि विविधार्थे चक्रमे रचितवान्। विक्रान्तं पराक्रम युक्तं कृतवान्। सामान्यार्थे लिट्। विविध प्रकार से रचा है। पुरुषार्थयुक्त किया है। (त्रेधा) त्रिः प्रकारम्। तीन प्रकार से धारण किया है। द्युलोक, पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष। (निदधे) नियमेन धारयामास। नि नितरां, दधे धरति, दधाति धास्यति वा। दध् धारणे।" दध धारण पोषणयोः।

(पदम्) पद्यते गम्यते तत् पदम्। "पदस्थैर्य्ये गतौ च।" अच् उत्पत्ति स्थिति गति कर्माणि। गतिशील किया है। पद् गतौ सूर्यलोक, अन्तरिक्ष लोक और पृथिवीलोक इन तीन प्रकार से धारण करता है। अथवा प्रकाश्यलोक, अप्रकाश्यलोक और परमाण्वादि अदृश्य। प्रकाश्य वाले सूर्यादि, अप्रकाश वाले पृथिवी आदि और तृतीय परमाणु आदि अदृश्य जगत्।

(अस्य) त्रिविधस्य जगतः। इस तीन प्रकार के जगत्। (संमूढम्) सम्-उढम्। राशीकृतम्। स्थापित करता है। (पांसुरे) पांसुभिः रजोभिः परमाणुभिः युक्ते अन्तरिक्षे। पासवो रेणवो रजांसि रमन्ते यस्मिन् अन्तरिक्षे तस्मिन्। अन्तरिक्ष में स्थापित करता है। (स्वाहा) सत्यया वाचा। स सर्वौ सुसेवनीयः।

दयालु जगदीश्वर हमारे अज्ञान अंधकार को दूर करें (तमसो मा ज्योतिर्गमय)

"अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविण स्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः॥" यजुः ३३।९, साम. १।१।४

(अग्निः) ज्ञान स्वरूपः परमेश्वरः। अविद्यान्धकार निवारक जगदीश्वर। अग्निः कस्मात् अग्रणी भवति। अञ्चु गति पूजनयोः।" धातु से। उन्नतिशील करने वाला प्रभु। (वृत्राणि) अज्ञान, अविद्यान्धकारों को, दुःखों को दुःख के कारणों को।

"अविद्याऽस्मिता रागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः। योग २।३

विद्या वेत्ति यथावत् तत्व पदार्थ स्वरूपं यथा सा विद्या ।।" अविद्या यथा तत्व पदार्थ स्वरूपं यथावत् जानाति न ।भ्रमादन्यस्मिन् अन्यन्निश्चिनोति सा अविद्या । वृत्र इति मेघ नाम। "अदुष्टं विद्या।" तदुष्ट ज्ञानं अविद्या।" सांख्यदर्शन । "अनित्याशुचि दुःखानात्मसुनित्य शुचि सुखात्म ख्यातिरविद्या।" योग-२।५

"इन्द्रियदोषात् संस्कारदोषाच्चाविद्या।" (अस्मिता) दृक् दर्शन शक्त्योरेकात्मते वास्मिता।" योग २।६

दृष्टा और दृश्य को एक मानना। अहंकार अभिमान। (राग) "सुखानुशयी रागः"। रज्यते विषयेषु पुरुषोनेनेतिरागः। रञ्ज रागे-धातु से रञ्जनाद्रागो गैरिकादिनत्। (द्वेषः) "दुःखानुशयी द्वेषः। द्विष् अप्रीतौ"-धातु से।

"रागद्वेष वियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।" गीता २।६४

"रागविरागयोर्योगः सृष्टिः।" सांख्य। (अभिनिवेश) स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोभिनिवेशः।" मरण भय रूप क्लेश। अभि + नि + विश् प्रवेशने (जह्नुनत्) हनन करे। नष्ट करे। हन हिंसा गत्योः। धातु से। (द्रविणस्युः) द्रविणं दातुमिच्छुः। धनं द्रविणमुच्यते। धनमिति कस्मात् धिनोतीति सतः। धिनोति तर्पयतीत्यर्थः। अपने प्यारे भक्तों को धन और आत्मिक बल का देने वाला। बुद्धिरूप धन।

"भाग्योदयेन बहुजन्म समार्जितेन सत्संगमं च लभते पुरुषो यदा वै।
अज्ञान हेतु कृतमोह मदांधकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ।।"

"ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत।" गीता १४।९

"तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वं देहिनाम्।
प्रमादालस्य निद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत।। गीता १४।८

ज्ञानान्मुक्तिः। बन्धो विपर्ययात्।"

"विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयँ सह।
अविद्ययामृत्युं तीर्वा विद्ययामृतमश्नुते।।" यजुः ४०

(समिद्धः) सम्यक् इद्धः प्रदीप्तः। इन्धी दीप्तौ"—धातु से। भली प्रकार प्रकाशित हुआ। जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है तद्वत्। (शुक्रः) शुद्धः पवित्रः, बलशाली ।(विपन्यया) विशेष रूप से स्तुति प्रार्थना, उपासना द्वारा। (आहुतः) कृताह्वानः। अच्छी तरह से बुलाया हुआ। अच्छी तरह से भक्ति किया हुआ।

भावार्थ—हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! हमारे अज्ञान अविद्यादि अन्धकार को आप दूर करें। जो अविद्यादि पञ्चक्लेश हमको सब तरह से दुःख देते हैं, उन दुःखदायी क्लेशों को और उनके कार्यों को तथा उनके साधनों को हमसे दूर कीजिये जिससे हम सब तरह से शरीर मन से पवित्र होकर सदैव आपका ध्यान करते रहें।

"अविद्या का नाश और विद्या की बृद्धि करनी चाहिए। नियम सं. ८

"तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति ते।।" गीता १० ।१०

"तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्म भावस्थो ज्ञान दीपेन भास्वता।।" गीता १० ।११

"राम नाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरहिं जो चाहसि उजियार।।"

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी की योग्यता के विषय में महर्षि वाल्मीकि ने अब से १२,९६,००० वर्ष पूर्व। अयोध्या काण्ड १ ।२० में. लिखा है।

"सर्व विद्याव्रतस्नातः यथावद् साङ्गवेदवित्।
इण्वस्त्रेषु पितुः श्रेष्ठः बभूव भरताग्रजः।।"

योगिराज कृष्ण के विषय में महाभारत सभापर्व में लिखा है।

वेद वेदांग विज्ञाने बले चाप्यधिकस्तथा।
नृणां लोकेहि कोन्योस्ति विशिष्टः केशवाहते।।
एष ह्येषा समस्तानां तेजो बल पराक्रमैः।
मध्ये तपन्निवाभाति ज्योतिषामिव भास्करः।।"

महाभारत सभापर्व. अ.

वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। आर्य समाज का नियम संख्या ३

स्वाध्यायान्मा प्रमदः। स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायाद् योग मासीत। योगात् स्वाध्याय मामन्नेत। स्वाध्याय योग। तैत्तिरीयोपनिषद्।

"पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्।
पुण्यांश्चभक्षान् भक्षयत्यमृतत्व च गच्छति।।"

साम. उत्तरा ५ ।२ ।८

(पावमानी:) पवित्र स्वरूप और पवित्र करने वाली वेदों की ऋचायें स्वाध्यायशील और धार्मिक मनुष्य को पवित्र करती हैं।

पूञ् पवने—धातु से पावमानी। वेदो नित्यमधीयाताम्। मनुः

"स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः।" योग. साधनपाद सूत्र ४४

"सन्यसेत् सर्वकर्माणि वेदमेकं न सन्यसेत्।
वेद सन्यासतः शूद्रस्तस्माद् वेदं न सन्यसेत्।।" मनुः ६

(स्वस्त्ययनी:) कल्याण करने हारी। इह लोक और परलोक दोनों का। सु + अस्ति + अयनीः

प्रश्न—वेद में क्या है ? जो इह लोक और परलोक में कल्याण करने वाला है। वेदेषु सर्वा विद्याः सन्ति। वेदों में ईश्वर ने सब विद्याओं का उपदेश किया है। जिससे मनुष्य तथा अन्य सभी प्राणियों का कल्याण होता है।

"यथेमां वाचं कल्याणी भावदानि जनेभ्यः।"

"चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतभव्य भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति।।" मनुः १२।९७

"विभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्।
तस्मादेतत् परमन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम्।।" मनुः १२।९९

(वेदः) विद् ज्ञाने, विद्लाभे, विद् विचारणे, विद् सत्तायाम्।" एतेभ्यो धातुभ्यो हलश्चेति—सूत्रेण करणाधिकरण कारकयोर्घञ् प्रत्यय कृते सति वेद शब्दः साध्यते।

"विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभन्ते वा एभिः धर्मादि पुरुषार्थ इति वेदाः।"
सायणाचार्य.

"विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभन्ते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः—
सर्वाः सत्यविद्यायैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः।।"
दयानन्द.

"ऋग्यजुः सामथर्वाणश्चत्वारो वेदा ईश्वर प्रोक्ताः
सन्तीति वेद्यम्।
अत्र प्रमाणम्-तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।" यजुः ३१।७
"इष्टप्राप्त्यनिष्ट परिहारयोश्लौकिमुपायं यो वेदयति स वेदः।।"
"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते एतं विन्दन्ति वेदेन
तस्माद् वेदस्य वेदत।।"

(ताभिः) उन वेदों के पवित्र मन्त्रों के पठन-पाठन, अध्ययन और मनन करने से मनुष्य-मननशील प्राणी। स्वाध्यायशील व्यक्ति, मन्त्रः मननात्। मानाज्ज्ञानात् त्रातीति मन्त्रो वेदः। अथवा मन्तारं त्रायते रक्षतीति मन्त्रो वेदः। मंत्रि गुप्त परिभाषणे इत्यस्माद्धातोः हलश्चेति सूत्रेण घञ् प्रत्यय कृते सति मन्त्र शब्दस्य सिद्धिर्भवति। गुप्तानां पदार्थानां भाषणं यस्मिन् वर्त्तते स मन्त्रो वेदः। मन्त्र श्रुत्यं चरामसि। ऋक् गुप् रक्षणे धातु से। (आनन्दनम्) आनन्द को सुख को प्राप्त होता है। सुखमिति कस्मात् ?(गच्छति) सुहितं खेभ्यः। खं पुनः खनतेः। सुख दो प्रकार है।

१. सांसारिक सुख (लौकिक सुख), २. शाश्वत सुख। शश्वद्भवं शाश्वतम्। सदैव रहने वाला। स्थायी सुख मोक्ष सुख, "यं लब्ध्वा चापरं लाभं

मन्यते नाधिकं ततः ।" गीता- ६ ।२२ सांसारिक सुख अनित्य सुख है। भूख, प्यास, मैथुनादि द्रव्य, स्त्री पुत्रादि का सुख।

"ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःख योनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।।" गीता ५ ।२२

"परिणाम ताप संस्कार दुःखै तमात्मस्थंयेऽनुपश्यन्तिधीरास्तेषां सुखंशाश्वतं नेतरेषाम् ।।"

कठ.

"एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधायः करोति।"

प्रभु स्वयं आनन्दमय हैं। सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। इसलिए उनकी पवित्र वेदवाणी मनुष्य को इहलोक और परलोक दोनों में आनन्द देने वाली बतलाई है। इहलोक में उसका श्रवण, मनन स्वाध्याय करने से लाभान्वित होता है। परलोक में मोक्ष सुख प्राप्त करके आनन्द को प्राप्त करता है। जैसा कि इसी वेद मन्त्र में आगे कहा गया है।

(पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयति) और पुण्य—पवित्र, शुद्ध, सात्विक भोज्य पदार्थों का भोजन करता है। शुद्ध, पवित्र, सात्विक भोज्य पदार्थ कौन से हैं ? घृत, दुग्ध, दधि, फल, फलों का रस, गेहूँ जौ, तिल, चावल, उड़द, मूँग, मसूर आदि पदार्थ जो आयु, बुद्धि, मेधा, बल, शक्ति, सामर्थ्य, उत्साह और आरोग्य की बृद्धि करते हैं।

"अभ्यसेच्च तथा पुण्यां गायत्री वेदमातरम्।
गत्वाऽरण्ये नदी तीरे सर्वपाप विशुद्धये।।"

दक्ष स्मृतिः।

"आयुः सत्व बलारोग्य सुख प्रीति विवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हद्या आहाराः सात्विक प्रियाः।।"

गीता १७।८

"आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारणः।
स्मृत्यायु शक्ति वर्णौजः सत्व शोभा विवर्धनाः।।" चरक संहिता

"आहारार्थं कर्मकुर्यादनिन्द्यं आहारश्च प्राण संधारणार्थम्।
प्राणाःधार्याः तत्व जिज्ञासनार्थं तत्वं ज्ञेयं येन भूयो न दुःखम्।।"

"यः स्वाध्याय मधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः।
तस्य नित्यं क्षरत्येऽष पयोदधिघृतं मधुः।।"

मनुः

(च) और यही नहीं कि इह लोक में मनुष्य आनन्द को प्राप्त होता है किन्तु। (अमृतत्वं गच्छति) अमर भाव को प्राप्त है। अर्थात् यहाँ से जाने के पश्चात् मोक्ष—मुक्ति सुख को प्राप्त करता है।

मोक्ष क्या है ? तदत्यन्त विमोक्षोपवर्गः। न्याय.

तेन दुःखेन जन्मना मृत्युना अत्यन्तं विमुक्तिरपवर्गः।

"जन्ममृत्यु जरादुःखैर्विमुक्तोमृतमश्नुते ॥" गीता १४।२०

"जन्म च मृत्यु च जरा च दुःखानि च तैः जन्ममृत्युजरादुः खैर्विमुक्तः विशेषेण मुक्तः सन् अमृतं मोक्षमश्नुते अनुभवति ॥"

"मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥" गीता ८।१५

"तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्त्तते।
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत् ॥"

"ओं स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यम् दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥"

अथर्व. १९।११।१, "गायत्री छन्दसां मातेति"।

"यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्याँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ॥"

यजुः २६।२

"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै।
तँ ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रवद्ये ॥"

श्वेताश्वतर ६।१८

"आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि, सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।"

"स्वाध्याये नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसूत्रं हि तत् स्मृतम् ॥" मनुः

"अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुति परायणाः ॥" गीता १३।२५

जीवन के लिए सुख-शान्ति चाहिए तथा मृत्युरूप महाघोर दुःख से बचने के लिए अमृत चाहिए ? यह सब कहाँ मिलेगा ? सभी खोजते थे, किन्तु मिलता नहीं था, देव दयानन्द ने खोजा और पाया हमें दिया।

"तमेव विदित्वा मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।" यजुः ३१।१८

"तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा भावो मृत्युः परिव्यथा।"

प्रश्नो. ६।६

भगवान् कृष्ण ने गीता में अर्जुन को समझाया—

"तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥" गीता ८।६२

जब से वेद-वाद घटा है तब से अनेक वाद-विवाद चल पड़े हैं। इन विवादों के बवंडर में सुख शान्ति ऐसे उड़ गई है जैसे आँधी में रुई उड़ जाती है। प्रभु

भक्तो ! यदि सुख-शान्ति अपने जीवन में चाहते हो। मन को उत्साह, उल्लास से परिपूर्ण करना चाहते हो। अन्दर आनन्द का स्रोत बहाना चाहते हो तो वेद मार्ग पर चलो इस मार्ग पर चलने से हमारा आपका मनुष्य मात्र का अवश्य कल्याण होगा।

जुआ की निन्दा (५ आज्ञाएँ)

जुआ मत खेल

"अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सविताय मर्यः ॥" ऋक्. १० ।३४ ।१३

युधिष्ठिरादि पाण्डवों की द्यूत की कथा।

सायणभाष्यम्—हे कितव ! बहुमन्यमानो मद् बचने विश्वासं कुर्वन् त्वं अक्षैर्मा दीव्यः द्यूतं मा कुरु। कृषिमित् कृषिमेव कृषस्व कुरु। वित्ते कृष्यादि सम्पादिते धने रमस्व रतिं कुरु। तत्र कृषौ गावो भवन्ति, तत्र जाया भवति। तत् एव धर्मं रहस्यं श्रुति स्मृति कर्त्ता सविता सर्वस्य प्रेरकः अयं दृष्टि गोचरः अर्यः ईश्वरो विचष्टे विविध माख्यातवान्। ये प्रभु के पाँच आदेश हैं—

(१) जुआ मत खेल। (२) कृषि कर। अन्नं बहु कुर्वीत। (३) अपने धन पर ही सन्तोषकर। (४) गौओं का पालन कर। (५) पत्नीव्रत रह। "मम व्रते ते हृदयं दधामि।" पत्नी त्वमसि धर्मणा हं गृहपतिः। या गृधः कस्यस्विद्धनम्।"

"सदा गावः शुचयो विश्वधायसः।
सदा देवा अरेपसः ॥" सामवेद

"गावो विश्वस्य मातरः।" माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसा आदित्यानाममृतस्य नाभिः।" पञ्चगव्य, पञ्चामृत। मधुपर्क के समय उपरोक्त मन्त्र "श्रवन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः।" हे अमृत के पुत्रो सबके सब सुनो ! अमर प्रभु की उपरोक्त वाणी को सुनो समझो मानो।

"जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्वस्वित्।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुपनक्त मेति ॥"
"अन्ये जायां परिमृशन्त्यस्य यस्यागृधद् वेदने वाज्यक्षः।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता वद्धमेतम् ॥"
ऋक्. १० ।३४ ।५

सायणभाष्यम्—अस्य कितवस्य वेदने धने बाजी वलवान् अक्षः अभिकांक्षां करोति तस्य अस्थ कितवस्य जायां भार्यां अन्ये प्रति कितवः परिमृशन्ति वस्त्र केशाद्याकर्षणेन संस्पृशन्ति। किञ्च पिता माता भ्रातरः सहोदराश्च एनं कितवं आहुः वदन्ति न वय मस्मदीयमेनं जानीम रज्वाबर्ध्दमेनं कितवं हे कितवाः यूयं नयत यथेष्टं देशं प्रापयत इति।

मृशन्ति = मृश् + लट् प्र. पु. बहु. अगृधत् = गृध् लङ् प्र. पु. एक.

"सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामि इति तन्वः शूशुजानः।
अक्षासः अस्य वितरन्ति कामं प्रतिदीब्ने दधतः कृतानि॥"

अथर्व. १०।३४।६

सायण भाष्यम्—तन्वः शरीरेण शूशुजानः कम्पमानः कितवः कोऽत्रास्तीति। धनिकस्तं जेष्यामीति पृच्छमानः पृच्छन् सभां कितव सम्बन्धिनीमेति गच्छति। तत्र प्रतिदीब्ने प्रतिदेविने प्रतिदेविने कितवाप कृतानि देव नोपयुक्तानि कर्माणि आदधतो जयार्थमाभिमुख्येन मर्यादया वा दधतः अस्य कितवस्य कामं इच्छां अक्षाः वितरन्ति वर्द्धयन्ति विफलं कुर्वन्ति।

भावार्थ—शरीर से काँपता हुआ जुआरी अपने मन में यह सोचता हुआ कि क्या मैं जीत जाऊँगा। सभा (जुआ खेलने के स्थान) में जाता है किन्तु पाँसे प्रतिद्वन्दी जुआरी के लिए दावों को जिताते हुए इसके मनोरथ को विफल बना देते हैं अर्थात् वह फिर हार जाता है।

कल्याण पथ पर चलो

तमसो मा ज्योतिर्गमय। असतो मा सद् गमय।

प्रभु भक्ति का मार्ग कौन-सा है ? इसका उत्तर—

"यैतं पन्था मनुगा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि।
तम एतत्पुरुष मा प्रपत्स्थाभयं परस्तादभयं ते अर्वाक्॥"

अथर्व. ८।१।१०

"पुरुषः एवं पन्थां मा अनुगाः एष भीमः येन यूयं पूर्वं नेयथ। तं ते ब्रवीमि (पुरुष) एतं तत्रः मा प्रपत्स्था ते परस्तात् अभयं ते अर्वाक् अभयं अस्तु। पथि + कन् = पथिकः। पथिषु साधु।" (एतं पन्था) हे पथिक मनुष्य। इस पथ पर रास्ते पर कः पन्थाः ? (मा अनुगाः) मत चल। क्योंकि यह पथ रास्ता मार्ग राह (एष भीमाः) यह रास्ता पथ भीम है। भयंकर है। इस पर चलने से तुझे भय, विघ्न का सामना करना पड़ेगा, इसलिए। (येन) जिस मार्ग से, जिस रास्ते से, जिस पथ से, सुपथ से। (पूर्व) पहले, तुम्हारे पूर्वज ज्ञानी महात्मा विद्वान लोग (नेपथ) ले जाये गये हैं। चले हैं, गये हैं उस पर चल। (तं व्रवीमि) तं— उस मार्ग को, त्वा ब्रवीमि—तुझे बताता हूँ। (पुरुष) हे पुरुष। हे मानव। मननशील व्यक्ति, मनुर्भव। ऋक्.

(एतं तमः) इस अन्धकार को। एतत् यह तमः अन्धकार है इसके (मा प्रपत्स्थाः) मत प्राप्त हो। (अर्वाक् ते अभयं) इस ओर तुझको अभय है प्रकाश का मार्ग है।

"येनास्य पितरे यातः येन यातापितामहः।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्नरिच्यते।"

"श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीराः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयोमन्द्रो योगक्षेमा वृणीते॥"

कठ. १।१।२

(श्रेय मार्गः) कल्याणकारी मार्ग। इह लोक परलोक दोनों का कल्याण करने वाला मार्ग। वेदमार्ग। यतोभ्युदयनिःश्रेयस-सिद्धि स धर्मः। वैशेषिक प्रभुभक्ति का मार्ग। (प्रेयमार्ग) मन को प्रिय लगने वाला मार्ग। भोग मार्ग। भोगों में आसक्ति का मार्ग। भोगों में रचे पचे रहने वाला मार्ग। भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः। भर्तृहरिः। Eat drink be Marry and that is the way to be happy.

यावज्जीवेद् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ?

"कामोपभोग परमा एतावदिति निश्चयाः।" गीता १६।११

"ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥" गीता ५।२२

अर्थात् जो ये इन्द्रियों तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग हैं। वे यद्यपि विषयी को सुखरूप भासते हैं तो भी वे निःसन्देह दुःख के हेतु हैं और आदि अन्त वाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिए हे अर्जुन ! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता अर्थात् रुचि नहीं करता।

"परिणाम ताप संस्कार दुःखै गुर्णवृत्ति विरोधाच्य दुःखमेव सर्वं विवेकिनतं॥" योगसूत्र।

"जन्ममृत्यु जरा दुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।" गीता १४।२०

"पीत्वा मोहमयी प्रमादमदिरामुन्मत्तं भूतं जगत्।" भर्तृहरिः वैराग्य.

"प्रतिपन्थामपदमहिं स्वस्तिगामनेहसम्।
येन विश्वाः परिद्विषो वृणक्ति विन्दते वसु॥"

वेदों के स्वाध्याय और मनन से अपने को पवित्र बनाओ।

(वेद स्वाध्याय महिमा) वेदो नित्यमधीयानाम्— मनुः

वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। आर्य समाज नियम सं. ३

"स्वाध्यायान्मा प्रमद। स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।"
तैत्तिरीयोपनिषद्.

स्वाध्यायः = वेदादि सत्य शास्त्राणामध्ययनाध्यापने प्रणव जपो वा।"
दयानन्द.

स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः। स्वाध्याये नास्त्यनध्यायो ब्रह्म सत्रं हि तत् स्मृतम्।"
मनुः

स्वाध्यायादिष्ट देवता सं प्रयोगः।" योगदर्शन

"येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।
तेन सहस्त्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः॥" सामवेद उत्तरा ५।२।८

(देवा:) विद्वांसः। विदुषां समूहाः। विद्वा ँ सो हि देवाः। विद्वान् लोग। (येन पवित्रेण) जिस ब्रह्म यज्ञ रूप स्वाध्याय कर्म से। वेद के स्वाध्याय रूप पवित्र कर्म के द्वारा। गायत्री अथवा प्रणव जाप से (आत्मानं सदा पुनते) अपनी आत्मा बुद्धि मन और वाणी को सदा पवित्र बनाते हैं, पवित्र करते हैं। पूञ् पवने-धातु से। (तेन: सहस्रधारेण) उन अनन्त धाराओं वाले वेद के अनन्त ज्ञान से युक्त। (पावमानी:) स्वयं पवित्र स्वरूप तथा ज्ञान द्वारा सबको पवित्र करने वाली वेद की ऋचायें, वेद मन्त्र। मन्त्रः मननात्। मानाज्ज्ञानात् (नः पुनन्तु) हम सबको, स्वाध्यायशील व्यक्तियों को पवित्र करें। अर्थात् प्रभु की वाणी वेद के स्वाध्याय और मनन से हम भी देवताओं के सदृश पवित्रात्मा बन सकते हैं।

"ओं स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तांपावमानीः द्विजानाम्।"

"चातुर्वर्ण्यं भयोलोकाश्चत्वाराश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति॥" मनुः १२।९

"विभर्त्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्।
तस्मादेतत् परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम्॥" मनुः १२।९९

"(विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभन्ते वा एभिः धर्मादि पुरुषार्था इति वेदाः।")

"स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्ययासुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनूः॥" मनुः।

संसार सागर को कैसे पार करें ?

(कौन लोग दुःख सागर के पार होते हैं ?)

"कथं तरेम भवसिन्धुमेतं ? का वा गतिर्मे कतमोस्त्युपायः।
जाने न किञ्चित् कृपयावमां भोः संसार दुःखक्षतिमातनुष्व॥"
विवेक चूड़ामणिः।

"अश्मन्वतीरीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः।
अत्रा जहीमोऽशिवा ये असञ्शिवान् वयमुत्तरेमाभिवाजान्॥"
यजुर्वेद ३५।१०

भावार्थ—ये मनुष्या वृहत्यथा नौकया समुद्रोमेव अशुभाचरणा निःदुष्टाश्च तीर्त्वा प्रयत्नेनोद्यमिनोभूत्वा मङ्गलान्याचरेयुस्ते दुःखसागरं सहजतः संतरेयुः।

(सखायः) हे मित्रो ! सुख चाहने वाले लोगो ! कल्याण को चाहने वाले (अस्मन्वती:) बहवोऽश्मानो पाषणा विद्यन्ते यस्यां सृष्टौ सा। जो यह पाषाणों भरी प्रवाह से अनादि सृष्टि है, वह (ईयते) गच्छति। चलती है। बहती है। ईड् गतौ धातु से। (वयं उत्तरेम) हम लोग सब ओर से पार करें। इसके लिए मित्रों (उत्तिष्ठत) उत्तिष्ठिता भवत। उद्यता भवत। उद्यत हो जाओ। मोह निद्रांत्यजत। सन्नद्धाभवत। अज्ञान निद्रा को त्यागे। (संरभध्वं) सम्यक् प्रारम्भं कुरुत। शीघ्रता

करो और भली प्रकार प्रारम्भ करो (प्रतरत) पार कर जाओ। इसके पार हो जाओ। (अत्र) इसको पार करने में जो अथवा इस जन्म में जो, (ये अशिवा असन्) अकल्याणकराः। अकल्याणकारी दुःख देने वाले जो दोष दूषण बुराइयाँ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर आदि दुर्गुण असन् सन्ति। हैं। कुटिल वृत्तियाँ। (तान् जहीमः) उनको हम लोग त्यजामः छोड़ते हैं त्याग देवें और जो (शिवान् वाजान्) कल्याणकारी पदार्थों को ज्ञान को (वयं अभि उत्तरेम) हम लोग सब ओर से प्राप्त करें।

"कामं क्रोधं मदं मोहं मात्सर्यं लोभ मेव च।
अमून षड् वैरिणो जित्वा सर्वत्र विजयी भवेत्॥"

"द्विषो नो विश्वतो मुखाति नावेव पारय। अपनः शोशुचदघम्।
ऋक्. १।९७।७

कुटिल वृत्तियाँ

"शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीर विमोक्षणात्।
काम क्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥" गीता ५।२३

"तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्यु संसार सागरात्।
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशित चेतसाम्॥" गीता १२।७

"मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत उर्ध्वं न संशयः॥" गीता १२।८

"जन्ममृत्युजरा दुःखैर्विमुक्तोमृतमश्नुते॥" गीता १४।२०

"जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।" गीता २।५१

"मन्मनाभव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥" गीता ९।३४

(मन्मना भव, मद्भक्तो भव, मद्याजी भव, मां नमस्कुरु भव एवं आत्मानं युक्त्वा मत् परायणोभव।)

"युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।
स्वर्ग्याय शक्त्या॥" यजुः

(वयं सवितुः देवस्य सवे युक्तेन मनसा स्वर्ग्याय शक्त्या प्रयतामहै।)

(उत्तिष्ठत) उद्यता भवत। उद्योगं कुरुत।

"उद्योगिनं पुरुषसिंह मुपैति लक्ष्मीः, दैवेन देयमिति का पुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरुपौरुषमात्मशक्त्या, यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः॥" नीतिः

"पूर्व जन्म कृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।
तस्मात् पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्धयति॥"
"उत्साह सम्पन्नमदीर्घसूत्रं, क्रिया विधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़ सौहृदं च, लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः॥"
"उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धि शक्तिः पराक्रमः।
षडेते यत्र वर्त्तन्ते तत्र दैवः सहायकृत्॥"
"विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः।
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च, दश जीवन हेतवः॥"

मनुः

"आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वं तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति॥"

शतपथ ब्रा.

नित्य प्रभु की भक्ति करनी चाहिये।

(प्रश्न) कब करें ? किस समय करें। उत्तर—

"उप त्वाग्ने दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥"

साम. पूर्वा. २।४, ऋक्. १।१।७

(अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप परमात्मन् ! हे ज्ञान प्रदाता जगदीश्वर ! हे अग्रणी प्रभो ! हे उपासनीय परमेश्वर। (वयम्) हम सब आपके उपासक भक्त जन। (दिवे दिवे) प्रतिदिन, हररोज, नित्यप्रति। (दोषावस्तः) रात्रि और दिन में, प्रातः उषाकाल अर्थात् ब्राह्म मुहूर्त्त में और रात्रि को सूर्यास्त के पश्चात्। (धिया) अपनी बुद्धि और कर्मों से, ध्यान करते हुए अपनी बुद्धि तथा मन आपमें लगाते हुए। (नमोभरन्तः) नम्रतापूर्वक आपको नमस्कार करते हुए (त्वा उप) आपके समीप, आपके निकट (आ इमसि) प्राप्त होते हैं। आपको उपासना द्वारा प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—हे सर्व उपासनीय, ज्ञान प्रदाता प्रभो ! हम सब भक्त जन नित्यप्रति प्रातः और सायंकाल की सन्धि बेला में आपकी स्तुति प्रार्थना, उपासना करते हुए अपने मन और बुद्धि को आपमें लगाते हुए आपको प्राप्त होवें। आपका जो "ओ३म्" मुख्य नाम है इससे और गायत्री आदि वेदों के पवित्र मन्त्रों से सदा आपका स्मरण करते रहें। जिससे हम नास्तिकता रूप महादोष से रहित होकर उत्तम गति को प्राप्त होवें।

"वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ।।"

"उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। ऋक्. ८।६।२८
धिया विप्रो अजायत।।"

"अहरहः सन्ध्यामुपासीत।" यजुः २६।१५

सन्ध्या = सम् + ध्या। सम्यग्ध्यायन्ति सन्धीयते वा यस्वां परब्रह्म सा सन्ध्या। सन्धौभवा सन्ध्या

"अहोरात्रस्य यः सन्धिः सूर्य नक्षत्र वर्जिता।
सा च सन्ध्या समाख्याता ऋषिभिस्तत्व दर्शिभिः।।"

"ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्माथौं चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेद तत्वार्थमेव च।।" मनुः ४।९२

"उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौच समाहितः।
पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् स्वकाले चापरां चिरम्।।" मनुः ४।९३

"ऋषयो दीर्घसन्ध्या त्वा दीर्घमायुरवाप्नुयुः।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च।।" मनुः ४।९४

"पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्री मार्कदर्शनात्।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्ष विभावनात्।।"
मनुः २।१०१

"पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् नैशमेनो व्यपोहति।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्।।"
मनुः २।१०२

"न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्मात् द्विज कर्मणः।।"
मनुः २।१०३

"येन पूर्वामुपासते द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम्।
सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत्।।"

"अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः।
सावित्रीमप्यधीर्यात गत्वारण्यं समाहितः।।"
मनुः २।१०४

"अभ्यसेच्च तथा पुण्यां गायत्री वेदमातरम्।
गत्वारण्ये नदी तीरे सर्व पाप विशुद्धये।।" दक्षस्मृतिः

"कौशल्यासुप्रजा रामः पूर्वासन्ध्या प्रवर्त्तते।
उत्तिष्ठ नर शार्दूल कर्त्तव्यं दैवमान्हिकम्।।"

"तस्यर्षे परमोदारं क्वः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
स्नात्वा कृतोदकौवीरौ जपेतुः परमं जपम्॥" वाल्मीकि रामायण

प्रत्येक शुभ अवसर पर हम प्रभु को याद करें।

"योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे।
सखाय इन्द्र मूतये॥"

ऋक्. १।३०।७, यजु: ११।१४, अथर्व. १९।२४।७, साम. २१।७।९

(सखाय: वयं योगे योगे, वाजे वाजे, तवस्तरं इन्द्र ऊतयेहवामहे।) (सखाय:) हे मित्रो ! हम सब लोग, भक्तजन। (योगे योगे) प्रत्येक शुभ कार्य के आरम्भ में। और (वाजे वाजे) बाज इति संग्राम नाम। निघण्टु। संग्रामे-संग्रामे। युद्ध आदि कठिन अवसरों पर। 'वाज' इति अन्न नाम। निघण्टु अन्नादि की प्राप्ति के समय। अन्न भक्षण के समय।जब जब प्रभु की कृपा से नवीन अन्न की प्राप्ति हो उस अवसर शारदीय अथवा वासन्ती नवसस्येष्टि पर। अथवा भोजन करने से पूर्व। (तव स्तरं इन्द्रं) अत्यन्तं बलयुक्तम् परमेश्वरम्। अति बल वाले इन्द्र की। "इदि परमैश्वर्य"। धातु से इन्द्र। य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमात्मा। (ऊतये) रक्षणाय। अपनी रक्षा के लिए। जीवनदान के लिए। (हवामहे) आह्वयामहे। हम बुलाते हैं, बुलावें, याद करें, स्मरण करें।

भावार्थ—हे मित्रो ! हम सब लोगों का कर्त्तव्य है कि प्रत्येक शुभकार्य के प्रारम्भ में और प्रत्येक युद्ध आदि कठिन अवसरों पर अति बलवान् ऐश्वर्य सम्पन्न परमात्मा की अपनी रक्षा के लिए बड़े प्रेम से प्रार्थना करें। जिससे हमारे सब कार्य बिना विघ्न बाधा के पूर्ण हों। जब हमें उसकी कृपा से पुत्र, पुत्री, पौत्र, प्रपौत्र, धन, वैभव ऐश्वर्य सुख समृद्धि की प्राप्ति हो नवीन गृह, धर्मशाला, कूप आदि के निर्माण के समय अथवा रोग, शोक, कष्ट, युद्ध आदि के कठिन प्रसंगों पर अपनी सहायता-रक्षा आदि के लिए तथा जब-जब नवीन अन्न आदि कृपा से हमें प्राप्त हो तब-तब धन्यवाद करने के लिए यज्ञादि शुभ कार्यों से उसकी स्तुति प्रार्थना उपासना किया करें। प्रतिदिन प्रात: और सन्ध्या काल के योग में—सन्धि बेला में उसके सर्वोत्तम नाम 'ओ३म्' का जाप अथवा गायत्री मन्त्र द्वारा मेधा प्राप्ति की प्रार्थना किया करें।

(अन्न) अद्‌भक्षणे—धातु से अन्न। अद्यतेति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते। अन्नं वै प्राणिनां प्राणा:। अन्ने व जातानि जीवन्ति। अन्नं साम्राज्या नामधिपति:। अन्नं बहु कुर्वीत तद्-व्रतम्। अन्नं न निन्धात् तद् व्रतम्। अन्नवान् अन्नादो भवति। महान् भवति प्रजयापशुभिर्ब्रह्मं वर्चसेन अन्नाद्येन।"मोधमन्नं विन्दते अप्रचेता सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य"

अन्न की प्राप्ति कैसे होती है ? जो हमारे जीवन का आधार है। यज्ञ से। अग्नौ प्रास्ताहुति: सम्यगादित्य मुपतिष्ठते।

आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजा ॥" मनुः २
"अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः ॥गीता ३।१४
"यज्ञेन यज्ञ मयजन्तदेवास्तानिधर्माणि प्रथमान्यासन ।" यजुः
"तं-त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतोः ।
धनानामन्दि सातये ॥" साम. २०।६८।९

गृहस्थाश्रमियों के लिए वेद के पाँच आदेश।

अन्नं साम्राज्यानामधिपतिः समाऽवत्वतु ।
विवाह संस्कारे राष्ट्रभृत् होमे ।
"पत्नीत्वमसि धर्मणाऽहं गृहस्पतिस्तव प्रजां प्रजनयावहै ।"
अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित् कृषप्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्याः ॥"
ऋग्वेद १०।३४।१३

भावार्थ—(१) जुआ मत खेल, (२) कृषि कर, (३) अपने धन पर ही सन्तोष कर, (४) गौओं का पालन कर, (५) पत्नी व्रत रह।

(अक्षैर्मादीव्यः) हे कितव त्वं बहुमन्यमानः मद् बचने विश्वासं कुर्वन् द्यूतं मा कुरु। हे जुआरी तू जुआ मत खेल क्योंकि जुआ बड़ा ही हानिकारक है। (कृषिमित् कृषस्व) कृषिमेव कुरु। कर्षणं कृषिः। अन्नं बहु कुर्वीत तद् ब्रतम्। अन्नेन जातानि जीवन्ति। "अन्नाद् भवन्ति भूतानि" अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः।" अन्नाद् बलं च तेजश्च प्राणिनां वर्धते सदा। (वित्ते रमस्व) कृष्यादि सम्पादिते वित्ते धनेरमस्व रति प्रीति कुरु।

बहुमन्यमानः मद् वचने विश्वासं कुर्वन् सन्।
"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथ मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।"
यजुः

"यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।"

(तत्र गावः) तत्र कृषौ गावो भवन्ति गोभ्यः दुग्धं घृतं दधि अन्नादिकं सम्भवति। गावो विश्वस्य मातरः।

"माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसा आदित्याना ममृतस्य नाभिः।"
"सदा गावः शुचयो विश्वधायसः।" ऋक्.- साम.
"गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः।"
अमृतं वै गवां क्षीरम्।"

"गोक्षीरं वृष्यमायुष्यं बुद्धि मेधाकरं परम्।
ज्वर कुष्ठक्षयोन्मादपाण्डु शोथातिसारनुत्॥"
नावनीतं तु चाक्षुष्यं वुद्धि बलकरं परम्।"

एक गाय के शरीर से एक पीढ़ी में ४, ७५, ६०० मनुष्यों का पालन होता है। एक पीढ़ी में ४ बछड़ें ४ बछियों का हिसाब है।

(तत्र जायः) तत्र कृष्यादि सम्पादि धने जाया भवति।

"भार्यामूलं गृहस्थस्य भार्यामूलं सुखस्य च।" सानन्दं सदनं सुता श्च सुधियः भार्या मनोहारिणी। सन्मित्रं सुधनं स्वयोषितिश्च धन्यो गृहस्थाश्रमः।" नीतिशतक.

उपनिषदामृतम्

उत्तम उपदेश

"मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।" शतपथ.

"वेद मनूच्या चोंऽयान्तेवासिन मनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देव पितृ कार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकं ँ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।

"ये के चास्मच्छ्रेयाँ सो ब्राह्मणाः तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्म विचिकित्सा वृत्तविचिकित्सा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः युक्ता अयुक्ता, अलूक्षाः धर्मकामाः स्युः, यथा ते तेषु वर्त्तेरन् तथा तेषुवर्त्तेथाः। एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषद्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमुचैतदुपास्यम्॥" तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षाबल्ली, अनुवाक ११

"उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेत् द्विजः।
संकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥" मनुः २।१४०

"आचिनोति हि शास्त्राणि आचारे स्थापयत्यपि।
स्वयमाचरते यस्मात्तस्मादाचार्य उच्यते॥"

आचार्यः कस्मात् ? आचारं ग्राह्यत्या।
चिनोत्यर्थानाचिनोतिबुद्धिमिति। निरुक्त.

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।" कठ. ३।१४

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्राह्मनिष्ठमं।
मुण्डक. २।१२

"तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः॥" गीता ४।३४

ध्यान योग किसे कहते हैं ?

मन और समस्त इन्द्रियों की वृत्तियों को सांसारिक बाह्य विषयों से हटाकर सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा में अनन्य भाव से लगा देने का नाम ध्यान योग है।

"ध्यानं निर्विषयं मनः।" सांख्यदर्शन "रागोपहतिर्ध्यानम्।"

"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।" योग विभूतिपाद. सू. ३
योग = युज् योगे—धातु से । लगा देना । जोड़ देना ।
"संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्म परमात्मनोः ।"
"योगः संहननोपाय ध्यान संगति युक्तिषु ।" इत्यमरः ।
"अभ्यास योग युक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं यातिपार्थानुचिन्तयन् ।।" गीता ८ ।८
"प्रशान्तात्मा विगत भी र्ब्रहमचारि व्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीन् मत्परः ।।" गीता ६ ।१४
"यदा विनियतं चिन्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निः स्पृहः सर्व कामेभ्योयुक्त इत्युच्यते तदा ।।" गीता ६ ।१८
"यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनोयतचित्तस्य युञ्जतो योग मात्मनः ।।" गीता ६ ।१९
"युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु ।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगोभवति दुःखहा ।।" गीता ६ ।१७
"नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ।।"गीता ६ ।१६
"यदा पञ्चा वतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ।।"
तां योगमिति मन्यन्ते स्थितरा मिन्द्रिय धारणाम् ।।
कठोप. ६ ।१० ।११
"प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।।"
मुण्डक. २ ।२ ।४

ध्यानयोग कैसे करें ?
(प्रमाणानि)

"युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रः विप्रस्य वृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ।।"
यजुः ११ ।४

(विप्राः) विप्र इति मेधावि नाम निघण्टौ । मेधा विनः ईश्वरोपासकाः जो ईश्वरोपासक बड़े बुद्धिमान् और (होत्राः) योगिनो मनुष्याः । उपासना योग—ज्ञान यज्ञ के करने वाले योगी ज्ञानी मनुष्य हैं वे (विप्रस्य) सर्वज्ञस्य परमेश्वरस्य । सबको जानने वाले परमेश्वर (वृहतः) सबसे बड़े । (विपश्चितः) अखिल विद्यायुक्तस्य

परमेश्वरस्य मध्ये, जो सब विद्याओं से युक्त, जो परमेश्वर हैं उसमें। (मनः युञ्जते) चित्रं योजयन्ति युक्तं कुर्वन्ति। अपने मन को युक्त करते हैं, अर्थात् ठीक-ठीक लगाते हैं। तथा (उत धियः) उत—अपि धियः—बुद्धिवृत्तीस्तस्यैव मध्ये युञ्जते और अपनी बुद्धि वृत्ति अर्थात् ज्ञान को भी उसमें (युञ्जते) योजयन्ति। लगाते हैं। अर्थात् मन और बुद्धि दोनों को मुझमें लगाते हैं।"

मय्यर्पित मनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ गीता १२।१४

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥" गीता. १२।८

कथं भूतः स परमेश्वरोऽस्ति ?

(विदधे) यः सर्वमिदं जगत् धरति धारयति। "दध् धारण पोषणयोः।" जो सब जगत् का धारण पोषण करता है। और (वयुनावित्) सर्वेषां जीवानां शुभाशुभकर्माणि, प्रज्ञानानि वेद जानाति स वयुनावित्। जो सब जीवों के शुभाशुभ कर्म वा ज्ञान को यथावत् जानता है। (एकः इत्) सः जगदीश्वरः एकोऽद्वितीयोऽस्ति। सर्वत्र व्याप्तो ज्ञान स्वरूपश्यास्ति। नास्मातपर उत्तमः। तत्तुल्यश्च कश्चित पदार्थो वर्तते। वही परमात्मा एक अद्वितीय सर्वत्र व्यापक है कि जिससे परे कोई उत्तम पदार्थ नहीं है। "भूतस्य जातः पति-रेक आसीत्।"

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इवस्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥"
"न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थोनाप्युच्यते न पञ्चमो न षष्ठःसप्तमोनाप्युच्यते।
नाष्टमो न नवमः दशमो नाप्युच्यते।
स एष एक वृदेक एव॥" अथर्व.

"न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन्।
नक्येवं यथात्वम्॥" साम. पूर्वा. ३।१।१।१०

(देवस्य सवितुः) तस्य सर्व जगत् प्रकाशकस्य। सर्व जगदुत्पादकस्येश्वरस्य। उस देव अर्थात् सब जगत् के प्रकाश और सबकी रचना करने वाले परमेश्वर की (परिष्टुतिः) परिस्तुतिः। परितः सर्वतः स्तुतिः कार्या। हम लोग सब प्रकार से स्तुति उपासना करें। कथं भूता स्तुतिः कार्या ? कैसी वह स्तुति है जिसे करें ? (मही) महतीत्यर्थः। सबसे बड़ी अर्थात् जिसके समान किसी दूसरे की हो ही नहीं सकती॥ सविता षङ् प्राणि प्रसवे। षुञ् अभिषवे धातु से। यश्चराचरं जगत्

सुषत्युत्पादयति स सविता तस्य सवितुः देवः देवो दानाद्वा द्वीपनाद्वा द्योतनाद्वा। तस्य देवस्य।सब सुखों के दाता परमेश्वर की स्तुति उपासना ध्यान करना ही सबसे बड़ी पूजा है।

"न तत् समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते।" श्वेताश्वतर

"युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियम्।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्।।" यजुः ११।१

(युञ्जानः) योगं कुर्वाणः सन्। योग को करने वाले मनुष्य विवेकी, ज्ञानी, महात्मा लोग। (तत्वाय) ब्रह्मादि तत्व ज्ञानाय। तत्व अर्थात् ब्रह्म ज्ञान के लिए (प्रथमं मनः) आदौ मननात्मिकान्तः करण वृत्तिः। जब अपने मन को पहिले परमेश्वर में युक्त करते हैं तब उनकी (सविता) सर्वोत्पादकः जगदीश्वरः। शुभ गुणकर्मसु प्रेरकः जगदीश्वरः। षूङ् प्राणि प्रसवे। षू प्रेरणे—धातु से। (धियः) बुद्धिवृत्तीन् युञ्जते। बुद्धिवृत्तियों को अपने में लगा युक्त कर लेता है। धारणात्मिकान्तः करणवृत्तीः। (अग्नेर्ज्योतिः) अग्नेः ईश्वरस्य ज्योतिः प्रकाशस्वरूपम्। प्रकाश स्वरूप परमेश्वर की ज्योति प्रकाश को (निचाय्य) यथावत् निश्चय करके (पृथिव्याः) पृथिव्यां मध्ये योगिनः। पृथिवी के बीच में योगी (अध्याभरत्) स योगी स्वात्मनि परमात्मानं धारितवान् भवेत्। अपने हृदय में परमात्मा को धारण करता है। यही उपासना का लक्षण है।

"युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगत कल्मषः।
सुखेन ब्रहम संस्पर्श मत्यन्तं सुख मश्नुते।।" गीता ६।२८

"युञ्जन्नेव सदात्मान योगी नियतमानसः।
शान्तिनिर्वाण परमां मत्संस्थामधिगच्छति।।" गीता ६।१५

"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।" योगदर्शन समाधिपाद सूत्र २

किसकी, क्यों और कैसे उपासना करें ?

"युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।
स्वर्ग्याय शक्त्या।" यजुः ११।२

(वयं) भक्ताः, योगिनः। हम सब भगवद् भक्त जन, (सवितुः) अखिल जगदुत्पादकस्य जगदीश्वरस्य। समग्र संसार के उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर के। षुञ् अभिषवे अभिषवनमुत्पादनम्। षूङ् प्राणि प्रसवे। षू प्रेरणे धातु से। (देवस्य) स्वप्रकाशस्य आनन्द प्रदस्य। प्रकाशस्वरूप आनन्दप्रद। अथवा सब सुखों के देने हारे परमदेव परमेश्वर को। (सवे) आराधना रूप भक्ति में, उपासना योग में (युक्तेन मनसा) मुक्तेन समाहितेन निरुद्धेन वा मनसा अन्तःकरण वृत्या। समाहित मन के द्वारा उपासना करते हुए। एकाग्र चित्त द्वारा। (स्वर्ग्याय) स्वः सुखं गच्छति येन

तद्भावाय, मोक्ष सुखाय। मोक्ष सुख प्राति के लिए। (शक्त्या) सामर्थ्येन। सदोषयुञ्जीमहि। अपनी पूरी सामर्थ्य से।(प्रयतामहै इति वाक्यशेष:) सदा प्रयत्न करते रहें।

"चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोर्ज़ुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥" गीता ७।१६
"अभ्यास योग युक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥" गीता ८।८
"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।" योगदर्शन समाधिपाद सू. २
"अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।" योग. समाधि. सूत्र १२
"तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।" योग. समाधि. सूत्र १३
"दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्।"१।१५
चेतसः स्थापनं भूयः भूयोऽभ्यासः स उच्यते।

मुक्ति का उत्तम साधन उपासना है। स्वामी दयानन्द प्रजापति ऋषिः। परमेश्वरो देवता। गायत्री छन्दः

"युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि॥" ऋक्. १।१।११।१, यजु: २३।५

ज्ञानी विद्वान् लोग उपासना द्वारा अपने मन को (युञ्जन्ति) योजयन्ति। युक्तं कुर्वन्ति। स्वात्मानं परमात्मनि युक्तं कुर्वन्ति। अपने आत्मा को परमात्मा में लगाते हैं। (ब्रघ्नम्) महान्तम्। सर्वानन्दवर्धकम्। सबसे महान् बड़ा, सब आनन्दों का बढ़ाने वाला। (अरुषं) "रुष् हिंसायाम्" धातु से। अहिंसकम्, करुणामयम्। हिंसादि दोषरहित, कृपा का समुद्र। (परितस्थुष:) परितः सर्वतः सर्वान् जगत् पदार्थान् मनुष्यान् वा। सब जगत् और सब मनुष्यों के हृदयों में व्याप्त ईश्वर को। (चरन्तं) ज्ञातारम् सर्वज्ञम्। 'चरगति भक्षणयोः'—धातु से।गतिशील। गतेस्त्रयोर्याः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति। अर्थात् सबका जानने वाला, गति देने वाला परमात्मा। (दिवि) द्योतनात्म के सर्व प्रकाश के परमेश्वरे। आत्माओं में प्रकाश करने वाले परमेश्वर में। (रोचनाः) ते आनन्दे प्रकाशिता रुचिमया भूत्वा। आनन्द रूप से प्रकाशित होकर अर्थात् अविद्यादि क्लेशों से मुक्त होकर (रोचन्ते) परमानन्द योगेन प्रकाशन्ते। परम आनन्द में प्रकाशित रहते हैं।

महत् ब्रहम महत्रामसु पठितम् निघण्टौ ३।३
मनुष्य नामसु तस्थुषः पञ्चजना इति पठितम्। निघण्टौ. अ. २ श्वं ३
युज् योगे। युज् समाद्यौ। धातु से। समाधिश्चित्तैकाग्यम्।

"संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्म परमात्मनोः।"

उपासना का उपदेश देने वाले और ग्रहण करने वाले दोनों के प्रति परमेश्वर प्रतिज्ञा करता है—

"युजे वां ब्रहम पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्ये वा सूरेः।
श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः।

यजुः ११।५

उपासनाप्रदोपासना गृहीतारौ प्रति परमेश्वरः प्रति जानीते।

(ब्रहमपूर्व्यं) पुरातनं सनातनं ब्रह्म। तुम दोनों सनातन ब्रह्म की (नमोभिः) स्थिरेणात्मना सत्यभावेन नमस्कारैः। सत्य प्रेम भाव से अपने आत्मा को स्थिर करके नमस्कारादि रीति से उपासना करोगे तब मैं तुमको आशीर्वाद दूँगा। (श्लोकः) सत्यकीर्तिः, सत्यवाक् संयुक्तः सत्यकीर्तिः। (वां) तुम दोनों को उपदेश करने हारे और उपदेश ग्रहण करने वाले तुम दोनों को। (वि एतु) व्येतु व्याप्नोतु। वि विविधार्थे एतु प्राप्नोतु। प्राप्त हो। कस्य केव प्राप्नोतु ? किसके समान ? (सूरेः) परमविदुषः। परम विद्वान् को जैसे।(पथ्येव) पथ्या इव। धर्ममार्ग इव। जैसे परम विद्वान् को धर्म मार्ग प्राप्त होता है तद्वत्। उसी प्रकार तुम दोनों को सत्यकीर्ति धर्म मार्ग प्राप्त हो। (ये) एवं ये उपासकाः सन्ति ते। इस प्रकार जो उपासना करने हारे। (विश्वे) सर्वे। सब के सब। (अमृतस्य) अविनाशिनो जगदीश्वरस्य, अविनाशी जगदीश्वर के (पुत्राः) सुसन्ताना आज्ञापालका इव। तदाज्ञानुष्ठतारस्तत् सेवकाः सन्ति ते सर्वे। अमर प्रभु के उत्तम सेवक आज्ञापालक पुत्र-पुत्रियों सबके सब। (श्रृण्वन्तु) सुनो, समझो और जानो।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूत कल्मषाः॥ गीता ५।१७

(ये दिव्यानि धामानि आतस्थुः) दिव्यानि— प्रकाशस्वरूपाणि धामानि— जन्मानि सुखयुक्तानि स्थानानि वा। जो उत्तम जन्म स्थान नामों मोक्ष सुख को।

आ तस्थु—आसमन्तात् तेषु स्थिरा भवन्ति। आस्थितवन्तः। अर्थात् जो दिव्य लोकों मोक्ष सुखों को प्राप्त हो, इसमें सन्देह मत करो, इसलिए मैं तुमको,

(युजे) योजयाम। उपासना योग में लगाता हूँ। युक्त करता हूँ।

युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी विगत कल्मषः।
सुखेन ब्रह्म संस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥ गीता ६।२८

युञ्जन् वशीकुर्वन्। एवं यथाशास्त्रं योगाभ्यासेन। आत्मानं मनः। विगतकल्मषः विगतमलः सन्। ब्रह्मसंस्पर्श ब्रह्मसाक्षात्कार रूपम्। अत्यन्तं सुखम् मोक्ष रूपं सुखम्। अश्नुते अनुभवति।

भावार्थ—योगाभ्यास के ज्ञान को चाहने वाले मनुष्यों को चाहिए कि योग में कुशल विद्वानों का संग करें। उनके संग से योग की विधि को जान के ब्रह्म ज्ञान का अभ्यास करें। जैसे विद्वान् का प्रकाशित किया हुआ मार्ग सबको सुख से

प्राप्त होता है। वैसे ही योगाभ्यासियों के संग से योगविधि सहज में प्राप्त होती है। कोई भी जीवात्मा इस संग और ब्रह्मानन्द के अभ्यास के बिना पवित्र होकर सब सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए उस योग विधि के साथ ही सब मनुष्य परब्रह्म की उपासना करें।

"उपनः सजवो गिरः श्रृण्वन्त्वमृतस्यये।
सुमृडीका भवन्तु नः॥ यजु : ३४।७७

योग का लक्षण
(योग किसको कहते हैं ?)

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।" योगदर्शन समाधिपाद सूत्र २

(चित्तवृत्तिः) चित्त की वृत्तियों का (निरोधः) सर्वथा रुक जाना, रोकना (योगः) योग है।

अर्थात् चित्त मन की वृत्तियों धाराओं या तरंगों (WAVES) को सब बुराइयों से हटाकर शुभगुणों में स्थिर करना, परमेश्वर की ओर लगाना योग है।

ऋषिभाष्य—उपासना समये व्यवहार समये वा परमेश्वरादतिरिक्त-विषयादधर्मा व्यवहाराच्च मनसो वृत्तिः सदैव निरुद्धा रक्षणींवा अर्थात्—चित्त की वृत्तियों को सब बुराइयों से हटाकर शुभ गुणों में स्थिर करके परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करने को योग कहते हैं। वियोग उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा के विरुद्ध बुराइयों में फँसकर उससे दूर हो जाना।

योग युज् योगे।" युज् समाधौ धातु से।

"योगः सहननोपाय ध्यान संगति मुक्तिषु-इत्यमरः।

चित्तस्य वृत्तिः चित्तवृत्तिः मन का प्रवाह, धारा, वेग, नितरां रोधः निरोधः। सर्वथा रोक देना।"

चित्तवृत्ति कौन सी है ?

"अभ्यास योग युक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याहि पार्थानुचिन्तयन्॥" गीता ८।८

"क्षिप्तं मूढ विक्षिप्त मेकाग्रं निरुद्धमिति पञ्च चित्त भूमयः।
योगसूत्र।

क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध—ये चित्त की पाँच अवस्थाएँ होती हैं। चित्त अन्तःकरण। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये अन्तःकरण की चार अवस्थाएँ होती हैं।

निरुद्धा सति सा क्वावतिष्ठत इत्यमोच्यते ?

जब चित्तवृत्ति बाहर के व्यवहारों से हटाकर स्थिर की जाती है तब वह कहाँ पर स्थिर होती है ? इसका उत्तर—

तदाद्रष्टः स्वरूपेवस्थानम्।" योग. समाधि. ३

ऋषि भाष्य—यदा सर्वस्मात् व्यवहारात् मनोऽवरुध्यते। तदोपासकस्य मनो द्रष्टुः सर्वज्ञस्य परमेश्वरस्य स्वरूपे स्थितिं लभते।

(तदा) तब, जब चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है तब अर्थात् उस समय (द्रष्टुः) द्रष्टा की। देखने वाले की। निर्विकल्प समधिस्थ जीव की द्रष्टुः पुरुषस्य। (स्वरूपे) अपने रूप में। आत्मचिन्तन में। (अवस्थानं) स्थिति अवस्थिति होती है। भवति इति वाक्यशेषः।

भावार्थ—जब चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है। उस समय द्रष्टा जीवात्मा की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है। अर्थात् वह कैवल्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है। यह दशा निर्विकल्प समाधि में होती है। कैवल्यपाद सूत्र ३४वाँ।

ऋषि भाष्य—जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ़ बाँध कर रोक देते हैं, तब वह जिस ओर नीचा होता है उस ओर चलकर कहीं स्थिर हो जाता है। इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है, तब परमेश्वर में स्थिर हो जाती है। एक तो चित्त की वृत्ति के रोकने का यह प्रयोजन है। अब आगे दूसरा प्रयोजन बतलाते हैं—

यदोपासको योग्युपासनां विहाय सांसारिके व्यवहारे प्रवर्त्त, तदा सांसारिक जनवत्तस्यापि प्रवृत्तिर्भवत्यात्रहोस्विद् विलक्षणेत्यत्राह—

"वृत्ति सारुप्यमितरत्र।" **योग. समाधि. ४**

(इतरत्र) दूसरे समय में द्रष्टा का। योगादन्यास्मिन् काले। (वृत्ति सारुप्यं) वृत्ति के सदृश स्वरूप होता है। भवति इति वाक्य-शेषः।

भावार्थ—जब तक योग साधनों के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध नहीं हो जाता तब तक द्रष्टा अपने चित्त की वृत्ति के ही अनुरूप अपना स्वरूप समझता रहता है। उसे अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। अतः चित्तवृत्ति निरोध रूप योग अवश्य कर्त्तव्य है।

ऋषि भाष्य—उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं। तब योगी की वृत्ति तो सदा हर्ष शोक रहित आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और आनन्द युक्त रहती है। संसार के मनुष्य की वृत्ति सदा, हर्ष शोक रूप दुःख सागर में ही डूबी रहती है। उपासक योगी की तो ज्ञान रूप, प्रकाश में सदा बढ़ती रहती है। संसारी मनुष्य की वृत्ति सदा अन्धकार में फँसती जाती है।

"युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगत कल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥" गीता ६।२८

युञ्जन् वशीकुर्वन्। एवं यथाशास्त्र योगाभ्यासेन। आत्मानं मनः। विगतकलमषाः विगतमलः सन्। अत्यन्तं सुखं मोक्षरुपं सुखम्। अश्नुते अनुभवति।

और वह पाप रहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्मा मन को परमात्मा में लगाता हुआ सुखपूर्वक पर ब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति रूप अत्यन्त आनन्द का अनुभव करता है।

कतिवृत्तयः सन्ति ?
चित्तवृत्तियाँ कितनी हैं ?

वृत्तयश्चित्त परिणाम विशेषाः चित्त के परिणाम विशेष वृत्तियाँ कहलाती हैं।

"वृत्तयः पञ्चतय्या क्लिष्टाक्लिष्टाः।" **योग. समाधिपाद सूत्र. ५**

(वृत्तयः) निरोध करने योग्य चित्त की वृत्तियाँ। (पञ्चतय्यः) पाँच प्रकार की होती हैं। भवन्ति इति शेषः और फिर वे (क्लिष्टाक्लिष्टाः) क्लिष्ट और अक्लिष्ट भेद से दो प्रकार की हैं।

भावार्थ—ये चित्त की वृत्तियाँ आगे सूत्र ६ में वर्णन किये जाने वाले लक्षणों के अनुसार पाँच प्रकार की होती हैं तथा हर प्रकार की वृत्ति के दो भेद होते हैं। एक तो क्लिष्ट यानि क्लेश सहित अविद्यादि क्लेशों को पुष्ट करने वाली और योग साधन में विघ्नरूप होती है तथा दूसरी अक्लिष्ट यानि क्लेश रहित अर्थात् क्लेशों का क्षय करने वाली और योग साधन में भी सहायक होती है।

(१) क्लेश हेतुकाः कर्माशयप्रचये क्षेत्रीभूताः क्लिष्टाः।

(२) ख्याति विषया गुणाधिकार विरोधिन्योऽक्लिष्टाः।

अर्थात् अधर्म की भावना को उत्पन्न करने वाली राजस, तामस वृत्तियों को क्लिष्ट कहते हैं। जिन वृत्तियों को उदय होने से पुरुष राग द्वेषादि में प्रवृत्त हुआ शुभाशुभ कर्मों के करने से पुनः-पुनः जन्म मरण रूप कष्ट को प्राप्त होता है उनको क्लिष्ट कहते हैं। जो वृत्तियाँ ख्याति पुरुष के विवेक तथा भेद का विषय करती हुई गुण विकार की निवृत्ति करती हैं ऐसी सात्विक वृत्तियों का नाम अक्लिष्ट है। क्लिश उपतापे-धातु से क्लेश।

एताएव पञ्चवृत्तयः संक्षिप्योद्दिश्यत्ते—(इन्हीं पाँच वृत्तियों को संक्षेप से बतलाते हैं)

"प्रमाण विपर्यय विकल्पनिद्रास्मृतयः।" **योग. समाधिपाद सूत्र ६**

(१) प्रमाण वृत्ति, (२) विपर्यय वृत्ति, (३) विकल्प वृत्ति, (४) निद्रा वृत्ति, (५) स्मृति वृत्ति। ये पाँच प्रकार की वृत्तियाँ हैं।

(१) प्रमाण—यथार्थ ज्ञान का साधन। (२) विपर्यय—विपरीत अथवा मिथ्या ज्ञान। (३) विकल्प—अविद्यमान वस्तु की शब्द ज्ञान के आधार पर कल्पना करना। (४) निद्रा—नींद, सोना। (५) स्मृति—पूर्व सुने या देखे पदार्थ का स्मरण। आसां क्रमेण लक्षण माह—इनका क्रम से लक्षण आगे सूत्रों में बतलाते हैं।

प्रमाण वृत्ति का लक्षण

"प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि।" **योग. समा. सूत्र ७**

प्रत्यक्ष अनुमान आगमाः प्रत्यक्ष अनुमान और आगम। (प्रमाणानि) प्रमाण हैं। ये तीन अर्थात् प्रत्यक्ष अनुमान और आगम भेद से तीन प्रकार की प्रमाणवृत्ति है। प्रमाकरणं प्रमाणम्। प्रमा यथार्थ ज्ञान। प्र उपसर्ग पूर्वक मा धातु से ल्युट् प्रत्यय करने से प्रमाण शब्द की सिद्धि होती है। येनार्थं प्रमिणोति तत् प्रमाणं प्रकर्षेणमीयते ज्ञायते तत् प्रमाणम्। प्रमाण, प्रमेय, प्रषाता, प्रमिति। येनार्थं प्रमीयते तत् प्रमाणम्। प्रमीयते तत् प्रमेयम्। यस्येप्सा जिहासा प्रयुक्तस्य प्रवृत्तिः सप्रमाता। यदर्थं विज्ञानं सा प्रमिति। अर्थस्तु सुखं सुख हेतुः दुःखं दुःखहेतुश्च।

"प्रत्यक्ष का लक्षण"

"इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्।" न्यायदर्शन अ. १ आ १ सू. ४

आत्मा मनसा संयुज्यते, मन इन्द्रियेण, इन्द्रियर्थेनेति। इन्द्रियस्यार्थेन सन्निकर्षादुत्पद्यते यज्ज्ञानं तत् प्रत्यक्षम्। तत् सत्यं निश्चयात्मकं स्यात्। इन्द्रियाणामर्थैः स्व-स्व विषयैः सह सन्निकर्षः सम्बन्धः तेभ्यउत्पन्नं ज्ञानं इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न ज्ञानम्।

"आत्मेन्द्रिय मनोऽर्थानां सन्निकर्षात् प्रवर्त्तते।
व्यक्तातदात्वे या बुद्धिः प्रत्यक्षं सा निरुच्यते॥"

अर्थात् इन्द्रिय और अर्थ के सम्बन्ध से जो ज्ञान पैदा होता हो और जिसमें व्यभिचार दोष न हो और किसी प्रकार का सन्देह भी न हो, निश्चयात्मक हो, उसको प्रत्यक्ष कहते हैं।

पाँच ज्ञानेन्द्रियों के कारण से पाँच प्रकार का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

"श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते॥" गीता १५।९
अक्षं अक्षं प्रति प्रत्यक्षम्।
"घ्राणरसनचक्षुस्त्वक् श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः।"
"पृथिव्यापस्ते जो वायुराकाशमिति भूतानि।"
"गन्ध रस रूप स्पर्श शब्दाः पृथिव्यादिगुणास्तदर्थाः।"

न्याय दर्शन अध्याय १ आन्हिक १ सूत्र १२।१४

अनुमान का लक्षण

"अथ तत्पूर्वकं त्रिविधिमनुमानं पूर्ववच्छेषवत् सामान्यतो दृष्टञ्च।"

न्याय. अ. १ आ. १ सूत्र ५

अनु पश्चात् मीयते ज्ञायते तदनुमानम्। (अथ तत्पूर्वकम्) अथ आनन्तर्ये। तत् पूर्वकं—प्रत्यक्षपूर्वकं यत्र लिङ्ग ज्ञानेन लिङ्गिनो ज्ञानं ज्ञायते तदनुमानम्। (त्रिविधं) त्रिः प्रकारकम्। तीन प्रकार का। (अनुमानं) अनुमान प्रमाण होता है। (पूर्ववत्) यत्र कारणेन कार्यमनुमीयते। जहाँ कारण द्वारा कार्य का ज्ञान किया जाय;

यथा—मेघोन्नत्याभविष्यति वृष्टिरिति जैसे—घनघोर मेघों को देखकर वृष्टि होने का अनुमान होता है। (शेषवत्) यत्र कार्येण कारणमनुमीयते तच्छेषवत्। जहाँ कार्य को देखकर कारण का अनुमान किया जाय। पुत्रं दृष्ट्वा आसीदस्य पिता। पूर्वोदक विपरीतं मुदकं नथाः पूर्णत्वं शीघ्रत्वं च दृष्ट्वा स्रोतसोनुमीयते भूता वृष्टिरिति। नदी को बहुत वेग से तथा मटीले जल से बहती हुई देख कर अनुमान होता है कि ऊपर पर्वत में वृष्टि हुई है। (सामान्यतो दृष्टं) व्रज्यापूर्वकमन्यत्र दृष्टस्य अन्यत्र दर्शनमिति। पर्वतोऽयं वन्हिमान् धूमवत्वात्।

आगम का लक्षण

आप्तोपदेशः शब्दः। न्याय सूत्र अ. १। आ.१। सूत्र ७

आप्ताः खलु साक्षात् कृत धर्मा यथा दृष्टस्यार्थस्य चिरव्यापयिषया प्रयोक्ता उपदेष्टा, साक्षात् करणमर्थस्य आप्तिः तथा प्रवर्त्तत इत्याप्तः शब्दयते प्रत्याय्यते दृष्टोऽदृष्टार्थो स शब्दः। ज्ञानेन मोक्षो भवती त्याद्युदाहरणम्।

"स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात्।" न्याय १।१।८

यस्येह दृश्यतेऽर्थः स दृष्टार्थः। यस्यामुत्र प्रतीयते सोऽदृष्टार्थः। पुत्र कामो यजेत। स्वर्गकामो यजेत इत्यादि।

"रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्तपोज्ञानबलेन ये।
येषां त्रैका लममलं ज्ञानमंव्याहतं तथा॥"
"आप्ताः शिष्टाः विबुद्धास्ते तेषां ज्ञानमसंशयम्।
ससं वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तमः॥" चरक. सं.

"आप्तागमस्तथा वेदः, यश्चान्योऽपि कश्चित् वेदार्थादविपरीतः।" आप्त के उपदेश को शब्द प्रमाण कहते हैं।

"दृष्टमनुमानं माप्त वचनञ्च सर्वप्रमाण सिद्धत्वात्।
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेय सिद्धि प्रमाणाद्धि॥" सां. का.
"प्रत्यक्षमात्रं चार्वाकाः, बौद्धाः वैशेषिका द्वयम्।
साँख्य योगास्त्रयं चैव न्यायं चैव चतुष्टयम्॥"
"प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सिता॥" मनुः
"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥"

विपर्यय वृत्ति के लक्षण

"विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूत प्रतिष्ठम्।" योग. १।१।८

(विपर्ययः) अतथाभूतेऽर्थे तथोत्पद्यमानं ज्ञानं विपर्ययः।" जैसा अर्थ नहीं है, वैसा उत्पन्न हुआ ज्ञान विपर्यय कहलाता है; यथा—

शुक्तिकामां रजत ज्ञानम् । जैसे सीपी में चाँदी का ज्ञान होना । रज्जु में सर्प का भान होना । (अतद्रूत प्रतिष्ठम्) तस्यार्थस्य यद्रूपं तस्मिन् रूपे न प्रतितिष्ठति उस वस्तु का जो स्वरूप है उस रूप में ज्ञान नहीं ठहरता ।

संशयोऽपि अतद्रूव प्रतिष्ठत्वात् मिथ्या ज्ञानम् । यथा स्थाणु र्वा पुरुषोवेति ।

(विपर्ययः) विपर्यय । मिथ्या ज्ञानं—मिथ्या ज्ञान है । अतद्रूप-प्रतिष्ठम्—जो उसके (पदार्थ के) रूप में प्रतिष्ठित नहीं है । अर्थात् जो उस पदार्थ के वास्तविक रूप को प्रकाशित नहीं करता है ।

सूत्र में विपर्यय लक्ष्य है, मिथ्या ज्ञान लक्षण है और अतद्रूप प्रति प्रतिष्ठितम्—हेतु है ।

विकल्प वृत्ति का लक्षण

"शब्द ज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ।"   योग. समाधि. सू. ९

(शब्द ज्ञानानुपाती) शब्द जनितं ज्ञानं शब्द ज्ञानम् । तदनु-पातितुं शीलं यस्य स शब्दज्ञानानुपाती । शब्द से उत्पन्न हुआ ज्ञान शब्द ज्ञान कहलाता है । उसके पीछे होने का है स्वभाव जिसका वह शब्द ज्ञान अनुपाती कहलाता है ।

(वस्तु शून्यो) वस्तुनस्तथात्वमनपेक्षमाणो योध्यवसायः ।

अर्थात् वस्तु के यथार्थ स्वरूप की अपेक्षा न करके जो निश्चय करना है ।

(विकल्पः) स विकल्प इत्युच्यते । वह विकल्प ज्ञान कहलाता है जैसा किसी ने कहा है—

"मृगतृष्णाम्भसिस्नातः स पुष्पकृतशेखरः ।
एष वन्ध्या सुतो याति शशशृङ्ग धनुर्धरः ।।"

अर्थात् मृग तृष्णा के जल में स्नान किये हुए, आकाश का पुष्प शिर में धारण करके यह बन्ध्या का पुत्र जाता है जिसके हाथ में खरगोश के सींगों का धनुष है ।

शब्द ज्ञान—अनुपाती—शब्द से उत्पन्न जो ज्ञान उसका अनुगामी अर्थात् उसके पीछे चलने का जिसका स्वभाव है और जो वस्तुशून्यः—वस्तु से शून्य है, वस्तु की सत्ता की अपेक्षा नहीं रखता है । विकल्पः—इस प्रकार का ज्ञान विकल्प कहलाता है ।

केवल शब्द के आधार पर बिना हुए पदार्थ की कल्पना करने वाली जो चित्त की वृत्ति है, वह विकल्पवृत्ति है । विपर्यय वृत्ति में तो विद्यमान वस्तु के स्वरूप का विपरीत ज्ञान होता है और विकल्प वृत्ति में अविधमान वस्तु को शब्द ज्ञान के आधार पर कल्पना होती है यही विपर्यय और विकल्प वृत्ति का भेद है ।

निद्रा वृत्ति का लक्षण

"अभाव प्रत्ययालम्बनावृत्तिर्निद्रा ।"   योग. समाधिपाद. सू. १०

(अभाव प्रत्ययालम्बना) अभाव के ज्ञान का अवलम्बन ग्रहण करने वाली । (वृत्तिः निद्रा) जो वृत्ति है, वह निद्रावृत्ति कहलाती है । (अभाव प्रत्यय आलम्बनं यस्यावृत्तेः सा निद्रा) ।निद्रा तमोगुण प्रायः । तमः कफाभ्यां निद्रा स्यात् ।

ज्ञानों के अभाव को धारण करना जिस वृत्ति का स्वभाव है वह निद्रा कहलाती है। किस प्रकार वह जाना जाता है ? सुखमहं मस्वाप्सम्, अर्थात् मैं सुख से सोया। प्रसन्न मे मनः, मेरा मन प्रसन्न है। प्रज्ञां मे विशारदी करोति—मेरी बुद्धि प्रकाश करती है। दुःखमहभस्वाप्सम्—मैं दुःख के साथ सोया। स्त्यानं मे मनः—मेरा मन अकर्मण्य सा हो गया है। भ्रमन्त्यनवस्थितम्। घूमता सा है। अनवस्थित हो रहा है। इत्यादि इत्यादि।

"निद्रा तु सेविता काले धातु साम्यमतन्द्रितान्।
पुष्टिवर्णं बलोत्साह मग्नि दीप्ति करोति च॥"
"निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टि कार्श्यं बलाबलम्।
वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च॥" आयुर्वेद
"युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥" गीता ६।१७

स्मृति वृत्ति के लक्षणः

"अनुभूत विषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।" योग. समाधि. सूत्र 11

अनुभूत विषया सम्प्रमोषः अनुभव किये हुए विषय का न छिपना अर्थात् प्रकट हो जाना। स्मृतिः स्मृति वृत्ति कहलाती है।

दृष्ट श्रुतानुभूतार्थानां स्मरणात् स्मृतिरुच्यते।"

अर्थात् देखे सुने अनुभव किये हुए विषयों का स्मरण हो जाना स्मृति कहलाती है।

उपर्युक्त प्रमाण, विपर्यय, विकल्प और निद्रा इन चार प्रकार की वृत्तियों द्वारा अनुभव में आये हुए विषयों के जो संस्कार चित्त में पड़े हैं, उनका पुनः किसी निमित्त को पाकर स्फुरित हो जाना ही स्मृति है। उपर्युक्त चार प्रकार की वृत्तियों के सिवा इस स्मृति वृत्ति से जो संस्कार चित्त पर पड़ते हैं। उनसे भी पुनः स्मृति वृत्ति उत्पन्न होती है। यह स्मृति वृत्ति भी क्लिष्ट और अक्लिष्ट दोनों प्रकार की होती है।

स्मृति से भिन्न ज्ञान का नाम अनुभव है। अनुभव से ज्ञात जानी हुई वस्तु को अनुभूत कहते हैं।

ऋषि भाष्य—जिस व्यवहार व वस्तु को प्रत्यक्ष देख लिया हो उसी का संस्कार ज्ञान में बना रहता है। उस विषय का अप्रमोष अर्थात् भूले नहीं इस प्रकार की वृत्ति को स्मृति कहते हैं। प्रमाणेनानुभूतस्य विषयस्य योसम्प्रमोषः संस्कार द्वारेण बुद्धावारूढ़ सा स्मृतिरुच्यते।

अब उन चित्तवृत्तियों के निरोध का उपाय बतलाते हैं—

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।" योग. समाधिपाद सूत्र. १२

(अभ्यास वैराग्याभयां) अभ्यास और वैराग्य से (तन्निरोधः) तत् उन चित्त वृत्तियों का, निरोध होता है।

अभ्यसनमभ्यासः विरागस्य भावो वैराग्यं ताभ्यां तच्चित वृत्तीनां निरोधों भवति। (अभ्यासः) चेतसः स्थापनं भूयो भूयोभ्यासः स उच्यते, तत्र स्थितौ यत्नोभ्यासः। समाधि. सूत्र. १३

तत्र उन दोनों अभ्यास और वैराग्य में से, स्थितौ चित्त की स्थिति में, यत्नः यत्न करना अभ्यासः अभ्यास है। अर्थात् उनमें से चित्त की स्थिति के लिए यत्न करना अभ्यास कहलाता है। (वैराग्य) विरागस्य भावो वैराग्यम्। "दृष्टानुश्रविक विषय विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्।" योग. समाधि. सूत्र १५

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य देखे और सुने हुए विषयों में सर्वथा तृष्णा रहित चित्त की, वशीकार संज्ञा जो वशीकार नामक अवस्था है वह, वैराग्यम् वैराग्य है।

चित्त की वृत्तियों का सर्वथा निरोध करने के लिए अभ्यास और वैराग्य ये दो उपाय हैं। चित्त की वृत्तियों का प्रवाह परम्परागत संस्कारों के बल से सांसारिक भोगों की ओर चल रहा है, उस प्रवाह को रोकने का उपाय वैराग्य है और उसे कल्याण मार्ग में ले जाने का उपाय अभ्यास है।

"अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।" गीता ६।३५

"ध्यान धारणाभ्यास वैराग्यादिभिस्तन्निरोधः।" सांख्य ६।२९

जिस प्रकार पक्षी का आकाश में उड़ना दोनों ही पक्षों के अधीन है केवल एक पक्ष के नहीं इसी प्रकार सभी चित्त वृत्तियों का निरोध अभ्यास और वैराग्य दोनों के द्वारा होता है, एक से नहीं।

व्यास भाष्य—चित्त नदी नामोभयतो वाहिनी वहाति, कल्याणाय वहति, पापाय च। या तु कैवल्य प्राग्भारा विवेक विषय निम्ना सा कल्याणवहा संसार प्राग्भाराऽविवेक विषय निम्ना पापवहा। तत्र वैराग्येण विषय-स्रोतः खिली क्रियते। विवेक दर्शनाभ्यासेन विवेकस्रोत उद्घाटयते इत्युभयाधीनश्चित्तवृत्ति निरोधः।"

अर्थ—चित्त एक नदी है, जिसमें वृत्तियों का प्रवाह बहता है। इसकी दो धाराएँ हैं। एक संसार सागर की ओर दूसरी कल्याण सागर की ओर बहती है। जिसने पूर्व जन्म में सांसारिक विषयों के भोगार्थ कार्य किये हैं उसकी वृत्तियों की धारा उन संस्कारों के कारण अविवेक मार्ग में बहती हुई संसार सागर में जा मिलती है और जिसने पूर्व जन्म में कैवल्यार्थ काम किये हैं उसकी वृत्तियों की धारा उन संस्कारों के कारण विवेक मार्ग में बहती हुई कल्याण सागर में जा मिलती है। वैराग्य से विषय स्रोत अर्थात् संसार की ओर जाने वाला प्रवाह बन्द किया जाता है और विवेक उभारा जाता है। इस प्रकार दोनों अर्थात् अभ्यास और वैराग्य के अधीन चित्तवृत्ति निरोध है।

"श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसोवृणीते, प्रेयो मन्दो योग क्षेत्राद् वृणीते॥"

कठो. १।२।२

"ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

गीता ५।२२

"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्ण वर्त्मेव भूय्र एवाभिवर्धते॥"

मनुः

"भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥"

भर्तृहरिः

अभ्यास को दृढ़ रखने का प्रकार

"स तु दीर्घकालनैरन्तर्य सत्कारा सेवि तो दृढ़भूमिः।"

योग. समाधिपाद. सूत्र १४

सः वह अभ्यास, तु परन्तु, दीर्घकाल बहुत काल पर्यप्त, नैरन्तर्य निरन्तर-लगातार व्यवधान रहित, सत्कार आ-सेवितः आदर से ठीक ठीक सेवन किया हुआ अर्थात् श्रद्धा वीर्य, भक्तिपूर्वक अनुष्ठान किया हुआ, दृढ़भूमिः दृढ़ आस्था वाला होता है।

साधक को चाहिए कि चित्तवृत्ति निरोध के अभ्यास को बहुत समय तक अर्थात् आजीवन करता रहे साथ ही श्रद्धा, भक्ति से निरन्तर उत्साहपूर्वक प्रयत्न करता रहे तभी दृढ़भूमि सिद्ध होगी।

"क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।"

योग. समाधिपाद सूत्र २४

"तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।" योग. समाधि २५
"स पूर्वेषामपिः गुरुः कालेनानवच्छेदात्।" सूत्र २६
"तस्म वाचकः प्रणवः।" समाधि. सूत्र २७
"तज्जपस्तदर्थभावनम्।" समाधि. सूत्र २८

ईश्वर के नाम, जप और स्वरूप चिन्तन का फल क्या है ?

"ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायामावश्च।"

योग.समाधिपाद सूत्र २९

तत् ईश्वर प्रणिधानात् प्रत्यक् चेतनस्य त्वं पद लक्षस्याधिगमः साक्षात्कारो भवति, अन्तरायाणां विघ्नानां चाभावोभवति।

ततः उस ईश्वर प्रणिधान से, प्रत्यक् चेतना जीवात्मा, परमात्मा का, अधिगमः प्राप्ति, साक्षात्कार, अपि भी हो जाता है, और अन्तरायाभावः विघ्नों का अभाव हो जाता है।

अथ केऽन्तरायाः ये चित्तस्य विक्षेपकाः ? के पुनस्ते ? कियन्तो वेति ?

"व्याधिस्त्यानसंशय प्रमादालस्याविरतिभ्रान्ति दर्शनालब्ध भूमि कत्त्वानवस्थित त्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः।" योग. समाधिपाद, सूत्र ३०

व्यासभाष्य—नवान्तरायाश्चितस्य विक्षेपाः (सहैते चित्तवृत्तिभि र्भवन्ति) एतेषामभावे न भवन्ति पूर्वोक्ताश्चित्तवृत्तयः।

(व्याधिः) व्याधिर्धातु रसकरण वैषम्यम्। वातपित्तकफः इस रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, मलमूत्रादि धातुओं, खाए पिये आहार का रस और इन्द्रिय तथा मन की विषमता का नाम व्याधि अर्थात् रोग है।

"तद्दुःख संयोगा व्याधय इत्युच्यन्ते। ते चतुर्विधाः—

आगन्तवः, शारीराः, मानसाः, स्वाभाविकाश्चेति।"

"विकारे धातु वैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।

सुख संज्ञक मारोग्यं-विकारो दुःख मेव च॥"चरक संहिता

"समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

आगन्तवो अभिघात निमित्ताः। शारीरास्त्वन्नपानमूला वातपित्तकफ शोणित सन्निपात वैषम्य निमिताः। मानसास्तु क्रोधशोकभयहर्ष विषादेर्ष्याभ्यसूयदैन्य मात्सर्य माम लोभ प्रभृतय इच्छा द्वेषभेदैर्भवन्ति।

स्वाभाविकाःक्षुत् पिपासा जरा मृत्यु निद्राप्रभृतयः। त एते मनः शरीराधिष्ठानाः।

२. (स्त्यानं) स्तयानभकर्मण्यता चित्तस्य। अकर्मण्यता अर्थात् योगसाधनों में प्रवृत्ति का न होना,

३. (संशय) उभय कोटि स्पृग्विज्ञानम्। स्यादिदमेनं नैवं स्थादिति। ब्दिधा ज्ञान कि ऐसा हो सकता है या नहीं? अपनी शक्ति में या योग के फल में संदेह हो जाने का नाम संशय है।

४. (प्रमादः) समाधि साधनानामभावनम्। अननुष्ठानशीलता। समाधि साधनेण्वौदासीन्यम्।

समाधि के साधनों का अनुष्ठान न करना प्रमाद कहलाता है,

५. (आलस्यं) कास्य चित्तस्य च गुरुत्वादप्रवृत्तिः। शरीर और चित्त के भारी होने के कारण साधन में प्रवृत्ति का न होना, शरीर का भारीपन कफ आदि के प्रकोप से और चित्त का भारीपन तमोगुण की अधिकता से होता है।

६. (अविरतिः) चित्तस्य विषय संप्रयोगात्मागर्धः। विषयों के साथ इन्द्रियों का संयोग होने से उसमें आसनक्ति हो जाने के कारण जो चित्त में वैराग्य का अभाव हो जाना है उसे अविरति कहते हैं।

७. (भ्रान्तिदर्शनं) विपर्यय ज्ञानम्। शुक्तिकायां रजतवत् विपर्यय ज्ञानम्। मिथ्या ज्ञानम्। योग के साधनों तथा उसके फल को मिथ्या जानना भ्रान्तिदर्शन कहलाता है।

८. (अलब्धभूमिकत्वं) समाधिभूयेरलाभः। साधन करने पर भी साधन की स्थिति का प्राप्त न होना अलब्धभूमिकत्व है। इससे साधक का उत्साह कम हो जाता है।

९. (अनवस्थितत्वं) लब्धायांभूमौ चित्तस्या प्रतिष्ठा, योग साधन से किसी भूमि में चित्त की स्थिति होने पर भी उसका न ठहरना।

एते चित्तविक्षेपा नवयोगमलाः योगप्रतिपक्षा योगान्तराया इत्यमिधीयन्ते। ये चित्त को विक्षिप्त करने वाले नौ योग के मल योग के शत्रु, योग के विघ्न कहे जाते हैं।

जैसे जड़ में चेतन और चेतन में जड़ बुद्धि करना तथा ईश्वर में अनीश्वर और अनीश्वर में ईश्वरभाव कर के पूजा करना।

इनके साथ-साथ होने वाले दूसरे विघ्नों को बताते हैं—

"दुःख दौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वास प्रश्वास विक्षेप सह भुवः।

योग. समाधिपाद, सूत्र ३१

१. (दुःख) दुःखान्याध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकं च।

आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक यह तीन प्रकार का दुःख है। येनामिहताः प्राणिनस्तदुपघाताय प्रयतन्ते तद्दुःखम् जिससे पीड़ित हुए प्राणी उसके नाश के लिए प्रयत्न करते हैं, वह दुःख कहलाता है।

२. (दौर्मनस्य) इच्दामिघातात् चेतसः क्षोभः। इच्छा की पूर्ति न होने पर जो मन में क्षोभ होता है उसे दौर्मनस्य कहते हैं।

३. (अङ्गमेजयत्वं) यदङ्गान्ये जयति कम्पयति तदङ्गमेजयत्वम्।

शरीर के अंगों में कम्प होना "अङ्गमेजयत्व" है।

४. (श्वास) प्राणों यद् वाह्यं वायुभाचामति स श्वासः। नासिका द्वारा जो वाह्य वायु को अन्दर खींचना है वह श्वास कहलाता है। बिना इच्छा के बाहर की वायु का भीतर प्रवेश कर जाना अर्थात् बाहरी कुम्भक में विघ्न हो जाना श्वास है।

५. (प्रश्वासः) यत् कौष्ठ्यं वायुं निःसारयति स प्रश्वासः। जो उदर के वायु को बाहर निकालना है वह प्रश्वास कहलाता है। बिना इच्छा के ही भीतर की वायु का बाहर निकल जाना, अर्थात् भीतरी कुम्भक में विघ्न हो जाना प्रश्वास है।

एते विक्षेप सह भुवो विक्षिप्त चित्तस्यै ते भवन्ति, समाहित चित्तस्यैते न भवन्ति। अर्थात् ये पाँचों विक्षिप्त चित्त में ही होते हैं। समाहित चित्त में नहीं होते। इसलिए इनको "विक्षेप सहमू" कहते हैं।

अथैते विक्षेपाः समाधि प्रतिपक्षास्ताभ्यामेवाभ्यास वैराग्याभ्यां निरोद्धव्याः अर्थात् यह विक्षेप जो समाधि के शत्रु हैं। अभ्यास वैराग्य के द्वारा उनका निरोध करना चाहिए॥ अर्थात् श्वास, प्रश्वास अत्यन्त वेग से चलना ।

अब इन विघ्नों को दूर करने का उपाय बतलाते हैं—

"तत् प्रतिषेधार्थ मेकतत्वाभ्यासः। **योग. समाधि ३२**

(तत् प्रतिषेधार्थ) विक्षेप प्रतिशेधार्थमेकतत्वावलम्बनं चित्तमभ्यस्येत्। तत् उन पूर्वोक्त विक्षेप तथा उपविक्षेपों के प्रतिषेधार्थं दूर करने के लिए। (एक तत्त्वाभ्यासः) एक तत्व का अभ्यास करना चाहिए। अर्थात् एकमात्र उपाय तो ईश्वर प्रणिधान है, चित्त में रागद्वेषादि मल रहने के कारण मलिन चित्त एकाग्र नहीं होता, अतः चित्त को निर्मल बनाने का सुगम उपाय बतलाते हैं—

मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसाधनम्। योग समाधि. सूत्र. ३३

(सुखदुःख पुण्यापुण्य विषयाणां) सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा और पापात्मा के विषय में यथाक्रम (मैत्रीकरुणामुदितो पेक्षाणाम्) मित्रता, दया, प्रसन्नता और उपेक्षा की (आवनातः) भावना करने से (चित्त प्रसाधनं) चित्त की निर्मलता प्राप्त होती है।

तत्र सर्वप्राणिषु सुखसंभोगापन्नेषु मैत्री भावयेत् दुःखितेषु करुणाम्। पुण्यात्मेकषु मुदिताम्। अपुण्यशीलेश्पेक्षाम्। एवमस्यः भावयतः शुक्लोधर्म उपजायते। ततश्च चित्तं प्रसीदति। प्रसन्नमेकाग्रं स्थिति पदं लभते। अर्थात्-सुखी मनुष्यों में भिन्नता की भावना करने से दुःखी मनुष्यों में दया की भावना करने से पुण्यात्मा पुरुषों में प्रसन्नता की भावना करने से और पापियों में उपेक्षा की भावना करने से, चित्त के द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और क्रोध आदि मलों का नाश होकर चित्त शुद्ध, निर्मल हो जाता है। अतः साधक को इसका अभ्यास करना चाहिए।

अब विवेक ज्ञान की प्राप्ति का उपाय बतलाते हैं—

"योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।

योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र. २८

(योग अङ्गअनुष्ठानात्) योग के अंगों का अनुष्ठान करने से (अशुद्धिक्षये) अशुद्धि के नाश होने पर, अशुद्धि अविद्यादिक्लेश। (ज्ञानदीप्तिः) ज्ञान का प्रकाश (आविवेकख्यातेः) विवेक ख्याति पर्यन्त हो जाता है।

व्याख्या—आगे बतलाये जाने वाले सूत्र २९ में योग के आठ अंगों का अनुष्ठान करने से अर्थात् उनको आचरण में लाने से अविद्यादि क्लेशों का अभाव होकर योगी को ज्ञान का प्रकाश विवेक ख्याति तक हो जाता है अर्थात् उसको

आत्मा का स्वरूप, बुद्धि, अंहकार और इन्द्रियों से सर्वथा भिन्न प्रत्यक्ष दिखलाई देता है।

"एषामुपासना योगाङ्गनामनुष्ठानादाचरणादशुद्धिरज्ञानं प्रतिदिन क्षीणं भवति। ज्ञानस्य च बृद्धिर्यावन् मोक्षप्राप्तिर्भवति।

अर्थात् आगे (सूत्र २९ में) जो उपासना योग के आठ अंग हैं उनके अनुष्ठान से अविद्यादि दोषों का क्षय होकर ज्ञान के प्रकाश की वृद्धि होने से जीव को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

योग क्या हैं। अविद्यादिदोष, पञ्च क्लेश क्या है? अष्टाङ्ग योग क्या है ?

यह आगे बताया गया है।

"ज्ञान योगात्मकं विद्धि योगं चाष्टाङ्ग संयुतम । संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्म परमात्मनोः।

योगी याज्ञवल्क्य,

अष्टाङ्ग योग क्या है

"यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि।" **योग. साधन. सूत्र २९**

१. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान और ८. समाधि ये आठ योग के अंग हैं।

ये आठ योग के अंग विवेक ख्याति के साधन हैं। उनमें से धारणा ध्यान समाधि—साक्षात् सहायक होने से योग के अन्तरंग साधन कहलाते हैं। यम-नियम योग के रुकावट हिंसादि दोषों को निर्मूल करके समाधि को सिद्ध करते हैं। अन्य तीन अगले अङ्ग में उपकारक हैं। अर्थात् आसन के सिद्ध होने पर प्राणायाम की स्थिरता से प्रत्याहार सिद्ध होता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ये पाँचों बहिरङ्ग साधन कहलाते हैं।

(१) यम

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यमाः।" योग. साधन. सूत्र ३०

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं।

यमु उपरमे—धातु से यम।

अहिंसा—सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः।

अर्थात् सर्वप्रकार से सर्वकाल में सर्व प्राणियों का चित्त में भी द्रोह न करना 'अहिंसा कहलाती है।'

"कर्मणामनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा।
अक्लेश जननं प्रोक्तमहिं सात्वेन योगिभिः॥"

अर्थात् शरीर, वाणी, मन से काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि की मनोवृत्ति के साथ किसी प्राणी को शारीरिक मानसिक पीड़ा अर्थात् हानि पहुँचाना, पहुँचवाना

या उसकी अनुमति देना या स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप से उसका कारण बनना हिंसा है।

इससे बचना" अहिंसा है। अर्थात् सब प्रकार से सब काल में सब प्राणियों के साथ बैर छोड़कर प्रेम प्रीति से वर्त्तना अहिंसा कहलाती है।

"हिंसि हिंसायाम्"। धातु से हिंसा, तत्परिवर्जनमहिंसा: "गौ, बैल, अश्व, बकरी आदि पशुओं का उचित रीति से पालन-पोषण करके, उनका प्राण हरण न करते हुए, उनसे नियमित रूप से दुग्ध आदि सामग्री प्राप्त करना तथा सेवा लेना हिंसा नहीं है। पर यही जब उनकी रक्षा का ध्यान न रखते हुए सेवा आदि क्रूरता से लेना हिंसा हो जाती है।"

शिक्षार्थ ताड़ना देना, रोग निवारणार्थ औषधि देना अथवा ऑपरेशन करना, सुधारार्थ या प्रायश्चित के लिए दण्ड देना हिंसा नहीं है। यदि ये बिना द्वेष आदि के केवल प्रेम से उनके कल्याणार्थ किये जाये। पर यदि जब काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष और भय आदि की मनोवृत्तियों से मिश्रित हो तो हिंसा हो जाती है। प्राणी का शरीर से वियोग करना सबसे बड़ी हिंसा कहलाती है।

अहिंसा व्रत पालन का फल—

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः।"

साधन पाद सूत्र ३५

(अहिंसा प्रतिष्ठायां) अहिंसा की प्रतिष्ठा में अर्थात् अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर (तत्सन्निधौ) उसके समीप, उस योगी के निकट (वैर त्यागः) बैर त्याग हो जाता है। सब प्राणी बैर का त्याग कर देते हैं। सर्व प्राणिनां भवति इति वाक्य शेषः।

"अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च स्वादकृश्चेति घातकाः। मांसभक्षयिताऽमुत्र यस्यमांसमिहादम्यहम्। एतन् मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः॥" मनुः ५।५५

सत्य यथार्थे वाङ् मनसे। यथादृष्टं यथानुमितं यथाश्रुतं तथा वाङ् मनसश्चेति। सम्यक् परीक्ष्य निश्चीयते तत् सत्यम्। सत्यं भूतहितं प्रोक्तं न यथार्थाभिभाषणम्। तस्मात् परीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं ब्रूयात्।

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।"

मनुः ४।१३८

सत्यब्रत का फल = (सत्याचरणस्य फलम्)।

"सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।" साधन सूत्र. ३६

(सत्य प्रतिष्ठायाम्) सत्य की प्रतिष्ठा में, सत्य में दृढ़ स्थित हो जाने पर (क्रियाफलाश्रयत्वम्) भवति इति शेषः क्रिया के फल का आश्रयभाव हो जाता है अमोघाऽस्य वाग्भवति। धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः। इत्यादि।

स्तेयम् = अशास्त्र पूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणं तत्प्रतिषेधः, पुनरस्पृहारूपमस्तेयम्। स्तेयं परस्वापहरणं तदभावोऽस्तेयम्।

अर्थात् दूसरे के स्वत्व का अपहरण करना, छल से या अन्य किसी उपाय से अन्याय पूर्वक, अपना लेना स्तेय चोरी है। इसमें सरकारी टैक्स की चोरी और घूंसखोरी भी सम्मिलित है। इन सब प्रकार की चोरियों के अभाव का नाम—'अस्तेयं है।'

अस्तेयाभ्यासवतः फलमाह = चोरी त्याग का फल—

"अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।"

साधनपाद सूत्र ३७

(अस्तेय प्रतिष्ठायां) अस्तेय के सिद्ध हो जाने पर यानी चोरी के अभाव की दृढ़ स्थिति हो जाने पर, (सर्व रत्नोपस्थानम्) सब रत्नों धनों की प्राप्ति होती है। अर्थात् जिस योगी को अस्तेय सिद्ध हो गया है। उसको समस्त दिशाओं से सब उत्तम पदार्थ यथायोग्य प्राप्त होने लगते हैं।

"कर्मणा मनसा वाचा पर द्रव्येषु निः स्पृहा।
अस्तेयमिति प्रोक्तं ऋषिभि स्तत्वदर्शिभिः॥"

ब्रह्मचर्यम् = गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः। अर्थात् गुप्तेन्द्रिय उपस्थ का सदा नियम में रखना।

"कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुन त्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥"

ब्रह्मचर्याभ्यास फलम् = (ब्रह्मचर्य धारण का फल)

"ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।"

साधन पाद. सूत्र ३८

(ब्रहमचर्य प्रतिष्ठायां) ब्रहमचर्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर (वीर्य लाभः भवति) वीर्य = ओज बल की प्राप्ति का लाभ होता है।

"स्मरणं कीर्तनं केलि प्रेक्षणं गुहयभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च॥"
एत मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥" **अथर्व. ११।३।१९**
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रविरक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥ **अथर्व. १७।३।१७**

अपरिग्रहः = विषयाणामर्जन रक्षण क्षय सङ्गहिंसा दोषदर्शना दस्वीकरणमपरिग्रहः। भोग साधनानामनङ्गीकारः। अपने स्वार्थ के लिए ममता पूर्वक

धन सम्पत्ति, भोग सामग्री का आवश्यकता से अधिक संग्रह करना 'परिग्रह' है। इसके अभाव का नाम "अपरिग्रह" है। विषय तथा अभिमानादि दोष से रहित होना अपरिग्रह कहलाता है। अ + परि + ग्रह उपादाने अपरिग्रहाभ्यासस्यफलम् — अपरिग्रह के अभ्यास का फल

"अपरिग्रह स्थैर्ये जन्म कथन्ता सम्बोधः।" साधन ३९

(अपरिग्रहस्थैर्ये) अपरिग्रह की स्थिति हो जाने पर (जन्म कथं ता संवोधः) पूर्व जन्म कैसे हुए थे। इसका भलीभाँति ज्ञान हो जाता है। अस्य भवति।

कोऽहमासं ? कथ महमासं ? किंस्विद् इदं ? कथंस्विदिदं ? के वा भविष्यामः ? कथं वा भविष्यामः ? इत्येवमस्य पूर्वान्त परान्त मध्येष्वात्मभाव जिज्ञासा स्व स्वरूपेणोपावर्त्तते। एता यमस्थैर्ये सिद्धयः।

एषां विशेषमाह = इन यमों की सबसे ऊँची अवस्था बतलाते हैं—

"जाति देशकाल समयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्।"

साधनपाद. सूत्र ३१

(जाति देशकाल समयानवच्छिन्नाः) ये पाँचों यम जाति, देश, काल और समय की सीमा से रहित, (सार्वभौमाः) सार्वभौम होने पर (महाव्रतम्) महाव्रत कहलाते हैं। अर्थात् जाति, देश, काल और समय नियम प्रतिज्ञा की सीमा से रहित होने पर सर्वभूमण्डल के लोगों के पालन करने योग्य होने पर महाव्रत कहलाते हैं। जाति व्राहमणत्वादिः। देशस्तीर्थादिः। कालश्चतुर्दश्यादिः। समये ब्राह्मण प्रयोजनादिः युद्धादिर्वा। एतैश्चतुर्भिरनवच्छिन्ना पूर्वोक्ता अहिंसादयो यमा; महाव्रतमित्युच्यन्ते। एवं सत्यादिषु यथायोगं योजनीयम्।

(२) नियम

"शौच सन्तोष तप; स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः।"

साधन पाद. सूत्र ३२

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम हैं।

शौच =शौचं वाह्याभ्यन्तरं च। मृज्जलादि जनितं मेध्याभ्यवहरणादि च वाह्यम्। आभ्यन्तरं चित्तमलानामाक्षालनम्।

"शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं वाह्यं मनः शुद्धिस्तथान्तरम्॥" मनुः
"अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनःसत्येन शुध्यति।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥" मनुः
"सर्वेषामेव शौचानांमन्तःशौचं परं स्मृतम्।
योऽन्तः शुचिर्हि स शुचिः नमृद्वारि शुचिः शुचिः॥" मनुः

"मृत्तिकानां सहस्त्रैस्तु, जल कुम्भ शतैरपि।
न शुध्यन्ति दुरात्मानो, येषां भावो न निर्मलः ॥" महाभारत

"न शरीर मलत्यागान्नरो भवति निर्मलः।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तः सुनिर्मलः ॥" महाभारत

"वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि"

शुचिर् पूतिभावे - धातु से। शुचेर्भावः शौचम्।

शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, प्राण, आचार, व्यवहार, वस्त्र, स्थान आदि की पवित्रता सदा रखनी योग्य है।

"मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्।" योग. समाधिपाद सूत्र ३३

बाह्यशौचस्य फलमाह = "शौचात्स्वाङ्ग जुगुप्सापरैरसंसर्गः।"

साधनपाद. ४८

(शौचात्) शौच के पालन से, (स्वाङ्ग जुगुप्सा) अपने अंगों में वैराग्य या घृणा (परैरसंसर्गः) दूसरों से संसर्ग न करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

"कलेवरं मूत्रपुरीष भाजनं, रमन्ति मूढाः न रमन्ति पण्डिताः।"

आभ्यन्तर शौच का फल—"सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्रेन्द्रियजयात्म दर्शन योग्यत्वानि च।" साधनपाद. सूत्र ४१

अर्थात् अन्तःकरण की शुद्धि मन में प्रसन्नता, चित्त में एकाग्रता, इन्द्रियों का वश में होना और आत्म साक्षात्कार की योग्यता भी होती है।

सन्तोषः =सम् उपसर्ग पूर्वक तुष् प्रीतौ- धातु से सन्तोष बना। सन्तोषः संनिहित साधनादधिकस्यानुपदित्सा। सन्तोषस्तुष्टिः।

अर्थात् धर्मानुष्ठानेन सम्यक् प्रसन्नता सम्पादनीया, अर्थात् धर्मानुष्ठान से अत्यन्त पुरुषार्थ करके प्रसन्न रहना और दुःख में शोकातुर न होना, किन्तु आलस्य का नाम सन्तोष नहीं है।" —स्वामी दयानन्द

"सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥" मनुः ४।१२

"सन्तोषस्त्रिषु कर्त्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्त्तव्यः यज्ञे तपसि पाठने ॥" नीतिः

"सहि भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ॥" योग २।४२

फलम् = सन्तोषादनुत्तम सुखलाभः।"

तपः = तपो द्वन्दसहनम्। द्वन्दाँश्च जिघत्सा, पिपासे, शीतोष्णे स्थानासाने काष्ठमौनाकारमौने च। तपोधर्माचरणम्। सदैव धर्मानुष्ठानमेव कर्त्तव्यम्। शास्त्रीय व्रतोपवास नियमैः शरीर तापनं तपः।" जैसे सोने को अग्नि में तपाके निर्मल कर

देते हैं वैसे ही आत्मा, मन, शरीर को धर्माचरण और शुभगुणों के आचरण रूप तप से निर्मल कर देना तप है। —स्वामी दयानन्द

"ऋतं तपः, सत्यं तपः, श्रुतं तपः, शान्तं तपः दमस्तपः, दानं तपः, यज्ञस्तपः भूर्भुवः स्वर्ब्रह्मैतदुपास्यैतत्तप इति। तैत्तिरीराण्यक "देवद्विजगुरु प्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्। ब्रहमचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मय तप उच्यते॥"
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भाव संशुद्धिरित्येतत्तपो मानस मुच्यते॥"

गीता १७।१४-१५-१६

मूढ़ग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत् तामसमुदाहृतम्। गीता १७-१९

"कायेन्द्रिय सिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः।" साधनपाद सूत्र ४३ इति तपसः फलम्। "तप सन्तापे-धातु से तप शब्द बना।"

स्वाध्यायः—सु + अध्यायः। शोभनश्चासौ अध्यायः स्वाध्यायः। स्वाध्यायः = सु + अध्यायः, स्व अध्यायः स्वाध्यायो वा।

मोक्ष शास्त्राणामध्ययनं प्रणव जपो वा। "वेदादि सत्य शास्त्राणा मध्ययनाध्यापने प्रणव जपो वा।" वेदादि सत्य शास्त्राणामध्ययना ध्यापने प्रणव जपो वा।" दयानन्द।

अर्थात् मोक्ष विद्या विधायक वेदशास्त्र का पढ़ना पढ़ाना और ओंकार के विचार से ईश्वर का निश्चय करना कराना।

"स्वाध्यायाद् योगमासीत्, योगात्स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याय योग सम्पत्या, परमात्मा प्रकाशते॥" व्यास भाष्ये
"स्वाध्यायान्मा प्रमद।
स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।"
तैत्तिरीयोपनिषद्. ब्रहमानन्द।
"स्वाध्यायेनास्त्यनध्यायो ब्रहमसत्रं हि तत् स्मृतम्।" मनुः
"स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतःशुचिः।
तस्य नित्यं क्षरत्येष पयोदधिघृतं मधुः॥" मनुः २।१०७
"स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।" गीता १७।१५
स्वाध्यायस्य फलमाह = "स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः।"

साधनपाद सूत्र ४४

(स्वाध्यायात्) स्वाध्याय से (इष्ट देवता संप्रयोगः) इष्ट देवता की भली भाँति प्राप्ति साक्षात्कार हो जाती है। इष्ट देवता परमात्मा देवाः ऋषयः सिद्धाश्च

स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति। कार्ये चास्य वर्त्तन्त इति। व्यास भाष्य। स्वाध्यायशील पुरुष को देवता ऋषियों के दर्शन प्राप्त होते हैं और इस योगी के कार्य में प्रवृत्त होते हैं।

ईश्वर प्रणिधान = तस्मिन् परं गुरौ सर्वकर्मार्पणम्। व्यास। परम गुरवे परमेश्वराय सर्वास्मादि द्रव्य समर्पणम्। दयानन्दः। अर्थात् ईश्वर की भक्ति विशेष, सर्व कर्मों को उसके समर्पण करना ईश्वर प्रणिधान है। अथवा ईश्वर के शरणापन्न हो जाने का नाम ईश्वर प्रणिधान है।

"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥"

गीता ९।२७

"शय्यासनोऽथ पथि व्रजन् वा, स्वस्थः परिक्षीण वितर्कजालः।
संसारबीज क्षयमीक्षमाणः स्यान्नित्ययुक्तोऽमृतभोगभागी॥"

व्यास

ईश्वर प्रणिधानस्य फलमाह—"समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्।"

योग साधनपाद सूत्र ४५

(ईश्वर प्रणिधानात्) ईश्वर प्रणिधान से (समाधि सिद्धिः) समाधि से प्रज्ञात योग की सिद्ध होती है भवति इति शेषः।

"ईश्वरार्पित सर्वभावस्य समाधिसिद्धि र्यया सर्वमीप्सित मवितथ जानाति देशान्तरे देहान्तरे कालान्तरे च। ततोऽस्य प्रज्ञा यथाभूतं जानातीति।"

इत्युपासनाया पञ्च नियमा द्वितीयमङ्गम्। यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः। यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भज। मनुः

(३) आसन

"स्थिरसुखमासनम्।" योग दर्शन, साधनपाद, सूत्र ४६

(स्थिर सुखं) जो स्थिर और सुखदायी हो। (आसनम्) वह आसन है। अर्थात् जिसमें सुखपूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हो उसको आसन कहते हैं। आस्यतेस्मिन्नित्यासनम्। भाव यह है कि जिस रीति से स्थिरतापूर्वक बिंना हिले-डुले और सुखपूर्वक बिना किसी कष्ट के दीर्घकाल तक बैठ सके वह आसन है।

तद्यथा—पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकं, दण्डासनं, सोपाश्रयं पर्यङ्कं, क्रौञ्चनिषदनं, हस्तिनिषदनं, उष्ट्रनिषदनं, समसंस्थानं, स्थिर सुखं, यथासुखं चेत्येवमादीनि। सिद्धासन मुख्य है।

इसके अतिरिक्त जिस पर बैठकर साधन किया जाता है उसका नाम भी आसन है। वह भी स्थिर और सुखदायी होना चाहिए।

"शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमानसमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिन कुशोत्तरम्॥"

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यत चित्तेन्द्रिय क्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये ॥ गीता ६ ।११-१२
"एकान्ते विजने देशे पवित्रे निरुपद्रवे ।
कम्बलाजिन वस्त्राणामुपर्यासनमभ्यसेत् ॥"
"आसीनः सम्भवात् । अचलत्वं चापेक्ष्य ।
यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् वेदान्तसूत्राणि ४ ।१ ।७-८-९

आसन जयस्यफलमाह—"ततो द्वन्दानभिघातः ।" २ ।४८

(ततः) उससे, आसन की सिद्धि से (द्वन्दानभिघातः) द्वन्दों शीत, उष्ण, भूख-प्यास आदि का आघात नहीं लगता । अर्थात् आसन की सिद्धि हो जाने पर साधक के शरीर पर सरदी-गरमी, भूख-प्यास आदि का प्रभाव नहीं पड़ता । इनके सहन की सामर्थ्य हो जाती है ।

"शीतोष्णादिभिर्द्वन्दैरासन जयान्नाभिभूयते ।" व्यास भाष्य

(४) प्राणायाम

प्राणायामः—प्र उपसर्ग पूर्वक 'अण् प्राणने'—धातु से प्राण शब्द बना । प्रणिति जीवति येन बहुकालमिति प्राणः । आयम्यते संयम्यते येन सः प्राणायामः ।

तस्मिन् सति श्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः । साधन सूत्र. ४९

(तस्मिन् सति) उस आसन के स्थिर हो जाने पर (श्वास प्रश्वासयो.) श्वास प्रश्वास की (गतिविच्छेदः) गति का अवरोध होना, गति का रुक जाना (प्राणायामः) प्राणायाम है ।

"सत्यासन जये बाह्यस्य वायो राचमनं श्वासः, कोष्ठस्य वायोःनिःस्सारणं प्रश्वासः तयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः ।"

प्राणः = प्राणवायु + आयामः = विस्तार ।

अर्थात् आसन के जय हो जाने पर बाह्य वायु का नासिका द्वारा भीतर लेना 'श्वास' और जो कोष्ठ फुप्फुस में स्थित भीतर की वायु का निकालना है उसको प्रश्वास कहते हैं । इन दोनों की गति रोकना प्राणायाम है ।

"आसने सम्यक् सिद्धे कृते बाहयाभ्यन्तर गमन शीलस्य वायोर्युक्त्या शनैः शनैरभ्यासेन जयकरणमर्थात् स्थिरीकृत्य गत्याभाव करणं प्राणायामः ।" दयानन्दः

प्राणायाम के तीन भेद (रेचक, पूरक, कुम्भक)

"स तु बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकाल
संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ।" साधन. ५०

(स तु) वह तो उक्त प्राणायाम (बाह्याभ्यन्तर स्तम्भवृत्तिः) बाह्यवृत्तिः, आभ्यन्तरवृत्तिः, और स्तम्भवृत्तिः ऐसे तीन प्रकार का होता है तथा वह (देशकाल संख्याभिः) देश काल और संख्या द्वारा (परिदृष्टः) भलीभाँति देखा जाता हुआ नापा हुआ ।(दीर्घ सूक्ष्मः भवति) लम्बा और हल्का होता है ।

बाह्यवृत्तिः

यत्र प्रश्वास पूर्व को गत्याभाव: स बाह्यः। रेचक प्राणायाम।

"उत्क्षिप्यवायु माकाशं शून्यं कृत्वा निरात्मकम्।
शून्य भावेन युञ्जीयात् रैचकस्येति लक्षणम्॥"

प्राणिनां सर्वतो वायुः चेष्टां बर्द्धयते प्रथक्। प्राणनाच्चैव भूतानां प्राण इत्यभिधीयते।

आभ्यन्तरवृत्तिः

यत्र श्वास पूर्वको गत्याभाव: स आभ्यन्तमः।पूरक प्राणायाम।

"वक्त्रेणोत्पल नालेन तोयमाकर्षयेन्नरः।
एवं वायुर्गृहीतव्यः पूरकस्येति लक्षणम्॥"

स्तम्भवृत्तिः

तृतीयस्तम्भवृत्ति र्यत्रोभयाभाव:। कुम्भक प्राणायाम।

"नोच्छवसेन्न च निः श्वसे न्नैव गात्राणि चालयेत्।
एवं तावन्नियुञ्जीत, कुम्भकस्येति लक्षणम्॥"

जब यह तीनों प्राणायाम देश काल और संख्या के द्वारा परीक्षित हुए बृद्धि को प्राप्त होते हैं तब इनका नाम दीर्घ सूक्ष्म होता है। इन प्राणायामों से साधक का चित्त निर्मल होकर उपासना में स्थिर हो जाता है। आगे प्राणायाम का फल कथन करते हैं—

"ततःक्षीयते प्रकाशावरणम्।" साधन सूत्र ५२

(ततः) उस प्राणायाम के अभ्यास से (क्षीयते) क्षीण हो जाता है नष्ट हो जाता है। (प्रकाशावरणम्) प्रकाश ज्ञान का आवरण।

"तपो न परं प्राणायामात् ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य।"

"दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते, दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥"

मनुः ४

प्राणायाम का दूसरा फलः—

"धारणासु च योग्यता मनसः।". साधन ५३

(च) और- तथा (धारणासु) धारणाओं, (मनसः) मन की (योग्यता) योग्यता भी हो जाती है। अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से मन में धारणा की योग्यता भी आ जाती है। यानि उसे चाहे जिस जगह अनायास ही स्थिर किया जा सकता है।

(५) प्रत्याहार

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्थ स्वरूपानुकारइवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ।

साधन. सू. ५४

(स्व विषय) अपने विषयों के साथ (असम्प्रयोगे) सम्बन्ध न होने पर (इन्द्रियाणां) इन्द्रियों का (चित्तस्य स्वरूपानुकारः इव) चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाता है वह (प्रत्याहारः) प्रत्याहार कहलाता है । प्रत्याहार का अर्थ है—

पीछे हटना, उल्टा होना, विषयों से विमुख होना ।

इन्द्रियाणि विषयेभ्यः प्रतीपमाह्रियन्तेऽस्मिन्निति प्रत्याहारः ।

"इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः ।
बलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते ।।"

"इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।।"

मनुः ६ ।६०

"इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ।।" मनुः २

"इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
संन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ।।" मनुः २

"यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।।"

गीता ६ ।२६

"आपदां कथतः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः ।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम् ।।" महाभारत.

प्रत्याहारस्य फलमाह = प्रत्याहार का फल—

"ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ।" साधन. सूत्र ५५

(ततः) उससे प्रत्याहार से, (इन्द्रियाणां) इन्द्रियों की (परमा) परम, सबसे उत्तम, उत्कृष्ट, (वश्यता) वशीकरण भवति इति शेषः हो जाती है । प्रत्याहार के सिद्ध हो जाने पर साधक की इन्द्रियाँ उसके सर्वथा वश में हो जाती हैं ।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार इन पाँचों को योग का बहिरङ्ग साधन माना जाता है तथा धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन योग के अन्तरङ्ग साधन माने जाते हैं अब अन्तरंग साधनों का वर्णन करते हैं ।

(६) धारणा

"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।" विभूति पाद सूत्र ?

(चित्तस्य) चित्त का, (देशबन्धः) देश विशेष में स्थिर करना-बाँधना (धारणा) धारणा कहलाती है। अर्थात् चित्तवृत्ति का देश विशेष में बाँधना-रोकना धारणा कहलाती है।

"नाभिचक्रे हृदय पुण्डरी के मूर्ध्नि ज्योतिषि नासिकाग्रे जिह्वाग्र इत्येव मादिषुदेशेषु बाह्ये वा विषये चित्तस्यवृत्ति मात्रेण बन्ध इति धारणा व्यासभाष्यः।"

धारणा = धृ + णिच् + युच्। आत्मा में मन की स्थिरता।

धारणा उसको कहते हैं कि मन को चंचलता से छुड़ाकर नाभि, हृदय, मस्तक, नासिकाग्र, जिह्वाग्र आदि देशों में स्थिर करके ओंकार का जप और उसका अर्थ जो परमेश्वर है उसका सम्यक् विचार करना। —दयानन्दः

(७) ध्यान

"तत्र प्रत्ययैक तानता ध्यानम्।" विभूति पाद सूत्र २

(तत्र) वहाँ, उस प्रदेश में, ध्येय पदार्थ में, ध्येय विषय में (प्रत्ययैकतानता) चित्तवृत्ति का एकतार चलना, एक सा बना रहना (ध्यानम्) ध्यान है। "ध्यानं निर्विषयं मनः।" सांख्य "रागोपहतिर्ध्यानम्।" बकोध्यानम् बक्वद् ध्यायेत।

"देशबन्धस्तुचित्तस्य धारणेति प्रकीर्तिता।
ध्यान शब्देन सा ज्ञेया या प्रत्ययैकत्तानता॥"
स्वदेहमरणि कृत्वा प्रणवं चोत्तरा रणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत्॥"
"सर्व द्वाराणि संयम्य मनोहृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योग धारणाम्॥" गीता ८।१२

सच्चिदानन्द स्वरूप, अन्तर्यामी, सर्वव्यापक जगदीश्वर के प्रकाश और आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेम भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना किन्तु उसी के ध्यान में मग्न रहना। इसी का नाम ध्यान है। —दयानन्दः

"ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति, केचिदात्मानमात्मनः।
अन्ये साँख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥" गीता १३।२४

(८) समाधि

"तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः।"

विभूतिपाद सूत्र ३

सम्यगाधीयत एकाग्री क्रियते विक्षेपान्परिहृत्य मनो यत्र स समाधिः। ध्यानमेव ध्येयाकार निर्भासं प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेण शून्यमिव यदा भवति ध्येय स्वभावा वेशात्तदा समाधिरित्युच्यते। "व्यासभाष्य" ध्यान समाध्योरयं भेदः। ध्याने मनसो ध्यातृ ध्यान ध्येयाकारेण विद्यमाना वृत्तिर्भवति। समाधौ तु परमेश्वर स्वरूपे तदानन्दे च मग्नः स्वरूप शून्य इव भवति।

ध्यान और समाधि में इतना ही भेद है कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला, जिस मन से, जिस चीज का ध्यान करता है वे तीनों विद्यमान रहते हैं। परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर के ही आनन्द स्वरूप ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है। वहाँ तीनों का भेदभाव नहीं रहता। जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्निरूप हो जाता है, इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय होके अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जानके, आत्मा को परमेश्वर के प्रकाश स्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण करने को "समाधि" कहते हैं।

(तदेव) वह ध्यान ही, (अर्थमात्रनिर्भासं) अर्थमात्र निर्भास हो जिसमें अर्थात् ध्येय मात्र ही भासित हो जिसमें, अर्थमात्र से भासने वाला, (स्वरूप शून्यमिव) स्वरूप से शून्य जैसा चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाना जिसमें इस समान गति को (समाधिः) समाधि कहते हैं।

"मनसो वृत्ति शून्यस्य ब्रह्माकारतया स्थितिः।
योऽसम्प्रज्ञातनामा सौ समाधिरभिधीयते।।"

ध्यान करते करते, जब ध्याता ध्यान करने वाले योगी का चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है। उसके अपने स्वरूप का अभाव सा हो जाता है। उसकी ध्येय से भिन्न उपलब्धि नहीं होती। उस समय उस ध्यान का ही नाम "समाधि" हो जाता है।

"सलिले सैन्धवं यद्वत् साम्यं भवति योगतः।
तथात्म मनसोरैक्यं समाधि रित्यभिधीयते।।"
"धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्धयीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा, लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्यविद्धि।।"
"प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्षमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।"

मुण्डक.

यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।
तमेवैकं जानथ (ध्यायथ) आत्मान मन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः।"

मुण्डक.

"समाधि निर्धूत मलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते॥"

"सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता॥" तैत्तिरीयोपनिषद्

"बुद्ध्या विशुद्धयायुक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥"
विविक्तसेवी लघ्वाशी यत वाक्काय मानसः।
ध्यान योग परोनित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥"

गीता १८।५१-५२-५३

संयम का लक्षण

"त्रयमेकत्र संयमः।" योग. विभूतिपाद सूत्र ४

(त्रयं) धारणा, ध्यान, समाधि-इन तीनों का (एकत्र) किसी एक विषय में, किसी एक ध्येय विषय में, (संयम) संयम कहलाता है। संयम है।

"तदेतत् धारणाध्यान समाधिः त्रयमेकत्र संयमः। एक विषयाणि त्रीणि साधनानि संयमः इत्युच्यते, तदस्य त्रयस्य तान्त्रिकी परिभाषा 'संयम' इति।" व्यास

तस्य फलमाह = संयम की सिद्धि का फलः—

"तज्जयात् प्रज्ञालोकः।" विभूति पाद सूत्र-५

(तत् जयात्) उस संयम के सिद्ध होने से (प्रज्ञा) समाधि प्रज्ञा का (आलोकः) प्रकाश होता है। अर्थात् विवेक ख्याति रूप प्रज्ञा की प्राप्ति होती है।

"तस्य संयमरूप जयात् समाधि प्रज्ञाया भवत्यालोको।
यथा यथा संयमः स्थिरपदो भवति तथा तथेश्वर प्रसादात् समाधि प्रज्ञा विशारदी भवति।" व्यास भाष्य।

तस्योपयोग माह = संयम का विनियोग बतलाते हैं—

"तस्य भूमिषु विनियोगः।" विभूतिपाद सूत्र ६

(तस्य) उस संयम का (भूमिषु) भूमियों में, चित्तभूमि में (विनियोगः) विनियोग करना उपयोग लेना चाहिए।

"योगेन योगो ज्ञातव्यो, योगो योगात् प्रवर्त्तते।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन, सं योगे रमते चिरम्॥"

अर्थात् योगेन बहिरङ्ग योगसाधनों से योग अन्तरङ्ग साधनों को जानना सिद्ध करना चाहिए। योग से योग प्राप्त होता है। जो प्रमाद रहित हैं वह तो योग के द्वारा योग में चिर काल तक रमण करते हैं।

गीतामृतम्

(समत्वभाव प्राप्त करो) समदर्शी बनो।

"आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥" ६।३२

(आत्मौपम्येन्) आत्मनः स्वस्य उपमा आत्मोपमा तस्या भाव आत्मौपम्यं तेन आत्मौपम्येन स्व सादृश्येन इत्यर्थः। (सर्वत्र) सर्वभूतेषु। सर्व प्राणिमात्रे। सर्व प्रकारेण। कायेन मनसा वाचा वा। सर्वावस्थाया। सुखं वा यदि वा दुःखं (समं पश्यति) यथा सुखं मम प्रियं दुःखं चाप्रियं तथा अन्येषामपि क्वचित् कदाचित् कथंचिदपि अनिष्टं न करोति। (हे अर्जुनः ! स योगी) स ब्रहमविद्यति। स आत्मज्ञानी। (परमः मतः) श्रेष्ठः, उत्कृष्टः, मम अभिमत इत्यर्थः। ज्ञानिनां सर्वेषां उत्तम इति ममभिमत इत्यर्थः।

भावार्थ--यः पुरुषः आत्मौपम्येन स्व सादृश्येन यथा मम सुखं प्रियं दुःखं चाप्रियं तथान्येषामपि सर्वत्र समं पश्यति सुखमेव सर्वेषां काञ्छति न तु कस्यापि दुःखं स योगी सर्वेषां योगिनां मध्ये परम श्रेष्ठो मे मम मतः अभिमतः।

अहिंसा परमो धर्मः। "हिंसा का मन, वंचन, कर्म से त्याग। कृतकारिता अनुमोदिता।

"प्राणा यथात्मनोऽभीष्टाःभूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधरः ॥"

"पुण्यस्य फल मिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः ॥"

"विद्याविनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥" गीता ५।१८

"यथैवात्मा परस्तद्वत् दृष्टव्यः सुखमिच्छता।
सुखदुःखानि तुल्यानि यथात्मनि तथापरे ॥"

दक्षस्मृति अ. ३

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेभ्यो यदि नेच्छसि।
परेषां प्रतिकूलेभ्यो निवर्त्तय ततो मनः ॥"

"मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥" चाणक्य.

"श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥" मनुः

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानु पश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।।" ईशोप. ६
"आत्मा देहे धृतौ जीवे स्वभावे परमात्मनि ।" इति विश्व :

जैसे मनुष्य अपने मस्तक (शिर) हाथ, पेट और पैर के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का सा वर्ताव करता हुआ भी उनमें आत्मभाव अर्थात् अपनापना समान होने से सुख और दुःखों को समान ही देखता है वैसे ही सब भूतों में अपनी सादृश्यता से सम देखना है ।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृतः ।
अरु तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।" यजुः ३१ ।११

"हते ह ॐह मा मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे, मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥" यजुः ३६

"समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनाऽत्मानं ततो याति परां गतिम् ।।" गीता १३ ।२८

आत्मोद्धार कैसे हो ?
(आत्मिक कल्याण का उपाय)

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु रात्मैव रिपुरात्मनः ।।" गीता ६ ।५

(आत्मना) विवेक युक्तेन मनसा । ज्ञान युक्त मन से (आत्मानं) स्वं जीवं संसार समुद्रे निमग्नं तत् समुद्धरेत् । (उद्धरेत्) उत् ऊर्ध्वं हरेत् विषयासङ्ग परित्यागेन ऊर्ध्वं नयेत् ।विषय विषपूर्णे संसारार्णवे निमग्नं जन्ममृत्यु जरादि दुःखेन हतोऽस्मीत्याक्रोशन्तं आत्मानं स्वात्मना श्रद्धा भक्ति समाराधित परमेश्वर प्रसादवता सदसद्विवेक वैराग्य शमादि साधनवता श्रवणादि समुत्पन्नात्मज्ञानवता स्वेनैवोद्धरेत् । विषयासक्त्या संसारे पतन्तं दोष बुद्धया तत् परित्यागेन ऊर्ध्वं नयेदित्यर्थः । पुमर्थभाजनं कुर्यात् (आत्मानं न अवसादयेत्) आत्मानं जीवं न अवसादयेत् न क्लेश भाजनं कुर्यात् । न अवसादयेन्नाधः पातयेत् । विषयासक्त्या संसार समुद्रे न मज्जयेत् । अपने आप को अधोगति में न पहुँचावे ।(हि आत्मा एव आत्मनः बन्धुः) आत्मैव यस्मात् हि मन एव ।क्योंकि अपना मन ही । आत्मनः स्वस्य बन्धुर्हितकारी संसारादुद्धारकः नान्यः कश्चन पुत्रादि भ्रात्रादिर्वा ।(आत्मा एव आत्मनः रिपुः) आत्मनः स्वस्य आत्मा मन एव रिपु रहितकारी शत्रुनार्न्यः । यथा रोगी जिह्वा दोषवेगवशगो भूत्वा स्वारोग्य प्रतिकूलमपथ्यं भुक्त्वा स्वं स्वयमेव नाशयति तद्वत् ।

(नट नटनी कथा) रात घड़ी भर रह गई, थाके पंजर हाथ ।
कह नटनी सुन नायक, मृदुला ताल बजाय ॥
नट का उत्तर— बहुत गई थोड़ी रही, यह भी बीती जाय ।
तालभंग मत हुजियो, कुलै दाग लगि जाय ॥

कथं तरेयं भवसिन्धुमेतं ? का वा गति में ? कतमोऽस्त्युपाय:।

भावार्थ—मनुष्य को चाहिए कि अपने मन द्वारा अपना संसार समुद्र से उद्धार करे और अपनी आत्मा को अधोगति में न पहुँचावे। क्योंकि यह मन ही तो अपना मित्र है और मन ही अपना शत्रु है।

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मन: ॥" याज्ञवल्क्य.

के शत्रव: सन्ति ? निजेन्द्रियाणि।
तान्येव मित्राणि जितानि यानि। शंकराचार्य:

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेष क्षयेण च।
अहिंसया च भूताना ममृतत्वाय कल्पते ॥

"वाचं यच्छ मनो यच्छ यच्छ प्राणेन्द्रियाणि च।
आत्मानमात्मन: यच्छ न भूय: कल्पसेऽध्वन: ॥"

"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता:।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जना: ॥" यजु: ४०।३

"वाचं ते शुन्धामि, नाभिं ते शुन्धामि, मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि, चरित्रांस्ते शुन्धामि।" यजु: ६।१४

"इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्।
येनैव संसृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु न: ॥" अथर्व.

"त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मन:।
काम: क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥" गीता १६।२१

"इन्द्रोजयाति न परोजयात:। इन्द्र = मन" "मन के हारे हार है मन के जीते जीत।"

प्रभु को आत्मसमर्पण करो

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ गीता ९।२७

(कौन्तेय) हे कुन्तीप्रत्र। त्वं हे अर्जुन तू। (यत् करोषि) शास्त्र दृष्ट्या यल्लौकिकं वैदिकं कर्म करोषि। नित्यं नैमित्तिकं कर्म अथवा वर्णाश्रम धर्मानुसारेण यत् किञ्चित् कर्म करोषि।(यदश्नासि) यद्देहधारणार्थं अश्नासि। (यज्जुहोषि) वैदिकं होमकर्मं करोषि। अग्निहोत्रादिकं कर्म. (ददाति येत) यच्च पात्रेभ्य: धन धान्यादिकं प्रयच्छसि। अतिथिर्ब्राह्मणादिभ्योन्नहिरण्यादिकं ददासि। (यत्तपस्यसि) सन्ध्या वन्दनादि, वेदाध्ययनादि, व्रतोपवासादिकं वा तप: करोषि। तपो धर्माचरणम्। (तत् मदर्पणं कुरुष्व) तत् लौकिकं वैदिकं सर्वं कर्म मदर्पणं ब्रह्मार्पणं कुरुष्व। ब्रह्मार्पण

बुद्धयैव सर्वं कर्म कुरुष्वेत्यर्थः ईश्वरप्रेरणया तदर्थमेव सर्वं कर्म करोमीति बुद्धया मयि अपर्ण मदर्पणं यथाभवति तथा कुरुष्व। अर्प्यत इति अर्पणम्।

भावार्थ—हे अर्जुन। जो तू लौकिक वैदिक कर्म करता है। जो खाता है, जो हवन यज्ञादि करता है जो दान-पुण्य करता है, जो स्वधर्मानुचरण रूप तप करता है, वह सब ईश्वरार्पण बुद्धि से कर।

"वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
तद्धि कुर्वन् यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम्॥" मनुः ४।१४

"नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायोह्यकर्मणः।
शरीर यात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः॥" गीता ३।७

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेऽतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥" यजुः ४०।२

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्माते संगोऽस्त्व कर्मणि॥"
गीता २।४७

"ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्र्मिवाम्भसा॥" गीता ५।१०

"संगः फलाभिलाषस्तं त्यक्त्वा श्रद्धया भक्त्या नित्यं नैमित्तिकं च कर्म यः करोति स मदभक्तः पापेन बन्धकेन यथा पापं जन्मादि बन्धकारणं तथा पुण्यमपि जन्मादि बन्ध कारणमेव भवति तेन व लिप्यते पद्मपत्रमम्भसा यथा तथा मद्भक्तः न लिप्यत इत्यर्थः।

"सर्व कर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद् व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥" गीता १८।५६

"त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति।" छान्दोग्य.

"यज्ञदान तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥" गीता १८।५

"एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मत मुत्तमम्॥" गीता १८।६

"तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥" गीता ३।१९

भोगों से दुःख की प्राप्ति होती है।

"ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःख योनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥" गीता ५।२२

भावार्थ—ये जो इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषों को सुख रूप भासते हैं, तो भी निःसन्देह दुःख के ही हेतु हैं और आदि अन्त वाले अर्थात् उत्पत्ति विनाश वाले अनित्य हैं। इसलिए हे अर्जुन ! विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।

(ये संस्पर्शजा) इन्द्रियाणां विषयाणाञ्च संस्पर्शः परस्पर संयोगः तस्मादेव जायन्त इति संस्पर्शजा। इन्द्रियों का विषयों के साथ सम्बन्ध होने से उत्पन्न होने वाले जो (भोगाः) विषय सुखानि। क्षुद्रसुखलवानुभवाः। (ते एव हि) वे सभी विषय सुख निश्चय से ही।(दुःख योनयः) परिणामे दुःख हेतवो भवन्ति। दुःख के कारण होते हैं। फिर वह कैसे हैं ? (आद्यन्तवन्तः) उत्पत्ति विनाशवन्तः। आदि और अन्त वाले हैं। आदिः विषयेन्द्रिय संयोगोन्तश्च तद्वियोग एव तौ विद्यते येषां ते आद्यन्तवन्तः। भोगेरोगभयम्। भर्तृहरिः। (कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र अर्जुन। (तेषु बुधः न रमते) तेषु भोगेषु बुधः विवेकी ज्ञानी न रमते। प्रतिकूल वेदनीयत्वान्न प्रीतिमनुभवति। कुतः ? अत्यन्त मूढ़ाना मेव हि विषयेषु रतिः दृश्यते यथा पशु प्रभृतीनाम्॥

"परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुण वृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।" योगदर्शन साधनपाद सूत्र 15

परिणामश्च तापश्च संस्कारश्च त एव दुःखानि तैरित्यर्थः। इत्थंभूत लक्षणे तृतीया। परिणाम ताप संस्कारदुःखैः।

कामाः काम्यन्तो अभिलष्यन्त इति कामाः। कामो नाम भोगाभिलाषः। "स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेषु वा। परस्परकृतः। स्नेहः काम इत्यमिधीयते। आयुर्वेद सार्ङ्गधर।

"न कामांश्चरेत्। तद्वाह कामवशया विनष्टो तद्यथा देव राजश्चाहिल्यां रावणश्च सीतामतिबलश्च कीचको द्रौपदीम्।" —कामसूत्र।

"विषयेन्द्रिय संयोगात् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥" गीता १८।३८

"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥" मनुः २।९४

"इन्द्रियाभ्यामजय्याभ्यां द्राभ्यामेव हतं जगत्।
अहो उपस्थ जिह्वाभ्यां ब्रह्मादिमशकावधिः॥" मनुः २

"इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
संन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥" मनुः २।९३

द्वापर युग में चन्द्रवंशीय राजा नहुष के पुत्र ययाति हुए। उन्होंने एक हजार वर्ष तक भोगों को भोगा। पर तृप्त न हुए, अन्त में यही कहा—न जातु कामः कामानां।

कीचक सैरन्ध्री की कथा महाभारत के विराट् पर्व में आती है। कीचक महाराजा विराट् का साला और सेनापति था। सैरन्ध्री पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी। पाण्डव लोग जब एक वर्ष के अज्ञातवास में मत्स्य देश के राजा विराट् के यहाँ रहे। राजा विराट् वृद्ध एवं निस्सन्तान था। उसकी रानी सुदेष्णा। पुत्री उत्तरा। रानी का भाई कीचक। गुप्त नाम पाण्डवों के जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन, जयद्बल। युधिष्ठिर कंक बने। भीम बल्लभ। अर्जुन वृहन्नला नकुल ग्रन्थिक सारथि। सहदेव तन्तिपाल ग्वाले का वेष। चौथे मास में विराट् नगर में दंगल हुआ उसमें भीम ने जीमूतवाहन पहलवान को पछाड़ा। कीचक का वध किया।

काम क्रोध का त्याग—भोगों के त्याग से ही सुख मिलता है। स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेषु वा। परस्पर कृतस्नेहः काम इत्यभिधीयते। कामो नाम विषय भोगेच्छा वेगः।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीर विमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥ गीता ५।२३

(यः नरः) जो पुरुष (इह एव) इसी जन्म में ही। (शरीर विमोक्षणात् प्राक्) शरीर छोड़ने से पहले अर्थात् जीविता वस्था में ही मृत्यु पर्यन्त।(काम क्रोधोद्भवं वेगं) काम और क्रोध से उत्पन्न हुए वेग को।(सोढुं शक्नोति) सहन करने में समर्थ होता है।(सः युक्तः) वही योगी है, वही इन्द्रियजित् है।(सः सुखी) वही सुखी है। अर्थात् सच्चे सुख का अधिकारी है।

भावार्थ—जो मनुष्य मननशील साधक, इस मनुष्य का जन्म पाकर इसी जन्म में, शरीर नाश होने से पहले ही मरणपर्यन्त, काम, क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग को सहन करने में समर्थ होता है वही योगी है। वही सुखी है।

कामः—कामो नाम सङ्गस्य विपाक दशा। पुरुषो यां दशा मपन्नेः विषयानभुक्त्वा स्थातुं न शक्नोति स कामः।

"शरीर स्थिति हेतुत्वादाहार सधर्माणो हि कामः।" कामसूत्र
कामः सर्वात्मनाः हेयः स चेत्युक्तं न शक्यते।
स स्वदारासु कर्त्तव्यः स्वदाराः परमौषधम्॥ कामसूत्र
"न पश्यति हि जन्मान्धो कामान्धो नैव पश्यति।
न पश्यति च मदोन्मत्तो ह्यर्थी दोषं न पश्यति॥"

रोमाञ्च हृष्टनेत्र वदनादि लिङ्गः अन्तःकरण प्रक्षोभ रुपः कामोद्भवो वेगः गात्रकम्प प्रस्वेद् संदष्टौष्ठपुररक्त नेत्रादि लिङ्ग क्रोधोद्भवो वेगः। कामः भोगेच्छा वेगः।

क्रोधः स्व परापकार प्रवृत्ति हेतुरभिज्वलनात्मकोऽन्तःकरण वृत्ति विशेषः।" क्रुधि हिंसायाम्"—धातु से। अथवा परा-पकारकरण हेतु बुद्धिः विशेषः।

मनः प्रक्षोभको यो द्वेष परिपाकः स क्रोधः।

"बड़े भाग मानुष तन पावा। सुरदुर्लभ सद्ग्रन्थिन गावा।।
साधन धाम मोक्षकर द्वारा। पायन जेंहिं परलोक संवारा।।"
"त्रिविधं नर कस्वेदं द्वार नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं जयेत्।।"गीता १६।२१
"प्राणे गते यथा देहः दुःखं सुखं न विन्दति।
तथा चेत् प्राणयुक्तोऽपि स कैवल्याश्रये वसेत्।।"
"कामं क्रोधं मदं मोहं मात्सर्यं लोभमेव च।
अमून् षड् वैरिणो जित्वा सर्वत्र विजयी भवेत्।।" बुद्धोपदेश।
"काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पन्थ।
सब परिहरि रघुवीर पद भजहु कहहिं सदग्रन्थ।।"

विभीषण ने रावण से कहा—रामायण सुन्दर काण्ड साधु और डाकू की कथा—३ पत्थर लेकर पहाड़ पर चढ़ो।

"कान्ता कटाक्ष विशिखा न लुनन्ति यस्य, चित्तं न निर्दहति कोपकृशानु तापः।
कर्षन्ति भूरि विषयाश्च न लोभ पाशैः, लोकत्रयं जयति स कृत्स्नमिदं स धीरः।।" भर्तृहरिः नीतिः।

"मत्तेभ कुम्भ दलने भुवि सन्ति सूराः, केचित् प्रचण्ड मृगराज वधेऽपि दक्षाः।
किन्तु ब्रवीमि वलिनां पुरतः प्रसह्य कंदर्प दर्प दलने विरला मनुष्याः।।" भर्तृहरिः।

"शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वीर मनोजबाणै र्व्यथितो न यस्तु।"
कीचक सैरन्ध्री कथा, महाभारत विराट् पर्व.।

"काम क्रोध मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।"
जिनके कपट दम्भ नहिं माया। तिनके हृदय वसहुँ रघुराया।।
सबके प्रिय सबके हितकारी। दुःख सुख सरिस प्रशंसागारी।।
कहहुँ सत्य प्रिय वचन विचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी।।
तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहुँ तिनके मन माहीं।।
जननी सम जानहिं पर नारी। धन पराय विष ते विष भारी।।
जे हरषहिं पर सम्पत्ति देखी। दुःखित होहिं पर विपत्ति विशेषी।।
जिन्हहिं राम तुम प्रान पियारे। तिन्हके मन शुभ सदन तुम्हारे।।

सच्चा मुनि (सन्त) कौन ?

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभय क्रोधः स्थित धीर्मुनिरुच्यते।।" गीता २।५६

भावार्थ—आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों प्रकार के दु:खों के प्राप्त होने पर जिसका मन उद्विग्न अर्थात् क्षुभित नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में जिसकी स्पृहा तृष्णा इच्छा नष्ट हो गई है। अर्थात् सुख की भी इच्छा न करने वाला और जिसकी राग विषयों में प्रीति आसक्ति, भय उन विषयों के नाश हो जाने से भीति, क्रोध उन विषयों की प्राप्ति में विघ्न उपस्थित हो जाने पर जो चित्त का अत्यन्त रुष्ट हो जाना इत्यादि इन राग, भय, क्रोध से रहित हो जाना इन गुणों में स्थिर बुद्धि वाला मुनि कहलाता है।

(दु:खेष्वनुद्विग्नमना:) दु:खेषु दु:ख प्रापकेषु आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकेषु प्राप्तेषु सत्सु न उद्विग्नं प्रक्षुभितं मनो यस्य स: दु:खेष्वनुद्विग्नमना:। प्रतिकूल वेदनीयं दु:खम्। शोक मोह ज्वर शिर: शूलादि आध्यात्मिकानि दु:खानि, सिंह सर्प चौरादि प्रयुक्तानि आधिभौतिकानि दु:खानि। अतिवात आतप वृष्ट्यादि हेतुकान्याधिदैविकानि दु:खानि। (सुखेषु विगत स्पृह:) सुखेषु सुखप्रापकेषु मिष्टान्न रसादिषु स्वयं प्राप्तेषु विगता विशिष्य निर्गत स्पृहा तृष्णा यस्य स:। दैवात्प्राप्तेषु सुखेष्वपि य: विगतस्पृहोऽनादर:। अनुकूल वेदनीयं सुखम्। (वीत राग भय क्रोध:) उपकारिणि राग: प्रीति:, अत्यन्तापकारिणि क्रोधोऽप्रीति:, आसन्ने मरण हेतौ भयं चैतत् त्रयं वीता विगता राग: च भयं च क्रोध: च यस्मात् स:। (स्थितधी:) एवं लक्षणो य: स स्थितधी: स्थितप्रज्ञ: सिद्ध इत्युच्यते, (मुनि:) आत्ममननशील: सन्यासी। विवेकिभि रिति शेष:।

मौनान्न स मुनिर्भवति नारण्य वसन्नान्मुनि:।
स्व लक्षणं तु यो वेद स मुनि: श्रेष्ठ उच्यते॥

महाभारत उद्योग अ. ४३

उदाहरण = महामुनि वशिष्ठ:।

"न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिर बुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थित:॥" गीता ५।२०

"यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
सम दु:खं सुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥" गीता २।१५

"यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वश:।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥" गीता २।५८

"विहाय कामान् य: सर्वान् पुमांश्चरति नि:स्पृह:।
निर्ममो निरहंकार: स शान्ति मधिगच्छति॥"
गीता २।७१

प्राणेगते यथा देह: सुखं दु:खं न विन्दति।
तथा चेत् प्राणयुक्तोऽपि स कैवल्याश्रमे वसेत्॥

"यस्य न विपदि विषादः सम्पदि हर्षो रणे न भीरुत्वम्।
तं भुवनत्रय तिलकं जनयति जननी सुतं विरलम्।।"
"आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य बनाय च।
न मया लक्षितस्तस्य खल्पोऽप्याकार विभ्रमः।।"
"प्रसन्नतां यो न गताभिषेकतस्तया न मम्लौ वनवास दुःखतः।
मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा।।"
"श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति न ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः।।"

मनुः

"सुखस्यानन्तरं दुःखं, दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
सुखदुःखे मनुष्याणां, चक्रवत् परिवर्त्ततः।।"
"दुःखी दुःखाधिकान् पश्येत् सुखी पश्येत् सुखाधिकान्।
आत्मानं हर्ष शोकाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत्।।"

प्रभुभक्ति किसकी सिद्ध होती है ?

"युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।"

गीता अ. ६ श्लोक १७

जिस पुरुष का आहार-विहार नियत अर्थात् नियमित है। कर्मों में यथायोग्य चेष्टा है और सोना-जागना भी जिसका नियमित है। उसका योग दुःखों को नाश करने वाला होता है।

आह्रियत इत्याहारोऽन्नं विहरणं विहारः पादश्रमः तौ युक्तौ नियत परिमाणौ यस्य तस्य। तथा स्वप्नो निद्रा अवबोधो जागरणं तौ युक्तौ नियत कालौ यस्य तस्य दुःखनाशको योगो निष्पन्नो भवतीत्यर्थः।

कुक्षेरन्नस्य द्वौ भागौ पानेनैकं प्रपूरयेत्।
आश्रयं पवनादीनां चतुर्थमवशेषयेत्।।" आर्युवेद
"द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तोयेनैकं प्रपूरयेत्।
वायोः संचारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्।।" वाग्भट्ट

क्यों खावें ?

"आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारणः।
स्मृत्यायुः शक्ति वर्णौजः सत्वशोभा विवर्धनः।।" चरकस्य

"प्राणिनां पुनर्मूलमाहरो बलवर्णौजसाञ्च। स षट्सु रसेष्वायत्तः। रस पुनर्द्रव्याश्रयाः। द्रव्याणि पुनरौषधयः।" सुश्रुते।

"हिताशी स्यान्मिताशीस्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः।
पश्यन् रोगान् बहून् कष्टान् बुद्धिमान् विषमाशनात्।।"

चरक.

हितभुक् मितभुक् ऋतभुक्।
"मात्राशीः सर्वकालं स्यात् मात्रा ह्यग्ने प्रवर्त्तिका।
मात्रा द्रव्याण्यपेक्षन्ते गुरुण्यपि लघून्यपि।।"
"गुरुणां मर्द्ध सौहित्यं लघूनां नातितृप्तता।
मात्रा प्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावत् विजीयति।।"

चरके.

आहार मात्रा पुनराग्नि बलापेक्षिणी। चरक सं.
"आहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्ध माहारं च प्राणं संधारणार्थम्।
प्राणाधार्याः तत्व जिज्ञासनार्थं तत्वज्ञेयं येन भूयो न दुःखम्।।"

उष्णं स्निग्धं मात्रावत् जीर्णे वीर्याविरुद्धं इष्टे देशे सर्वोपकरणं नातिद्रुतं नाति विलम्बितं अजल्पन्नह संस्तन्मना भुञ्जीत आत्मानमभि समीक्ष्य सम्यक्। चरक संहिता विमान स्थान अ. १

"त्रय उपस्तम्भा। आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्य्यमिति।" आयुर्वेद
आहियत इत्याहारोऽन्नम्। अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः
"अन्नेन जातानि जीवन्ति।
अद्यतेऽति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते।
"तच्च नित्यं प्रयुंजीत स्वास्थ्यं येनानुवर्त्तते।
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत्।।"

चरक.

"यदात्मसंमितमन्नं तदवति तन्न हिनस्ति।
यद् भूयो हिनस्ति तद्यद् कनीयो न तद्वति। शतपथ ब्रा.

"धर्मं भजस्व सततं त्यजभूतहिंसां सेवस्व साधुपुरुषान् जहि कामशत्रुम्। अन्यस्य दोष गुण कीर्तन माशु हित्वा सत्यं वदार्चय शिवं भज वासुदेवम्।" देहेऽस्थिमांस रुधिरे स्वमति त्यजस्व, जाया सुतदिषु सदा ममतां विमुञ्च। पश्यानिशं जगदिदं क्षणभंगुरं हि वैराग्य भाव रसिको भव योगनिष्ठः॥

इति माघमास स्नान माहात्म्ये त्रयोदशाध्याये श्लोकौ ३८-३९

देवाङ्गना काञ्चनमालिनी ने राक्षस को उपदेश दिया।

"उद्धरेदात्मनात्मानं" के लिए।

"उद्यानं पुरुष ते जावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।"

प्रभु भक्ति में विघ्न पड़ने के कारण

"नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतोनैव चार्जुन ।।" गीता ६ ।१६

भावार्थ—हे अर्जुन ! यह योग (भक्ति) न तो बहुत खाने वाले का सिद्ध होता है और न बिल्कुल न खाने वाले का तथा न अति शयन (निद्रा) करने के स्वभाव वाले का और न अत्यन्त जागने वाले का ही सिद्ध होता है ।

"अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चाति भोजनम् ।
अपुण्यं लोक विद्विष्टं तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ।।" मनुः २ ।५७

"अनात्मवन्तः पशुवद् भुञ्जते येऽप्रमाणतः ।
रोगानीकस्य ते मूल मजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि ।।" आयुर्वेद.

"कुक्षेरन्नस्य द्वावंशौ पाने नैके प्रपूरयेत् ।
आश्रयं पवनादीनां चतुर्थमवशेषयेत् ।।"

"निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम् ।
वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च ।।" चरके.

"निद्रा नु सेविता काले धातु साम्यमतन्द्रिताम् ।
पुष्टिः वर्णं बलोत्साह मग्नि दीप्तिं करोति हि ।।" आयुर्वेद

"यदात्मसंमित मन्नं तदवति तन्नहिनस्ति ।
यद् भूयो हिनस्ति तद्यद्कनीयो न तदवति ।।" शतपथ ब्रा.

"अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत किलासथ यत् सनवथ परुषम् ।।" यजुः

शरीर की अनित्यता

"अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ।" गीता ९ ।३३

अर्थः—हे अर्जुन ! तू सुख रहित और क्षणभंगुर इस मनुष्य शरीर को प्राप्त करके निरन्तर मेरा ही भजन कर, अर्थात् यह मनुष्य शरीर बड़ा दुर्लभ है परन्तु है नाशवान् और सुखरहित, इसलिए कल का भरोसा न करके तथा अज्ञान से सुखरूप भासने वाले विषय भोगों में न फँसकर निरन्तर मेरा ही भजन कर ।

(अनित्यं) नित्यो न भवतीत्यनित्यः । अनित्योनिश्चित स्वभावः । श्वः स्थास्यति इति विश्वसितुमयोग्य इत्यर्थस्तमनित्यम् । अथवा अनित्यं आशुविनाशिनं, क्षणभंगुरमित्यर्थः । अनित्य मित्ययेन कालान्तरे त्वद् भजनं करिष्यामि इति वारितम् । यदुक्तम्—श्वः कार्यमद्य कुर्वीत—इत्यादि । (असुखं) सुखरहितम् । दुःखैकनिदानम् । आध्यात्मिक आधिभौतिक, आधिदैविकत्वा दुःख स्वरूपम् । अथवा गर्भवास जन्ममरणद्यनेक दुःख बहुलम् । एतेन यदा स्वस्थता देहस्य तदैव मोक्षाय यतितव्य मित्यर्थः ।

"आधिव्याधि शतैर्जनस्य विवधैरारोग्यमुन्मूल्यते।"
"पुंस्याधिर्मानसी व्यथा, रोग व्याधिर्गदामयः।" चामरः
"यावन्नग्रसते रोगैर्यावन्नोपैति ते जरा।
यावन्न क्षीयते चायु स्तावत् श्रेयः समाचर॥"
"यावत् स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो।
यावच्चेन्द्रिय शक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयो नायुषः॥"
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्।
संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।भर्तहरि. वैराग्य.
"क्षणभंगुर जीवन की कलिका कल होत प्रभात खिली न खिली।"
"स्वाभाविकागन्तुक कायिकान्तरा रोगाः भवेयुः किल कर्मदोषजाः।"
"आदित्यस्य गतागतै रहरहः संक्षीयते जीवितम्।
व्यापारैर्बहुकार्य भारगमो कालो न विज्ञायते॥"
इष्ट जन्म जराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते।
वैराग्य. ४३

"आयुः कल्लोल लोलं कतिपय दिवस स्थायिनी यौवन श्रीः।
अर्थाः संकल्प कल्पा घनसमय तडिद् विभ्रमा भोगपूराः।"
कण्ठाश्लेषोपगूढ तदपि काचित मत् प्रियाभिः प्रणीतम्।
वैराग्य. ३६

"आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्द्धगतम्।
तस्यार्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्व वृद्धत्वयोः॥"
शेषं व्याधि वियोग दुःख सहितं सेवादिभिर्नीयते।
जीवे वारि तरंग चंचलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्॥
वैराग्य. ४९

"न नलिनीदलगतजल मतितरलं तद्वज्जीवितमतिशय चपलम्।
विद्धि व्याधिव्यालग्रस्त लोकं शोक हतञ्च समस्तम्॥
भजगोविन्द....।

"जलमग्निर्विषं शस्त्रं क्षुद्व्याधि पतनं गिरेः।
निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणान् विमुञ्चति॥
"परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव
सर्वंविवेकिनः।" योग दर्शने साधनपाद सूत्र. ६५
"ये हि संस्पर्शजाः भोगाः दुःखयोनय एवते।
आद्यान्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥" गीता ५।२२

"एको वशीसर्वभूतान्तरात्मा, एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्तिधीशस्तेषां सुख शाश्वतं नेतरेषाम्॥"
कठोपनिषद् २।२।१२

(इमं लोकं प्राप्य) सर्व पुरुषार्थ साधन योग्यमतिदुर्लभं मनुष्य शरीरं प्राप्य लब्ध्वा, यावदयं न नश्यति तावदति शीघ्रमेव। अथवा इममनित्यं क्षणभंगुर मसुखं सुखरहितं मनुष्य देहं प्राप्य।(मांमजस्व) मां परमात्मान, भजस्व श्रद्धाभक्तिभ्यामनुसंधेहि।मद्भजने नैवास्य जन्मनः साफल्य कुरु।

"इदं शरीरं परमार्थसाधनं धर्मैकहेतुं बहुपुण्य लब्धम्।
लब्ध्वापि यो न विदधीत भक्ति वृथागतं तस्य नरस्य जीवितम्॥
"बड़े भाग मानुष तन पावा। पाय न जेहिं पर लोक सँवारा।
सो परत्र दुःख पावहिं, सिर धुनि धुनि पछिताय।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाय॥

तुलसी रामायण (उत्तरकाण्ड) में काकभुशुण्डि जी से गरुड़ जी ने पूछा—
"प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन शरीरा॥
बड़ दुःख कवन, कवन सुखभारी। सो संक्षेपहि कहहुँ विचारी॥
उत्तर—3 प्रश्नों का—
"नर तनु सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग नसैनी। ज्ञान विरागभक्ति सुख देनी॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषयरत मन्द मन्दतर॥
कंचन काँच बदल शठ लेहिं। कर ते डारि परसमणि देहीं॥
नहिं दरिद्र सम दुःख जग माँही। सन्त मिलन सम सुख कछु नाहीं॥
बिनु सत्संग विवेक न होई। रामकृपा बिन सुलभ न सोई।
शनि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु वेद विदित सब काहू॥
साधु असाधु सदन शुक सारी। सुमिरहिं राम देत गणि गारी॥
"जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्।
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति॥
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं।
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥ नीतिशतक. २४

(महात्मा गौतम बौद्ध और अंगुलिमाल डाकू की कथा)

महात्मा बौद्ध का नाम सिद्धार्थ । पिता का नाम शुद्धोदन । माता का नाम मायादेवी । पत्नी का नाम यशोधरा । पुत्र का नाम राहुल जन्म लिच्छिवी वंश में। राजधानी पाटलिपुत्र-पटना। ज्योतिषियों नें जन्मसमय कहा था—यह बड़ा

साधु-महात्मा यशस्वी, महान् होगा। संसार से विरक्त हो जायेगा, राज्याभिषेक के समय बुद्ध, जर्जर, रोगी और मृत शरीर को देखकर वैरागी हो गए।

"विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नराः भजन्ति ये अतिदुस्तरं तरन्ति ते।।
"वारि मथे वरु होत घृत, सिकता तें वरु तेल्ल।
विनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल्ल।। तुलसी,
"संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पन्थ।
कहहिं सन्त कवि कोविद, श्रुति पुरान सद्ग्रन्थ ।।" दोहावली.

चार्वाक—वार्हस्पतय (नास्तिक) दर्शनम्।

(१) "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत् ।।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ?
(२) "मद्यं मांस च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्च मकारा स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे ।।
(३) "न स्वर्गो नापवर्गो व नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायकाः ।।
(४) "अग्निहोत्रं त्रयोवेदा स्त्रिदण्डं भस्म गुण्डनम्।
बुद्धि पौरुष हीनानां जीविकेति वृहस्पतिः ।।
(५) "अङ्गनाऽऽलिङ्गनात् जन्मं सुखमेव पुमार्थता।
कण्टकादि व्यथाजन्यं दुःख निरयमुच्यते ।।"
(६) "लोकसिद्धो भवेद्राजा परेशो नापरः स्मृतः।
देहस्य नाशो मुक्तिस्तु न ज्ञानान्मुक्ति रुच्यते ।।"
(७) "त्याज्यं सुखं विषयसंगमजन्मपुंसां दुःखोपसृष्टमितिमूर्ख विचारणैषा।
ब्रीहीन् जिहासति सितोत्तम तण्डुलाद्यान् को नाम भोस्तुष कणोपहितान् हितार्थी ।।"
(८)"अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवार्यनलानिलाः।
चतुर्भ्यः खलुभूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते ।।"
(९) "अग्निरुष्णो जलं शीतं, समस्पर्शस्तथानिलः।
केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वभावात् तद् व्यवस्थितिः ।।"
(१०) "यदि गच्छेत् परं लोकं देहादेष विनिर्गतः।
करमात भूयो न चायाति बन्धुस्नेह सभाकुलः ।।"
(११) "मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत् तृप्ति कारकम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थ पाथेय कल्पनम् ।।"
"काम एवैक पुरुषार्थः। मरणमेवापवर्गः। लोकसिद्धो राजा परमेश्वरः।"
"नास्त्यात्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात् ।।"

ऐश्वर्यवान् हम सन्मार्ग से चलें।
(कुपथगामी न हों)

कोऽर्थान् प्राप्य न गर्विता भुविमान: ?

"मा प्रगाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिन: । मान्त:स्थुर्नोअरातय:
ऋक्. १० ।५६ ।१ अर्थव. १३ ।१ ।५९

सोम = "षू प्रसवैश्वर्ययो: ।"

(हे इन्द्र: वयं सोमिन: पथो मा प्रगाम वयं यज्ञात् मा प्रगाम अरातय: न: अन्त: मा तस्थु: इत्यन्वय:) (हे इन्द्र) हे इन्द्र ! हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ? इदि परमैश्वर्ये । य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्र: परमेश्वर: । (वयं) हम, आपके भक्त जन आर्य । भक्त ४ प्रकार के—

चतुर्विधा भजन्ते मां जना: सुकृतिनोर्जुन ।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थोर्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ गीता: ७ ।१६

(पथ:) मार्ग, रास्ता, सन्मार्ग, आपका बताया हुआ वेदमार्ग ।(मा प्रगाम) को छोड़कर न चलें । कुमार्ग पर ना चलें । अर्थात् सदैव सन्मार्ग-वैदिक मार्ग पर चलते रहें ।

"चरन् वै मधु विन्दति, चरन् विन्द त्युदुम्बरम् ।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं, यों न तन्द्रयते चरन् ॥"

चरेवैति चरेवैति । स्वंस्ति पन्थामनुचरेम सूर्यचन्द्रमसा: ।

(सोमिन: वयं) ऐश्वर्यशाली होते हुए हम लोग । ऐश्वर्य सम्पन्न हम ।(यज्ञात् मा प्रगाम) यज्ञ को छोड़कर ना चलें । अर्थात् वेदोक्त पञ्च महायज्ञों को करते हुए हम जीवन व्यतीत करें । क्यों ?

"नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यो कुरुसत्तम ।" गीता ४ ।३१

"यज् देव पूजासंगतिकरण दानेषु ।"यजनं यज्ञ: । यजनं पूजनं पूजनं नाम सत्कार । यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म । कुत: ? तस्य परार्थत्वात् । यज्ञ: परोपकारायैव भवति ।जनानां समूहो जनता । तत्सुखायैव यज्ञो भवति ।

"यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नम् ।" यजु:
यज्ञो दानं तपश्चेति पावनानि मनीषिणाम् ।" गीता १८ ।५
"आयुर्यज्ञेन कल्पतां, प्राणो यज्ञेन कल्पतां, चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां, मनो यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पतां, प्रजायते प्रजा अभूम स्वाहा ॥"
यजु: ९ ।२१

(अरातय:) अदानता का भाव । दान न देने की प्रवृत्ति । रादाने शत्रु-वैरी (काम क्रोध लोभ ईर्ष्या द्वेष आदि)

"तैर्दत्तान प्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव स: ।" गीता ३ ।१२

"दानंभोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीयागतिर्भवति।।" मनुः
"दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदुः।।" गीता १७।२०

(नः अन्तः) हमारे अन्दर। हमारे मन बुद्धि में। (मा तस्थुः) न ठहरें। आभ्यन्तर शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मत्सरता आदि दुर्गुण हमारे मन में अन्तःकरण में न रहें। इन शत्रुओं से हमारा हृदय सदा पवित्र रहे। मन मन्दिर में न रहें।

"काम क्रोध मदमान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।
जिनके कपट दम्भ नहिं माया। तिन्हके हृदय वसहुँ रघुराया।।
"त्रिविधं नरकस्येद द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।। गीता १६।२१
"श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्य मेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते, प्रेयो मन्दो योग क्षेमाद् वृणीते।।
"त्वं नः पाह्मं सो जातवेदो अघायतः। रक्षाणो ब्रह्मणस्पते।।" ऋक्.

हे जातवेद। हे ब्रह्मस्पते ? त्व नः पापात् अथायतः नः पाहि।

हे ब्रह्मणस्पते ? नः पाहि। पा रक्षणे। पा पालने।

"देवानां रातिरभिनो निवर्त्तताम्।" ऋक्. १।८९।२
"भद्रा इन्द्रस्य रातयः।" ऋक्. ८।६२।११

पुरुष का उत्त्थान
(उन्नति का मार्ग)

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
कठ्. २।२

"उद्यानं पुरुष ते नावयानं जीवतुं ते दक्षताति कृणोमि।
आहि रोहेमिममृत सुखं रथं, अथ जिर्वि विदथमावदासि।।
अथर्व. ८।१।६

(पुरुष) हे जीव ! हे मनुष्य ! (भोगापवर्गार्थदृश्यम्) (ते उद्यानं) तेरा उत्त्थान ही हो। तेरी उन्नति ही हो। (न अवयानं) नीचे की ओर पतन कभी नहीं हो।(ते जीवातुं) तेरे जीवन को, तेरे जीने के लिए।(दक्षताति) अतिबल से युक्त, अति चतुराई से युक्त, तुझे (कृणोमि) मैं करता हूँ। अर्थात् तुझे बल चतुराई बढ़ाने का उपदेश करता हूँ। दक्षता की सारी सामग्री तुझे दिया हुआ हूँ।(इमं) इस विद्यमान जो तुझे दिया हुआ है। उस (अमृतं सुख रथं) अमृत समान सुखकारी रथ पर। मोक्ष सुख को देने वाले। (हि आरोह) निश्चय से तू चढ़ जा और (अथ जिर्विः) फिर जीर्ण होकर, वृद्धावस्था में। जृवयो हानौ। (विदथं) ज्ञान को, सत्यधर्म को, यज्ञादि शुभ कर्म को। (आवदासि) प्रचार करता रह। रथः रहते गति कर्मणः।

रमणीयः। रममाणो अस्मिन् तिष्ठतीति रथः।"रथः शरीर पुरुषस्य राजन् आत्मानियन्ते-न्द्रियाण्यस्य चाश्वाः।"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीर रथमेव तु। बुद्धि तु सारथिं विद्धिमनः प्रग्रहमेव च। इन्द्रियाणि ह्यानाहुः विषयांस्तेषुगोचरान्।

आत्मेन्द्रियमनो युक्तं भोक्ते त्याहुर्मनीषिणः।" कठ. ३।३-४

भोगापवगार्थं दृश्यम्। सांख्य.

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥" गीता ६।५

"त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥ गीता १६

वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना, सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। वेदोनित्यमधीयताम्।"

तीन अनादि पदार्थ

"त्रयः केशिनः ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमेको अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिःरेकस्य ददृशे न रूपम्॥"

ऋक्. १।१६४।४४

(त्रयः केशिनः) तीन प्रकाशमय पदार्थ। ईश्वर जीव और प्रकृति ये तीन पदार्थ अनादि हैं। (ऋतुथा विचक्षते) यथार्थ रूप से, नियमानुकूल, विविध रीतियों से अपना बोध स्वरूप का करा रहे हैं। (एषां एकः) इनमें से एक जीवात्मा (संवत्सरे वपत) संसार में बीज बोता है तथा फल काटता है। (एकः शचीभिः) और एक परमात्मा अपनी शक्तियों से अथवा अपने ज्ञान के द्वारा। (विश्वं अभिचष्टे) सम्पूर्ण पदार्थों को सब ओर से देख रहा है (एकस्य ध्राजिः) एक का प्रकृति का कार्य रूप वेग दीखता है। (रूपं न ददृशे) किन्तु रूप नहीं दीखता। सत्व रजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृतिः। प्रक्रियतेनयासा प्रकृतिः।

भावार्थ—सारे पदार्थों का वर्गीकरण करें तो जीव, ब्रह्म और प्रकृति तीन ही पदार्थ सिद्ध होते हैं। जीव कर्म रूप बीज बोता है। तदनुसार सुख, दुःखरूप फल भी भोगता है। ब्रह्म पर्याप्त काम है। वह जीवों के कर्मों का साक्षी है। प्रकृति का कार्य तो दीखता है किन्तु वह स्वयं अदृश्या है।

ईश्वर सत् चित् आनन्द। जीव सत् चित्। प्रकृति सत्।

कार्यकरण कर्त्तव्ये हेतुः प्रकृति रुच्यते। पुरुषः सुख-दुःखानां भोक्तृत्वे हेतु रुच्यते।

"उपद्रष्टानुमन्ता च भर्त्ताभोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः॥" गीता १३।२२

"प्रकृतिं पुरुषं चैव बिध्यनादि उभावपि।"
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृति सम्भवान्॥" गीता १३।१९

संत संग अपवर्ग कर कामी भव कर पन्थ।
कहहिं सन्त कवि कोविद श्रुति पुरान सद्ग्रन्थ॥

दोहावली

"देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां, देवानां राति रभिनो निवर्तताम्।
देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥"

यजुः २५।१५

इस मन्त्र में देव शब्द चार बार आया है। इसलिए देव किसे कहते हैं ? इस पर विचार करना योग्य है।

विद्वा सो हि देवाः। शतपथे

"देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युः स्थानो भवतीति वा। निरुक्त। देव दो प्रकार के—(१) चैतन्यदेव, (२) जड़ देव।

(१) चैतन्यदेव माता, पिता, आचार्य, अतिथि, परमेश्वर।

मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव।" तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली।

(२) जड़ देव अग्निर्देवता, सूर्यो देवता, चन्द्रमादेवता इत्यादि।

(देवानां भद्रा सुमतिऋजूयताम्) देवानां विदुषां भद्रा कल्याण कारिणी सुमतिः शोभना प्रज्ञा ऋजूयतां सरली क्रियताम्।अर्थात् विद्वानों ज्ञानी पुरुषों की सन्त महापुरुषों की कल्याण करने वाली सुमति हमारी बुद्धियों को सरल बनावे।

"मतिश्चमे सुमतिश्चमे यज्ञेन कल्पन्ताम्।" यजुः १८।५

"जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यं, मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं। सत्संगतिः कथम किं न करोति पुंसाम्॥"

भर्तृहरिः नीतिः।

महाराज भोज और महाकवि कालिदास संवाद—

भिक्षो ! मांसनिषेवणं प्रकुरुषे ? किं तेन मद्यं बिना।
मद्यं चापि तव प्रियं ? प्रियमहो वाराङ्गणाभिः सह॥
वेश्याप्यर्थं रुचिः कुतस्तव धनं ? द्यूतेन चौर्य्येणं वा।
द्यूत चौर्य्ययुतोऽपि भवतो ? भ्रष्टस्य कान्या गतिः॥
"वयं देवानां सुमतौ स्याम।"

(देवानां रातिरभिनो निवर्त्तताम्) देवानां विदुषां रातिः विद्यादि दानम्। अन्नादि दानं नः अस्मभ्यम् अभिनिवर्त्ततां सम्यक् प्राप्ता भवन्तु।

देवों में जो दानशीलता का भाव है वह हमें सब प्रकार से प्राप्त हो दानशीलता का भाव सामर्थ्यानुसार दान देने की प्रवृत्ति।

"दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतं॥" गीता १७।२०

"दानं भोगो नाशस्तिस्रोगतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ।।" मनुः

यत्स्व स्वत्व निवृत्तिपूर्वकं पर स्वत्वापादानं तद्दानम् ।

जगद्‌गुरु विरजानन्द सरस्वती का स्वामी दयानन्द को विद्यादान,

(देवानां सख्यमुपसेदिमा वयम्) वयं देवानां विदुषां सख्यं मैत्रीभावं प्राप्नुयाम ।अर्थात् हम विद्वानों सन्त महापुरुषों की मैत्री मित्रभाव उपदेश सत्संग सदा प्राप्त करें ।

"बिगरी जन्म अनेक की सुधरै अबही आजु ।
होई राम को नाम जपि, तुलसी तजि कुसमाज ।।" दोहावली

"अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यो सम्यग्व्यसितो हि सः । गीता ९ ।३०

महर्षि वाल्मीकि की कथा । गौतम बुद्ध अंगुलिमाल की कथा । (देवाः नः आयुः प्रतिरन्तु जीवसे) देवाः विद्वांसः वैद्याचार्याः न आयुः अस्मद् यद् जीवनमस्ति तद् जीवसे जीवनाय प्रतिरन्तु वर्धयन्तु । विद्वान् वैद्यगण हमारी आयु को दीर्घ जीवनमय बनाने का उपदेश करें । जीवेम शरदः शतम् । शतायुर्वै पुरुषः । सदाचार, सत्संग, सात्विक आहार, संयम अर्थात् जितेन्द्रियतादि गुणों के धारण करने से आयु की वृद्धि होती है ।

"आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः । आचाराद्धन ˙˙ ।"
"दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः । दुःखभागी च ˙˙ ।"
"आयुः सत्वबलारोग्य सुखप्रीतिः विवर्धनाः । रस्याः स्निग्धा ˙˙ ।
स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विक प्रियाः ।।"
गीता १७ ।८

"वयं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषांनुगादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ।।"
यजुः ३५ ।१५

"वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है । वेद का पढ़ना ।"

वेदाध्ययन का फल

"एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही ।
पक्वा शाखा न दाशुषे ।।"

ऋक्. १ ।८ ।८

(मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्ज स्वरः ।)

(पक्वा शाखा न) पके हुए फलों वाली शाखा के समान; जैसे—आम, लीची, जामुन, अनार आदि के वृक्ष की पकी डाली फलयुक्त होने से प्राणियों को सुख देती है । तद्वत् वैसे ही (अस्य हि) इस परमेश्वर की निश्चय ही । (गोमती) जिसको

बहुत से विद्वान् सेवन करने वाले हैं, जो (सूनृता) प्रिय और सत्य वचन प्रकाश करने वाली। (विरप्शी) महाविद्यायुक्त और (मही) महान्, सबको सत्कार करने योग्य। चारों वेदों की वाणी है सो। (दाशुषे) पढ़ने में मन लगाने वालों को सब विद्याओं का प्रकाश करने हारी है। दाशुषे = जो इस ब्रह्मविद्या का दान करता है उसके लिए।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे विविध प्रकार से फल फूलों से युक्त आम, अमरूद, जामुन, लीची, अनार, कटहल आदि वृक्ष नाना प्रकार के फलों को देने वाले होकर सुख देने हारे होते हैं, वैसे ही ईश्वर से प्रकाश की हुई वेदवाणी बहुत प्रकार की विद्याओं की देने वाली होकर सब मनुष्यों को परम आनन्द देने वाली है। जो विद्वान् लोग इसको पढ़कर धर्मात्मा होते हैं वही वेदों का प्रकाश और पृथ्वी में राज्य करने को समर्थ होते हैं।

"भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः नवाम्बुभिर्भूरि बिलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषा समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥"

"वेदेषु सर्वा विद्या सन्ति आहोस्विन्नेति ? सर्वा सन्ति मूलो देवानः।
विभर्त्ति सर्व भूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्।
तस्मादेतत् परं मन्ये यज्जन्तौरस्य साधनम्॥" मनुः १२।८९
"चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं-भविष्यंच्च सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति॥" मनुः १२।८८
"तद् वचना दाम्नायस्य प्रामाण्यम्।" सांख्य ५।५३
"न पौरुषे यत्वं तत्कर्त्तुः पुरुषस्याभावात्।" सांख्य ५।४६
"शास्त्र यो नित्वात्।" वेदान्त दर्शन १।१।३
"अतएव च नित्यत्वम्।" वेदान्त १।३।२९
"तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्।" योगदर्शन १।२५

"विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभन्ते वा एभिः धर्मादि पुरुषार्थाः इति वेदाः। प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते, एतं वदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।"

सायणाचार्यः

"इष्ट प्राह्यनिष्ट परिहारयोरलौकिक मुपायं यो वेदयति स वेदः।

वेदो हि नाम अशेष विशेष विज्ञान ज्ञान प्रतिपादकं शाश्वतिकं अपौरुषेयं वाक्यम्।"

सायणः

"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वैशरणमहं प्रपद्ये॥"
"यस्य निःश्वसितं वेदाः यो वेदाज्जगतेऽखिलान्।
प्रददौ तमहं वन्दे परमात्मानमव्ययम्॥"

"तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः।
सामानि जज्ञिरे। छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥"

यजुः ३१।७

विद् ज्ञाने। विद् सत्तायाम्। विद्लृलाभे। विद् विचारणे। एतेभ्यो धातुभ्यो हलश्चेति सूत्रेण करणाधिकरण कारकयो र्धञ् प्रत्यये कृते सति वेद शब्दः साध्यते।

ऋ. भा. भू.

विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, विदन्ति लभन्ते विन्दते विचार यन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्यार्थैं येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति सर्वे मनुष्याः ते वेदाः।

स्वामी दयानन्द ऋ. भा. भू.

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीः ऋतस्यधीति वृजिनानि हन्ति। ऋतस्य श्लोको बधिराततर्द कर्णा वुधानः शुचमान आयोः। ऋक्. ४।२३।८

(हि) निस्सन्देह, निश्चय से ही, (ऋतस्य) सत्य, ज्ञान स्वरूप वेद का, सत्य का (शुरुधः) श्रवण करना, पापनिवारक शक्तियाँ (पूर्वीः सन्ति) सनातन है, सदा से हैं और पूर्ण है। (ऋतस्य धीतिः) सत्य ज्ञान वेद का पढ़ना-पढ़ाना, अध्ययन मनन करना अथवा सत्य का धारण करना। (वृजनानि हन्ति) वर्जनीय पापों को नष्ट करता है। (ऋतस्य) वेद का, सत्य का "वृजी वर्जने" (शुचमानः) प्रकाशमान, दीप्यमान, पवित्रकारी।(बुधानः) बोध देने वाला बोधप्रद (श्लोकः) कीर्तिमय मन्त्र, वेद की ऋचाएँ, मन्त्रः मननात्।(आयोः) ज्ञानाभिलाषी मनुष्य के, (वधिरा कर्णा) बहिरे कानों को, अर्थात् जिन कानों ने कभी धर्म, कर्म की वार्ता नहीं सुनी, उनके कानों को (ततर्द) खोल देता है। श्रुतिः श्रु श्रवणे। श्रवणात् श्रुतिः। श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।" मनुः

भाव—वेद प्रभु का दिया ज्ञान है। यह सृष्टि साम्राज्य का संविधान है। सृष्टि सर्ग के आरम्भ में ही प्रभु ने अपनी मानव प्रजा के कल्याण के लिए पवित्र वेदज्ञान को प्रदान किया। इसके अध्ययन मनन से प्राणी पापों से छूटकर मोक्ष प्राप्त करता है।

"उ तत्वः पश्यन्नददर्श वाचं उतत्वः शृणवन्न श्रणोत्येन। अन्येत्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्यः उपासते। तेऽपि चाति तरन्त्यैव मृत्युं श्रुति परायणाः।"

पाप से छुटकारा कैसे हो ?

(पाप से हमें बचाइये करके दयादयाल)

**"यो नः पाप्मन् न जहाति तमु त्वा जहियो वयम्।
पथामनु व्यावर्त्तनेऽन्यं पाप्मानुपद्यताम्॥"**

अथर्व. ६।२६।२

भावार्थ—हे पाप ! जो तू हमें नहीं छोड़ता, तो हम तुझे छोड़ते हैं। कैसे ? पाप के अतिरिक्त दूसरे मार्ग का अवलम्बन करके, जिससे पाप हमारे पीछे नहीं आयेगा।

(पाप्मन्) हे पाप ! पाति रक्षति आत्मानमस्मादिति पापः। पापकर्म।(यः नः न जहाति) जो तू हमें नहीं छोड़ता। जहि त्यागे से।(तमु त्वा वयं जहीमः) तो हम तुझको छोड़ते हैं। कैसे छोड़ते हैं ?(पंथां अनु व्यावर्त्तने) पाप के मार्ग के अतिरिक्त दूसरा मार्ग अवलम्बन करके अर्थात् धर्ममार्ग का अवलम्बन करके (अन्यं पाप्मअनुवधताम्) जिससे पाप हमारे पीछे न आवेगा

"अनुष्ठानं निषिद्धस्य त्यागो विहित कर्मणः।
नृणां जनयतः पाप क्लेश भयप्रदानम्।"
"अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय वलादिव नियोजितः॥"
"काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयैन मिह वैरिणम्॥"

गीता ३।३६-३७

"ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोभिजायते॥"
क्रोधात् भवति संमोहः संमोहात् स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

गीता २।६२-६३

(आदम हौआ की कथा। शैतान के कहने से पाप किया।)—बाइविल
(काञ्चनमालिनी की कथा। माघमास महात्म्य।)

"परोऽपेहि मनस्पाप किनशस्तानि शंसति।
परे हि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि संचर गृहेषु गोषु मे मनः॥"

अथर्व.

"येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्दमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ़ व्रताः॥"

गीता ७।२८

पाप की उत्पत्ति

"न वा उसोमोवृजिनं हिनोति नक्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्।
हन्ति रक्षा हत्या सद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते॥"

अथर्व. ८।४।१३

(सोमः वै ३) शान्तिदाता प्रभु निश्चय ही, सर्वोत्पादक प्रभु (वृजिनं न हिनोति) पापमार्ग की प्रेरणा नहीं देता, पापी को नहीं प्रेरता है। (न मिथुयाधारयन्तं) और नाही झूठ को धारण करने की प्रेरणा करता है। (क्षत्रियं हिनोति) झूँठ धारण करने वाले क्षत्रिय को नहीं प्रेरता। (रक्षः हन्ति) वह राक्षस को मार देता है। (असद् वदन्तं आ हन्ति) झूठ बोलने वाले का सर्वथा नाश कर देता है। (उभौ) ये दोनों पापी और झूठे। पापकारी, असत्यवादी (इन्द्रस्य प्रसितौ शयाते) इन्द्र के कारागार में पड़े रहते हैं। महाबली इन्द्र के पाश में बन्धन में बँधते हैं।

पाप की उत्पत्ति का प्रश्न सनातन है। जब से मनुष्य है तभी से यह प्रश्न मानव के मन और बुद्धि को मथ रहा है। पाप की उत्पत्ति आत्मा की दुर्बलता से होती है। आत्मा अल्पज्ञ और अल्प शक्ति वाला है। इस अल्पशक्ति और अल्पज्ञता से भूल कर बैठता है। किसी कवि ने कहा है—

"हँसी आती है मुझे इस हजरते इन्सान पर।
कारे बद तो खुद करे, तो हमत धरे शैतान पर।।"

आदम हौआ की कथा।

"योनः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति।
अपस्म तं पथो जहि।।" ऋक्. १।४२।२

(पूषन्) पुष्टि कर्त्ता परमात्मन्। (यः दुःशेवः) जो दुःखदायी (वृकः) भेड़िये के समान हिंसाकारी (अघः) पाप (नः) हम पर (आदिदेशति) शासन करता है। (तं) उसको (पथः) मार्ग से (अपजहिस्म) दूर कर दे मार गिरा दें, उखाड़ फेंकें।

साँच को आँच नहीं

"सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते।
नात्रावखादो अस्ति वः।।" ऋक्. १।४१।४

(आदित्यासः) अखण्डित व्रत वाले आदित्य ब्रह्मचारी के लिए।(ऋतं यते) ऋत सत्यमार्ग पर चलने वाले के लिए, (पन्थाः सुगः) मार्ग सुगम है, तथा (अनृक्षरा) निष्कण्टक होता है, विघ्न वाधा विहीन, (अन्त्र) इस सत्य मार्ग में, (वः अवखादः) तुम्हारा विनाश, हानि, (न अस्ति) नहीं है।

भावार्थ—ऋत (सत्य) का अनुसरण करने वाले को यहाँ भी कोई हानि नहीं। वेद डंके की चोट से यह बात कह रहा है।

ऋत का आचरण करने वाला इस संसार में सत्यपथ पर चलता हुआ किसी की हानि नहीं करता, किसी की हिंसा नहीं करता किसी का भाग नहीं छीनता, किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाता, किसी के मार्ग में बाधा नहीं डालता , तो फिर उसका मार्ग निष्कण्टक क्यों नहीं होगा?

"सत्यमेव जयते नानृतम्, सत्येन पन्थावितता देवयानः" । मुण्डक.

"यो नः पाप्मन् न जहासि तमुत्वा जहिमो वयम्।
पथामनुव्यावर्त्तनेऽन्यं पाप्मानु पद्यताम्।"

अर्थव. ६ ।२६ ।२

पाप क्या ?अनुष्ठान निषिद्धस्य त्यागो विहित कर्मेणनृण जनयतः पापं क्लेश शोकभय प्रदम् ॥"

"अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपिवार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ गीता ३ ।३६

("अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।")
आर्य समाज नियम ८

"न ता नशन्ति नदमाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरोदधर्षति।
देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिःसह् ॥"

अथर्व. ४ ।२१ ।३

(ताः न नशान्ति) वे कष्ट नहीं होती। वे विद्या की छापें अर्थात् विद्या का ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता। संसार का धन सम्पदा, वैभव, ऐश्वर्य समय पाकर नष्ट हो सकते हैं और हो जाते हैं। धन सम्पत्ति आज एक के पास है कल वह दूसरे के पास चली जाती है। वेद ने कहा है—

"ओहि वर्त्तन्ते रथ्येव चक्राऽन्यमन्य मुपतिष्ठन्तरायः"

ऋक्. १० ।११७ ।५

(न दभाति तस्करः) चोर नही दबा सकता अर्थात् डाकू नहीं छीन सकता

"हर्त्तुं न गोचरं याति दत्ताभवति विस्स्तृता।
कल्पान्तेऽपि न या नश्येत् किमन्यद् विद्यया समय् ॥"
"न चौरहार्य न च राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एवं नित्यं विद्याधनं सर्वधनं प्रधानम् ॥"

(व्यधिरः अमित्रः) दुःखदायी शत्रु पीड़ा देने वाला शत्रु ।(आसाम् नदधर्षति) इनका तिरस्कार नहीं कर सकता। अर्थात् कोई दुःखदायी शत्रु भी विद्या का नाश नहीं कर सकता।

"संयोजयति विद्यैव नीचगापि नरं सारित्।
समुद्रमिव दुर्धर्षं नृपं भाग्यमतः परम् ॥"

कहीं किसी को भ्रम न हो जाय कि जैसे धन सम्पत्ति दान देने से घट जाती है ऐसे ही विद्या भी दान देने से घट जाती होगी। इस पर वेद पुनः समझाता है—

याभिः देवान् यजते ददाति च। जिनके द्वारा देवयज्ञ करता है, विद्वानों का सत्कार और सत्संगति करता है, विद्यादान करता है। (गोपतिः ताभिःसहज्योक्

सचते) इन्द्रियों का स्वामी जीवात्मा उनके साथ निरन्तर सम्बद्ध रहता है। अर्थात् विद्यादान करने से विद्या बढ़ती ही है । घटती नहीं। अत: विद्यार्जन और विद्यादान में निरन्तर उद्योगी होना चाहिए।

भय उपस्तम्भा आहार स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति।

सफल जीवन के लिए मन्त्र।
स्वावलम्बी बनो।

"आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वं तिष्ठति तिष्ठतः।
"स्वयं वार्जिस्तन्वं कल्पयस्व, स्वयं यजस्व, स्वयं जुषस्व।
महिमातेऽन्येन न सन्नशे॥ यजु: २३।१५

बाजी वेजनवान् चलनवानित्यर्थ: निरुक्त:। (वाजिन्) हे गतिशील विद्वन् !हे बलवान् आत्मा ! (स्वयं तन्वं कल्पयस्य) तू अपने शरीर को समर्थ बना अर्थात् स्वावलम्बी बन, पराश्रित मत बन। स्वयं स्वावलम्बी बन कर जीवन को उन्नत गतिशील बना। निरुत्साही आलसी मत बन कल्प क्लिपु सामर्थ्ये धातु से। कल्पयस्व समर्थो. भव।"अश्मा भवतु ते तनु:।" नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:।" "धर्मार्थ काम मोक्षाणां शरीर साधनयत: अतो रुग्भ्यसानुरक्षेद्। (स्वयं यजस्व) स्वयं यज्ञ कर। यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।यज्ञेन यज्ञ मयजन्त देवा:। यजु: ३१।१६ यजनं यज्ञ:।यज् देवपूजा संगतिकरण दानेषु। देवपूजा कर, सत्संग कर दान दे।(स्वयं जुषस्व) स्वयं प्रीतिपूर्वक सेवन कर। जुष् प्रीति सेवनयो:।" दीन-हीन् दु:खियों की प्रीति और श्रद्धापूर्वक सेवा कर।

"अश्रद्धया हुतंदत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यतेपार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह:॥ गीता १७।२८

(महिमा ते अन्येन न सन्नशे) तेरी महिमा किसी दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं होगी। अर्थात् अपने जीवन की सफलता अपनी बड़ाई अपने हाथों प्राप्त की जाती है। सिद्धि प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ तप और त्याग की जरूरत होती है तभी जीवन की सफलता प्राप्त होगी।

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैवरिपुरात्मन:॥" गीता ६।५
उघम: साहसं धैर्य बुद्धि: शक्ति: पराक्रम:।
षडेते यत्र वर्त्तन्ते तत्र देव: सहायकृत॥"

(यज्ञ) परोपकारमय सत्कर्म। कुत: ? तस्य परार्थत्वात् । यज्ञ: परोपकारायैव॥ स्वयं यजस्व तन्वं वृधान:। युज: १७।२९

भद्र की कामना करने वाले ऋषि

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुप निषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु।।

अथर्व. १९।४१

(भद्रं इच्छन्तः) भदि कल्याणे सुखे च। कल्याण चाहने वाले, भलाई चाहने वाले।(स्वः विदः) सुख को जानने वाले सुख के साधनों को जानने वाले अथवा सुख स्वरूप ईश्वर को जानने वाले। (ऋषयः) ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः। ऋषिर्दर्शनात्। रहस्य वेत्ता महात्मा, ज्ञानी महापुरुष। (अग्रे) पहले, सबसे पूर्व।(तपःदीक्षां) तपोधर्माचरणम्। कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः। योग साधन पाद सूत्र ४३ दीक्षामुत्तमाधिकाम्। (उपनिषेदुः) समीप होकर प्राप्त करते हैं। (ततः राष्ट्रम्) तब राष्ट्र में, राष्ट्र राजा + प्रजा।(बलं च ओजः च जातम्) बल और ओज तेज उत्पन्न होता है। (तत् देवाः) तब देवता लोग, (अस्मै उपसन्नमन्तु) इसके समीप आकर प्रणाम करते हैं।"वीत स्पृहाणामपिमुक्तिभाजां भवन्ति भव्येषु हि पक्षपातः। भारविः कविः तप और दीक्षा —प्रश्नोपनिषद् प्रश्न १ रघुवंश में राजा दिलीप और कुलगुरु वशिष्ठ संवाद—

"चरन् वै मधु विन्दन्ति चरन् विन्दस्युदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्॥ "चरैवेति चरैवेति"

प्रभू तेजास्विता शक्ति बल प्रदान करें।

देवस्त्वा सवितोद् वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुतशक्त्या।
अव्यथमाना पृथिव्यां आशादिश आपृण।।"

यजुः ११।६३

(भावार्थ) —हे परमात्मन्! तेजस्विता से परिपूर्ण ऐसी शक्ति प्रदान कीजिये की बाहू और अंगुलियुक्त प्राणी सदैव मानवता की व्यथा अपहरण में ही सक्षम हों। तथा पृथिवी और अन्तरिक्ष सब शुभ भावना से पूरित हों।"

"देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्व मेकम्।।"

ऋक्. ३।५५।१९

"इमा च नः पृथिवी विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा।
पुरः सदः शर्मसदो न वीरा महद्देवाना मसुरत्वमेकम्।"

ऋक्. ३।५५।२१

"विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रियाधामान्यमृता दधानः।
अग्निष्टा विश्वाभुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम्।।"

ऋक्. ३।५५।१०

(असुरत्वम्) दोषों को दूर फेंकना। शत्रुओं को दूर करना।

(ग्यारह इन्द्रियों वाला पुरुष)

"ये देवासो दिव्येकादयशस्थ पृथिव्यामध्येकादशस्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादशस्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥"

ऋक्. ९।१३९।११

पदार्थ—(देवासः) हे विद्वानों। तुम (ये) जो (दिवि) धुलोक सूर्य लोक में (एकादश) दश प्राण और ग्यारहवाँ जीवात्मा अथवा दश इन्द्रियाँ ग्यारहवाँ मन (स्थ) हैं। वा जो (पृथिव्यं) पृथिवी में (एकादश) उक्त एकादश गण के (अधिस्थ) अधिष्ठित हैं। वा जो (महिना) महत्व के साथ (अप्सुक्षितः) अन्तरिक्ष वा जल में निवास करने हारे (एकादश) दश इन्द्रिय और एक मन (स्थ) है। (ते) वे जैसे हैं वैसे उनको जानकर (देवासः) विद्वानो! तुम (इमं) इस (यज्ञ) संग करने गोग्य व्यवहार रुप यज्ञ को (जुषध्वं) प्रीतिपूर्वक सेवन करो इमं यज्ञं इस जीवन यज्ञ को।

भावार्थ—ईश्वर की इस सृष्टि में जो पदार्थ सूर्यादि लोकों में हैं अर्थात् जो अन्यत्र वर्तमान हैं वे ही यहाँ हैं, जितने यहाँ हैं मनुष्यों को योगक्षेम निरन्तर करना चाहिए।

"श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृतः॥
एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनो भयात्मकम्।
यस्मिन्जिताजितावेतौभवतः पंचकौ गणौ॥ मनुः २

कस्मै देवाय हविषा विधेम ?

अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा।
वियो ममे रजसी सुक्रतूघयाजरेभि स्कम्भनेभिः समानृचे॥"

ऋक्. १।१६०।४

(देवानां) दिव्य गुणवतां सूर्याग्निपृथिव्यादीनां (अपसां) अप इति कर्म नाम, कर्मों के बीच में (अपस्तमः) अतीव क्रियावान् है। वा (विश्वशम्भुवा) सबसे सुख की भावना करने वाले कर्म से (रोदसी) सूर्य और पृथ्वी लोक को (जजान) जनी प्रादुर्भावे जनयति प्रकट करता है।(सुक्रतूयया) उत्तम बुद्धि कर्म और (स्कम्भनेभिः) रुकावटों से (अजरेभिः) हानि रहित प्रबन्धों के साथ (वि ममे) विविध प्रकार से मान करता, उसकी मैं (समानृचे) अच्छे प्रकार से स्तुति करता हूँ। ऋच् स्तुतौ।

भावार्थ—सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करने आदि काम जिस जगदीश्वर के होते हैं जो निश्चय के साथ कारणों से समस्त नाना प्रकार के कार्य को रचकर अनन्त बल से धारण करता है, उसी की सब लोग स्तुति करें।

"एष वः स्तोमो मरुत इयङ्गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम।
ऋक्. १।१६६।१५, १।१६७।११

भावार्थ—मनुष्यों को विद्वानों की स्तुति कर शास्त्रज्ञं धर्मात्माओं की वाणी सुन शरीर और आत्मा के बल को बढ़ा दीर्घ जीवन प्राप्त करना चाहिए।

(पदार्थ) हे (मरुतः) विद्वानो (वः) तुम्हारा जो (एषः) यह (स्तोयः) स्तुति और (मान्दार्यस्य) आनन्द करने वाला धर्मात्मा (मान्यस्य) सत्कार करने योग्य (कारोः) अत्यन्त यत्न करते हुए जन की (इयं) यह (गीः) वाणी और जिस क्रिया को (तन्वे) शरीर के लिए (इष) इच्छा के साथ कोई (आयसीष्ट) अच्छे प्रकार प्राप्त हो उस क्रिया (इषं) अन्न (वृजनं) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (वयां) हम लोग (विद्याम्) प्राप्त होवें।

"सुनि समुझहिं जन मुदितमन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारु फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग।। तुलसी.
"बिनु सत्संग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिन राम पद, होय न दृढ़ अनुराग ।।" तुलसी

जीव का स्वरूप।

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद वेद यदद्भुतम्।
अन्यस्य चित्तमभि सञ्चरेण्य मुताधीतं विनश्यति।।
ऋग्वेद १।१७०।१

पदार्थ—हे मनुष्यो। (यत्) जो (अन्यस्य) औरों के (सञ्चरेण्यं) अच्छे प्रकार जानने योग्य (चित्तं) अन्तःकरण की स्मरणात्मिका वृत्ति (उत) और (आधीतम्) ओर से धारण किया हुआ विषय (न) न (अभि-विनश्यति) नहीं विनाश को प्राप्त होता, न आज होकर (नूनं) निश्चित रहता (अस्ति) है। और (नो) न (श्वः) अगले दिन निश्चित रहता है। (तत्) उस (अद्भूतम्) आश्चर्य के समान वर्त्तमान को (कः) कौन (वेद) जानता है।

भावार्थ—जो जीवरूप होकर उत्पन्न नहीं होता और न उत्पन्न होकर विनाश को प्राप्त होता है। नित्य आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाला अनादि चेतन है उसका जानने वाला भी आश्चर्य स्वरूप होता है।

"आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनं माश्चर्यवत् वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैवमन्यः श्रृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।।
गीता २।२९

"अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एवं च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातन।। गीता २।२४

"अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥ गीता २।२५

"श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः श्रृण्वन्तोऽपि बहवो यां न विधुः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥
कठ. २।६

यमाचार्य ने नचिकेता को कहा, नचिकेता ने इसी जीव तत्व को जानने के लिए तीसरा प्रश्न पूछा था—

ये यं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः॥
कठ्. १।१।२०

"देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा, नहि सुविज्ञेय मणुरेष धर्मः।
अन्य वरं नचिकेतो वृणीष्व, मा मोपरोत्सीरति या सृजैनम्॥
कठ्. १।१।२१

"शतायुषः पुत्र पौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व, स्वयं न जीव शरदो यावदिच्छसि"॥
कठ्. १।१।२३

"तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः"॥ गीता ४।३४

"तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्"॥
मुण्डक्. १।२।१२

"बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागोजीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते"॥ श्वेताश्व ५।९

"नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते"॥ ५।१०

वेदवाणी को सुनो समझो मानो

"उत त्वः पश्यन्नददर्श वाच मुतत्वः श्रृण्वन्नश्रृणोत्येनाम्।
उतोत्वस्मै तन्वं विसस्त्रे जायेव पत्य उशती सुवासा॥ ऋक्. ७१।४

(त्वः) एकः कश्चित्। कोई एक, मनुष्य (पश्यन् + उत) देखते हुए भी, मन में विचार करते हुए भी, (वाचम्) कल्याणी वेदवाणीम्। सबका कल्याण करने वाली वेद वाणी को —

"यथेमां वाचंकल्याणी ·····! (न ददर्श) नहीं देखते, न देखने की कोशिश करते है। हे लोगो ! वेद वाणी को देखो समझो कि क्या है ? "देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति"।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ ऋक्.- यजुः ६।४।१३।३३

(कर्माणि) जगदुत्पत्ति स्थिति प्रलयादीनि।काव्यम् शब्दय ज्ञान, सृष्टि, रचना, रूप कार्य।(उतत्वः) और कोई कोई, मन्दमति अज्ञानी पुरुष।(श्रृण्वन् उत) सुनते हुए भी, (एनाम् न श्रृणोति) उसको नहीं सुते, श्रण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुन्ना आयेधायानि विश्वानि तस्थुः देखो, सुनो, समझो। यजुः

उप नः सूनवो गिरः श्रृण्वन्त्वमृतस्य ये।
सुमृडीकाभवन्तु नः॥ ऋक्, यजुः, साम, अथर्व
"जन्माद्यस्य यतः। वेदान्त १।१।२
"मातृपितृ कृताभ्यासो गुणितामेति बालकः।
न हि गर्भच्युति पुत्रो भवति पण्डितः॥ नीतिः
"माता शत्रु पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभा मध्ये हंसमध्ये बको यथा॥
"रूप यौवन सम्पन्ना विशाल कुल सम्भवाः।
विद्याहीनः न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः॥
"यः प्रीणयेत् सुचरितैः पितरं स पुत्रो, यद्भर्त्तुरिव हितमिच्छति-
तत् कलत्रम्। तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यत्—
एतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते॥ भर्तुहरिः नीतिः

(उतो त्वस्मै) त्वस्मै उत, किसी किसी वेदार्यज्ञ पुरुष की वाणी (तन्वं) अपना शरीर (विसस्त्रे) दिखला देती है। कैसे दिखलाती है ? (सुवासा) ऋतु काले कल्याण वासा। सुन्दर वस्त्र धारिणी (उशती) कामयमाना। कामना करने वाली।

(जाया इव) भार्या जैसे निज स्वामी के समीप निज देह समर्पित करती है। ऐसे ही वेदवाणी अपने अभिप्राय को उसी को प्रकट करती है जो श्रद्धा भक्ति से उसे देखते सुनते हैं, उन्ही का कल्याण होता है॥

"ऋतस्य शुरुधःसन्ति पूर्वी, ऋतस्यधीतिर्वृजिनानिहन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिरां ततर्दः कर्णा वुधानः शुचमान आयोः॥
ऋक्. ४।२३

आत्मा और इन्द्रियों का सम्बन्ध

"समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः। पदमेकस्य पिप्रतः ॥

ऋक्. ९ ।१० ।७

(सप्तजामयः) सात भोग साधन। आँख, नाक, कान, त्वचा जिह्वा, मन और बुद्धि ये सात इन्द्रियाँ । भोग साधनानीन्द्रियाणि। भोक्तव्या इन्द्रियाँः। सात भाई बहिन।(होतारः) दान आदान करती हुई, लेती देती हुई। हू दानादानयोः आदाने चेत्येके। (एकस्य) एक जीवात्मा के। जीवात्मा जीवनस्य आत्मा सात्मा अधिष्ठाता।(पदं) ठिकाने को । पद् गतौ। गतिशील शरीर को।(पिप्रतः) रक्षा करती हुई पृथालन पोषणयोः। धातु से (समीचीनासः) ठीक-ठीक तरह से, भलीप्रकार से (आसते) रह रही हैं। स्थित रहती हैं।

"चमु छमु जमु झमु अदने धातु से जायथः खाना भोगता अर्थ है।

इन्द्रियाँ लेती भी हैं देती भी हैं। आँख रूप को ग्रहण करती है और उसका ज्ञान आत्मा को देती हैं। कान शब्द का ग्रहण करते हैं और उसका ज्ञान आत्मा को देते हैं। इत्यादि,

समीचीनासः अर्थात् जब ये इन्द्रियाँ समता से ठीक ठीक रीति से कार्य करेंगी तब तो ठीक है और यदि प्रतीचीन विपरीत उल्टी चाल चलेंगी तो हानि पहुँचायेंगी। इन्द्रियों की चाल यदि शरीर रक्षा के लिए है तो शरीर की वृद्धि पुष्टि होगी अन्यथा नहीं। "श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिकाचैव पञ्चमी।"

"इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्। संन्नियम्य तु तान्येवः। "इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदिब्रह्मणासंशिनाम्॥"

धनैश्वर्य दाता जगदीश्वर।

"वयं स्यामपतयो रयीणाम्"।

"त्वमग्ने द्रविणो दा अरङ्कृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि।
त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुदमे यस्तेऽविधत्॥"

ऋक्. २ ।१ ।७

(अग्ने) हे अग्रणी पूजनीय ज्ञानरूप परमात्मन्। (त्वं द्रविणो दा) आप धन के दाता है। किसके लिए।(अरं कृते) श्रेष्ठ आचरण से अलंकृत उद्यमी पुरुष के लिए।(सविता देव) हे सब जगत् और सब लोक लोकान्तरों के रचयिता प्रकाशक देव। आप (रत्नधा असि) सूरज, चाँद, सितारे जैसे रत्नों को धारण करने वाले हो। (नृयते) हे मनुष्यमात्र के स्वामी। मनुष्यों की पालना करने वाले। नृणां पाता पालयिता। "पा पालने"।(त्वं भगः) आप ही भजनीय सेवनीय हैं। (वस्वः ईशिषे) आप ही धन के स्वामी नियन्ता हैं। (यः ते आविधत्) जो आपकी भक्ति, प्रार्थना, उपासना करता है (त्वं पायुः) आप ही उसके रक्षक हो। पा रक्षणे।

"आमृत्योः श्रियम् अन्विच्छेद् नैनां मन्यते दुर्लभाम्"।

मनुः ४।१३७

(दमे) सब इन्द्रियों का दमन कर जो. ।

"अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः ।
इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद्भ्रश्यते हि सः ।।" महाभारत

"द्रविणोदा इन्द्रः। द्रविणं ददाति इति द्रविणोदा। द्रविणं धनमुच्यते। यदेनमभि आभिमुख्येन तदर्थिनो अवश्य दुवन्ति। दुद्रुगतौ"। धनमिति कस्मात् ? धिनोतीति सतः।धिनोति तर्पयतीत्यर्थः।

"उत्साहसम्पन्न मदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़ सौहृद च लक्ष्मी स्वयं याति निवास हे तोः ।।
"उद्योगिनं पुरुष सिंह मुपैति लक्ष्मीः दैवेन देयमिति
का पुरुषावदन्तिः ।

"न त्वत्समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते"।

गृत्समद् ऋषिः । सविता देवता। पङ्क्तिश्छन्दः।

"न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातय स्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः" ।।

ऋक्. २।३८।९

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस जगदीश्वर के (व्रतं) नियम को (न इन्दः) न सूर्य न बिजली (न वरुणः) न जल (न मित्रः) न वायु (न अर्यमा) न न्यायकारी राजा (न रुद्रः) न जीव (न अरातयः) न शत्रु जन (मिनन्ति) नष्ट करते हैं। (तं) उस (इदं) उस (स्वस्ति) सुखरूप (सवितारं) षू प्रसवे श्वर्ययोः। षूङ् प्राणि प्रसवे। षू प्रेरणे। समस्त जगत् के उत्पन्न करनेहारे (देवं) दाता परमात्मा की (नमोमिः) सत्कर्मों से जैसे मैं (हुवे) स्तुति करूँ वैसे तुम भी प्रशसा करो।

भावार्थ—इस संसार में कोई पदार्थ ईश्वर के तुल्य नहीं है तो अधिक कैसे हो ? और कोई भी इस नियम को उल्लंघन नहीं कर सकता है। इस कारण सब मनुष्यों को उसी ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए।

प्रश्न—कस्मै देवाय हविषा विधेम ?

उत्तर—कविमग्निमुपस्तुहि सत्यधर्माण मध्वरे। देवमवीवचातनम्। ऋक्

(इन्द्रः) इदि परमेश्वर्ये। य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः।

(रुद्रः) सदिर् अश्रुविमोचने। रुद्रः रोदनात्। दश मे प्राणा एकादशयो जीवश्च। यदा अस्मान् मर्त्याच्छः।

"तमसो मा ज्योतिर्गमय"

शतपथ

"अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।"—नियम ८

"ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन् आरे स्याम दुरितादभीके।
इमाय गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः"॥

ऋक्. ३।३९।७

भावार्थ—विद्वानों का कर्त्तव्य है कि अज्ञान अविद्यान्धकार को दूर करके ज्ञान का प्रकाश करें।

(सोम वृद्ध) हे विद्या रूप ऐश्वर्य से वृद्ध लोगो! षू प्रसवैश्वयोः (सोमपाः) ऐश्वर्य की रक्षा करने वाले। (पुरुतमस्य) अत्यन्त बहुतम विद्या से युक्त।(विजानन) विशेष प्रकार से जानते हुए।(आरे अभीके) दूर स्थल और समीप स्थल। (कारोः) कार्य, कर्त्तव्य कर्म करने वालों के। अग्निर्वृत्राणि जंघनद् द्रविणस्यु र्विपन्यया। समिद्धः शुक्र आहुतः ऋक् , यजुः अनित्याशुचि दुःखनात्मसु नित्यशुचि सुखात्मख्यातिरविद्या"॥ योगदर्शन

मैं मीठा बनूँ।

मेरी वाणी मधुर हो।

"वाचस्पतिर्वाचं न स्वदतु"। यजुः

"वाचः मे मधुमत्तमा। यद वदामि मधुमद्वदामि"॥

"जिह्वाया अग्र मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्त मुपायसि"॥

अथर्व. काण्ड १, सूक्त ३४, मन्त्र २

(जिह्वायाः) जयति रस मनया सा जिह्वा । रसनायाः। (अग्रे) अग्रभागे उपरिभागे । अगि गतौ + रन्। (जिह्वामूले) रसनारयाः मूलभागे।(मधूलकम्) मधुनः क्षौद्रस्य स्वादः। मधु का स्वाद होवे। (मम इत् अह) ममेदह । मेरे ही अवश्य । मदीये एव अवश्यम्। (क्रतौ असः) क्रतावसौ। कर्म में हो । कर्मणि अस्तु। (चित्तं) चिति संज्ञाने। अन्तः करणम्। बुद्धौ वा। (उप आयसि) उपागच्छसि। तू पहुँच करती है।

"मीठी वाणी बोलिये, अपना आपा खोय।
औरहुँ कूँ शीतल करे, आपहु शीतल होय॥"

"सत्यं प्रियं श्रद वाक्यं धीसे हितकरं वेदत्।
आत्मोत्कर्ष तथा निन्दां परेषां न समाचरेत्॥" मनुः

"मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद भूयासं मधु संदृशः॥" अथर्व. १।३४।३

(मधुमत्) मधुर रसोपेतम्। (निःक्रमणं) निकट गमनम्। आगमनम्।(परायणम्) परा अयनम्। दूरगमनम्। प्रस्थानम्।(भूयांस) भू सत्तायम्। आशिषि लिङ्। अहं स्याम्।(मधुसहशः) मधु + हशः। हशिर प्रेक्षणे। मधुर दर्शनः। मधुर रूपवाला होऊं।

"मधोरस्मि मधुतरो मधुघान्मधुमत्तरः।
मास्मित् किल त्वं बनाः शाखां मधुमतीमिव।। अथर्व.१।३४।४

(मधोः) मधुर रसात्। क्षौद्र रसात्। (मधुतरः) अधिक माधुर्योपेतः। मधु + तरय। (मधुघात्) मधुकात्। मद्वा मोदकात्। मिश्री की डली (मधुमत्तरः) अधिकतर मधुमान्।(अस्मि) अहं भवानि। मैं होऊँ।(वनाः) वन संभक्तौ। लेट्। त्वं संभजेः। कामयेथाः।(मधुमतीं शाखां इव) मीठे रसवाली फलों की शाखा के समान।

प्राणसूक्त

"यथा द्यौश्च पृथिवी च न विभीतो न रिष्यतः
एवा मे प्राणा भा विभेः।। अथर्व. २।१५।१

"यथाहश्च रात्री च न विभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा विभेः।।' २।१५।२

"यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न विभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा विभेः।।" २।१५।३

"यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न विभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा विभेः।।" २।१५।४

"यथा सत्यं चानृतं च न विभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा विभेः।।" २।१५।५

"यथा भूतं च भव्यं च न विभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा विभेः।। २।१५।६

(रिष्यतः) रिष् हिंसायाम्। हिनस्तः। आज्ञा भंगं कुरुतः।
(मा विभेः) मिभीभये, लङ्। त्वं शंकां मा कार्षी।

"प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा"। अथर्व. २।१६।२
"सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा।।" २।१६।३
"अग्ने वैश्वानर विश्वै र्मा देवैः पाहि स्वाहा" २।१६।४
"विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा" २।१६।५

(अरसा) डुभृञ् धारण पोषणयोः + असुन्। सर्वधातुभ्योऽसुन।
उणादि. ४।१८९ धारण पोषण शक्त्या।

ब्रह्माण्ड का स्वामी पालक रचक कौन ?

"ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य वोधि तनयं च जिन्व।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवाः वृहद्वदेम विदथे सुवीराः ।।"

ऋक्. १ ।१५४ ।१९, यजु: ३४ ।५८

(ब्रह्मणस्पते:) हे ब्रह्माण्ड के स्वामिन्। पा रक्षणे। पा पालने।
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाश्च प्रहिणोति तस्मै।
"जन्माद्यस्थयत:" "न तं विदाथ य इमा जजान अन्यद्युष्माकमन्तरं बभूव"।।

श्वेताश्व:

ब्रह्माण्ड का स्वामी कोई है या नहीं ? नास्तिक लोग नहीं मानते। कहते हैं यह सृष्टि स्वयं बनती बिगड़ती है।

"स्वाभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्यमानः।"
"क्षित्यंकुरादिकं कर्त्तजन्यं कार्यत्वात् घटवत्।" न्याय.

फिर ब्रह्माण्ड का स्वामी कहाँ रहता है ? कोई कहता है कि वह चौथे आसमान पर रहता है। कोई सातवें आसमान पर बतलाता है। वेद कहता है—"स ओतप्रोतश्च विभूः प्रजासु"।

(यन्ता) नियामक। "भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्चमृत्युर्धावति पंचम"।। कठ. ६

(सूक्तस्य बोधि) उत्तम ज्ञानप्रद वेदमन्त्रों द्वारा बोध कराने वाले।

"ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीः ऋतस्य धीति र्व्विजिनानि हन्ति।"

ऋक्.

"यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।। यजु:

"स्त्री शूद्र द्विज बन्धुनां त्रयी न श्रुतिगोचरः।
आत्मश्रेयसिमूढानां श्रेय एवं भवेदिह।।"

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १ अ. ४

"निगम कल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रव संयुतम्।
पिवत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुविभावुकाः।।"

श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १, अ. १, श्लोक २

"इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे।।"

(तनयं च जिन्व) तनय पुत्र पुत्रियों को प्रीणन करने वाला।जिन्व प्रीणने। आयु और ज्ञान देने वाला।(देवाःयद् अवन्ति) देवाः दिव्यगुणकर्मस्वभावयुक्ताः विद्वांसः।अथवा देवाः सूर्याग्नि पृथिव्यादयःयदयं अवन्ति रक्षन्ति।देवता लोग जिसकी रक्षा करते हैं उसका सदैव।(तद्भद्रं भवति) उनका कल्याण होता है। उन्हीं को सुख की प्राप्ति होती है। वे ही सुखी रहते हैं। इसलिए (सुवीराः) उत्तम वीरता

युक्त होकर हम लोग प्रभु की ।(विदथे) विदथ इति यज्ञ नाम। यज्ञादि शुभ कर्मों में ।(वृहद् वदेम) बहुत स्तुति प्रार्थना उपासना किया करें ।(सुवीराः) शोभनवीरोयेताः । भद्रम् भदि कल्याणे सुखे च।

"यद् विद्वांसो यद् विद्वांसो एनांसि च कृमा वयम्।
यूयं न स्तस्मान्मुञ्चत विश्वेदेवाः स जोषसः ।।" अथर्व.

यजुर्वेद में इतना पाठ और अधिक है = "य इमा विश्वा विश्वकर्मा यो नः पिता। अन्नपवतेऽस्य नो देहि" ।।

आयुर्वर्धनायोपदेशः ।

आयु बढ़ाने का उपदेश।

"जीव्यासमहं सर्वमायुर्जीव्यासम् ।।" जीवेमः शरदः शतम्"।

वि देवाः जरसावृतन् वित्वमग्ने अरात्या।
व्यंह सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ।।" अथर्व. ३।३१।१

(देवा) विद्वांसः। विजिमीषवः। विजय चाहने वाले पुरुष। (जरसा) वयो हान्या। बुढ़ापा। वयो हानौ। आयु के घटाव से ।(वि अवृतन्) प्रथग्भूय अभूवन्। अलग रहे है ।(अग्ने) हे विद्वन्। पुरुष । (त्वं) तू यदि दीर्घ जीवन चाहता है तो (अरात्या) अदानेन, रादाने। शत्रुतया। कंजूसी वा शत्रुता से। (वि + विवर्त्तस्व) अलग रह ।(अहं सर्वेण पाप्मना) मानसे पापेन । दुष्कर्मणा वा ।मैं सब पाप कर्मों से (वि) अलग और ।(यक्ष्मेण) क्षयादिना। राजरोगेण । क्षयी आदि राजरोगों से ।(वि + विवर्त्तै) पृथक् भवानि अलग रहूँ और ।(आयुषा) चिर जीवनेन। चिरकाल जीवनेन। उत्साह से ।(सम्) सं वर्त्तै । सम्भूय भवानि । मिला रहूँ।

भावार्थ—पुरुषार्थी लोग ब्रह्मचर्य आदि के सेवन से सदा बलवान् रहे हैं। इसी प्रकार सब मनुष्य मानसिक पाप और शारीरिक रोग के त्याग और शुभ गुणों के सेवन से बल बढ़ाकर अपना जीवन सफल करें।

"नित्यं हिताहार विहार सेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
एता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी न भवत्यरोगः ।।"

यज्ञ महिमा

स्वर्यन्तोनापेक्षन्त आद्यां रोहन्ति रोदसी।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वासो वितेनिरे ।।

यजुर्वेद १७।६८, अथर्व. ४।१४।४

(ये सुविद्वांसः) उद्योगिनः पुरुषाः सु सुष्ठु विशेषेण कर्म प्रकारं जानन्तः पण्डिता योगिनः। जो बड़े विद्वान् योगीजन ।(विश्वतोधारं) सर्वतोधाराभिर्धारणशक्तिभिर्युक्तम् ।सब प्रकार से धारण शक्ति वाले ।(यज्ञं) देवस्य परब्रह्मणः पूजनम्। देव अर्थात् ब्रह्म के पूजन को (वितेनिरे)

विस्तारयितवन्तः। वि + तनु विस्तारे + लिट् ।फैलाया है वे ही योगी पुरुष ।(स्वः यन्तः) सुख स्वरुपम् परब्रह्म गच्छन्तः। (न) इव चलते फिरते उद्योगी पुरुषों के समान। (रोदसी) द्यावा पृथिव्यौ च। पृथिवी लोक से ।(द्यां) अन्तरिक्षं । प्रकाशलोक को ।(आरोहन्ति) आरुढा भवन्ति । चढ जाते हैं। (न + अप ईक्षन्त) अप + ईक्ष दर्शने। आकांक्षन्ति।

भावार्थ—जो विद्वान् योगीजन संसार के सब पदार्थों के विज्ञानी होकर परमात्मा की महिमा को विचारते हैं। वे ही उससे प्रीति करके आत्मबल पाकर यशस्वी होते हैं।

"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। कुतः? तस्य परार्थत्वात् । यज्ञः परोपकारायैव भवति। जनानां समूहो जनता तत्सुखायैव यज्ञो भवति।

मण्डूक वर्णन।

पर्जन्यो देवता। जगती छन्दः। १६ मन्त्र हैं मण्डूक सूक्त में।

"उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि।
मध्ये ह्रदयस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः ॥" अथर्व. ४।१५।१४

(मण्डूकि) हे मण्डनशीले। निमज्जन् स्वभावे। मेकि, हे शोभा बढ़ाने वाली वा डुबकी लगाने वाली मेंडुकी। मडि भूषणे। ऊकण् यद्वा मज्ज स्नाने ऊकण्।

मण्डयन्ति भूषयन्ति जलाशयं निमज्जन्ति जले वा। मण्डूका मज्जूका मज्जनान्मदतेर्वा मोदति कर्माणो मण्ड एषा मोक इति वा।

निरुक्त ९।५ मज्जनशीलाः। मज्जन स्वभावाः। मज्जूकाः मेकाः।

(उपप्रदव) उपेत्स प्रकृष्टं घोषं कुरु। पास आकर बोल।

(तादुरि) हे तरणशीले ! अथवा तावत् उदरि ! यावच्छरीरं तावदेवोदरं तस्याः। दुर्दरि । दृणाति भूमिं कर्णौं वा स दर्दुरः।

दृ विदारणे उरच् ङीप्। मण्डूकि। हे तैरने वाली वाउतने शरीर जितना उदर वाली।

(वर्ष) वष्टिम्। वर्षा को।

(आवद) आभाषय। बुला। जब मेंढक बोलते हैं तब वर्षा होती है। मानो वर्षा को बुलाते हैं।

(मध्ये, ह्रदस्य) जलाशयस्य मध्य देशे। तालाव के बीच में।

(प्लवस्व) प्रतर। तैर। कैसे तैर ?

(विगृह्य) प्रसार्य। फैलाकर।

(चतुरः पदः) चत्वारः पादान् । चारों पावों को फैलाकर तैर।

भावार्थ—जैसे मेंडुकि वर्षा होने पर आनन्द से जल के भीतर तैरंती फिरती है, ऐसे ही ब्रह्म ज्ञानी लोग ब्रह्मविद्या में मग्न होकर विचरते हैं।

भावार्थ—जैसे मेंडुकि वर्षा होने पर आनन्द से जल के भीतर तैरती फिरती है, ऐसें ही ब्रह्म ज्ञानी लोग ब्रह्मविद्या में मग्न होकर विचरते हैं।

"दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई। वेद पढ़त जनु बटु समुदाई"॥ तुलसी.

सात मर्यादाएँ

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्ता सामिदेकान्मभ्यंहुरोगात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गेधरुणेषु तस्थौ"॥

ऋक्. १० ।५ ।६, अथर्व. ५ ।१ ।६

पदार्थ—कवयः ऋषयः मन्त्र दृष्टारो ऋषयः। मन्त्रदर्शी ऋषियों ने। ऋषि लोगों ने। साक्षात् कृत धर्माणो ऋषयो बभूवुः। धर्म को साक्षात् करने वाले ऋषि। (सप्त) सप्त संख्याकाः। सप्त सप्ता संख्या। सृ गतौ। (मर्यादाः) मर्य + आ + दा ग्रहणे। मर्यै रादीयते इति। कुमर्यादा इत्यर्थः। कुमर्यादायें। (ततक्षुः) कृतवन्तः। की हैं। ठहराई हैं। तक्षतिः करोति कर्मा-निरुक्त ४ ।२ बनाई हैं। (तासां) मर्यादानां मध्ये। उनमे से (एकां इत्) एक पर भी (अभिगात्) अभिगच्छन्। चलता हुआ पुरुष। (अंहुरः) अंहस्वान् पापवान् भवति। पापवान् होता है। (आयोः) आयुः। आयोरयनस्य सुमार्गस्य। सुमार्ग का।(ई स्कम्भः) एव अवलम्बकः। धारकः। भांमने वाले पुरुष ही। स्कम्भु रोदने। (पथां) कुमार्गाणाय्। उन कुमार्गों के (विसर्गे) त्यागे। त्याग पर। (उपमस्य) उपमे, अन्तिक नाम। समीपभूतस्य सर्वनिर्माणवी परमेश्वरस्य। समीपवर्त्ती वा—सबके निर्माता परमेश्वर के। (नीडे) नितरामीड्यते स्तूयते यः स नीडः। नि + इड् स्तुतौ घञ् गृहे। धाम्नि। धाम के भीतर। (धरुणेषु) धारयितृषु सामर्थ्येषु। धारण सामर्थ्यों में। (तस्थौ) स्थितवान्। स्थित हुआ है।

सप्तमर्यादा—स्तेयं चोरी। तल्पारोहण व्यभिचार। ब्रह्महत्या भ्रूण हत्या, गर्भ हत्या। सुशपान मधपान दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवाम्। दुष्ट कर्म का बार-बार सेवन पातके अनृतोद्यम् पातक लगाने में झूठ बोलना।

"ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गमागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥" मनुः

चोरी जुआ, व्यभिचार, मद्यपान, अनृतभांषण, गर्भहत्या, असूया।

भावार्थ—मनुष्य निषिद्ध कर्मों से पापी होकर दुःख और विहितकर्मों के करने से सुकर्मी होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख पाते हैं॥ ईर्ष्या मत्सरता।

"अनुष्ठांन निषिद्धस्य त्यागो विहित कर्मणः।
नृणां जनयतः पाप क्लेश शोकभयप्रदम्॥"

धन ऐश्वर्य प्राप्त्युपदेशः

"अस्मे रायो दिवे दिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः।
अस्मे वाजास ईरताम्॥" ऋक्. ४ ।८ ।७

पदार्थ—मनुष्य लोग (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अस्मे) हम लोगों में (पुरुस्पृहः) बहुतों से चाहने योग्य (रायः) श्रेष्ठ धन, लक्ष्मियाँ, (सम्चरन्तु) विलसें और (वाज्ञासः) अन्नादि ऐश्वर्यों के योग (अस्मे) हम लोगों को (ईरताम्) प्राप्त हों, ऐसी अभिलाषा करो ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सदा ही पुरुषार्थ से धन, अन्न, राज्य, प्रतिष्ठा और विद्या आदि उत्तम गुणों की उन्नति होनी है इस प्रकार निरन्तर इच्छा करनी चाहिए।

रयि इति धन नाम। लक्ष्मी-राजलक्ष्मी।

लक्ष्मी लाभाद्वा, आलक्षणाद्वा, लषतेर्वा, लज्जतेर्वा,
लप्स्यमानाद्वा, आश्लेष कर्मणः।

"आमृत्योः श्रियमन्विच्छेत् नैनां मन्येत दुर्लभाम्" ॥ मनुः ४

"उत्साह सम्पन्न मदीर्घसूत्रं क्रिया विधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ सौहृदञ्च लक्ष्मीः समायांति निवास हे तोः ॥
नीतिः

"कुचैलिनं दन्तमलावधारिणं वह्वाशिनं नित्य कठोरभाषिणम्।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः" ॥

"उत्साहः साहसं धैर्य्य बुद्धिः शक्तिः परिश्रमः।
षड़ेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत ॥

"उद्योगिनं पुरुष सिंह मुपैतिलक्ष्मी दैंवेन देयमिति का पुरुषाः वन्दति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्रदोषः ॥"
भर्तृहरिः

"भूरिदा भूरि देहि मादभ्रं भूर्याभर।" ऋक्.

"न नरस्य नरो दासः दासश्चार्थस्य भूपतेः।
गौरवं लाघवं बापि धनाधन निबन्धनम् ॥

"अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥

भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कहा। महाभारत भीष्म पर्व अध्याय ४३ श्लोक ४१

"त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च।

तमर्थवन्तं पुनराश्रयन्ति ह्यर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ॥

नीतिः

"यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गणाः काञ्चन माश्रयन्ति ॥

नीतिः

"न बन्धुमध्ये धनहीन जीवनम् ॥"

नीतिः

"दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीय गतिर्भवति वित्तस्य ॥ मनुः

"धर्माय यशसेऽर्थाय आत्मने स्वजनाय च ।
पञ्चधा विभजन वित्तं मिहामुत्र च मोदते ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति यइत्तद्विदुस्त इमे समासते ।

अथ संकल्प पाठः

ॐ तत्सत् अद्य श्री ब्रह्मणो द्वितीय परार्द्धे सप्तमे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे, आर्यावर्त्तान्तर्गत अमुक प्रदेशे, अमुक नगरे, अमुक सम्बत्सरे, अमुक ऋतौ, अमुक मासे, अमुक पक्षे, अमुक तिथौ, अमुक नक्षत्रे, अमुक वासरे, अमुक मुहूर्त्तेऽत्रेदं कर्म संस्कार क्रियते ।

सत्संग महिमा

"बिनु सत्संग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गये विनु राम पद, होय न दृढ़ अनुराग ॥"

"सन्त संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पन्थ ।
कहहिं सन्त कवि कोविद, श्रुति पुरान सद्ग्रन्थ ॥"

"सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग ।
लहिहिं चारु फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥"

"तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक संग ।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग ॥"

"हानि कुसंग सुसंगति लाहू, लोकहु वेद विदित सब काहू ।
साधु असाधु सदन शुकसारी, सुमिरहिं राम देइ गण गारी ॥"

"सन्तसमागम हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोय ॥"

"बिनु सत्संग विवेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥"

"सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवतिः ।" भर्तृहरिः
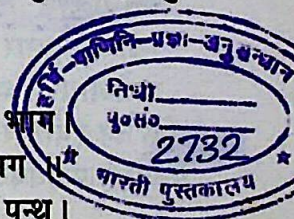
"जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं, मानोन्नतिं दिशतिपापमपाकरोति। चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं, सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥"भर्तृ. नीति

"महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः।
पद्मपत्र स्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम्॥"

"मलयाचल गन्धेन त्विन्धंन चन्दनायते।
तथा सज्जन संगेन दुर्जनः सज्जनायते॥"

"हीयते हि मतिस्तात, हीनैः सह समागमात्।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्॥"

"अहो दुर्जन संसर्गात् मानहानिः पदे पदे।
पावको लोहसंगेन मुद्गरैरभिहन्यते॥"

"असतां संग दोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम्।
दुर्योधन प्रसंगेन भीष्मोणोहरणे गतः॥"

"अग्रुस्थ्यसतां संगः सद्गुणं हन्ति विसृतम्।
गुण रूपान्तरं याति तक्र योगाद् यथा पयः॥"

"संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न श्रूयते,
मुक्ताकार तया तदेव नलिनी पत्र स्थितं राजते।
स्वात्यां सागर शुक्ति संपुटगंत तन्मौक्तिकं जायते॥
प्रायेणाधम मध्यमोत्तम गुणाः संसर्गतो जायते॥"

"किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा यत्राश्रिताश्च तरवस्त-रवस्त एव।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण कंकोल निम्वकुटजा अपि चन्दना स्युः॥"
भर्तृहरिः

—: समाप्त :—